THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_186201
UNIVERSAL LIBRARY

O-- -/-—23-4-81--10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H491.43 V31B Accession No. PG.H6740

Author वर्मा, धीरेन्द्र

Title ब्रजभाषा. 1954

This book should be returned on or before the date last marked below

ब्रजभाषा

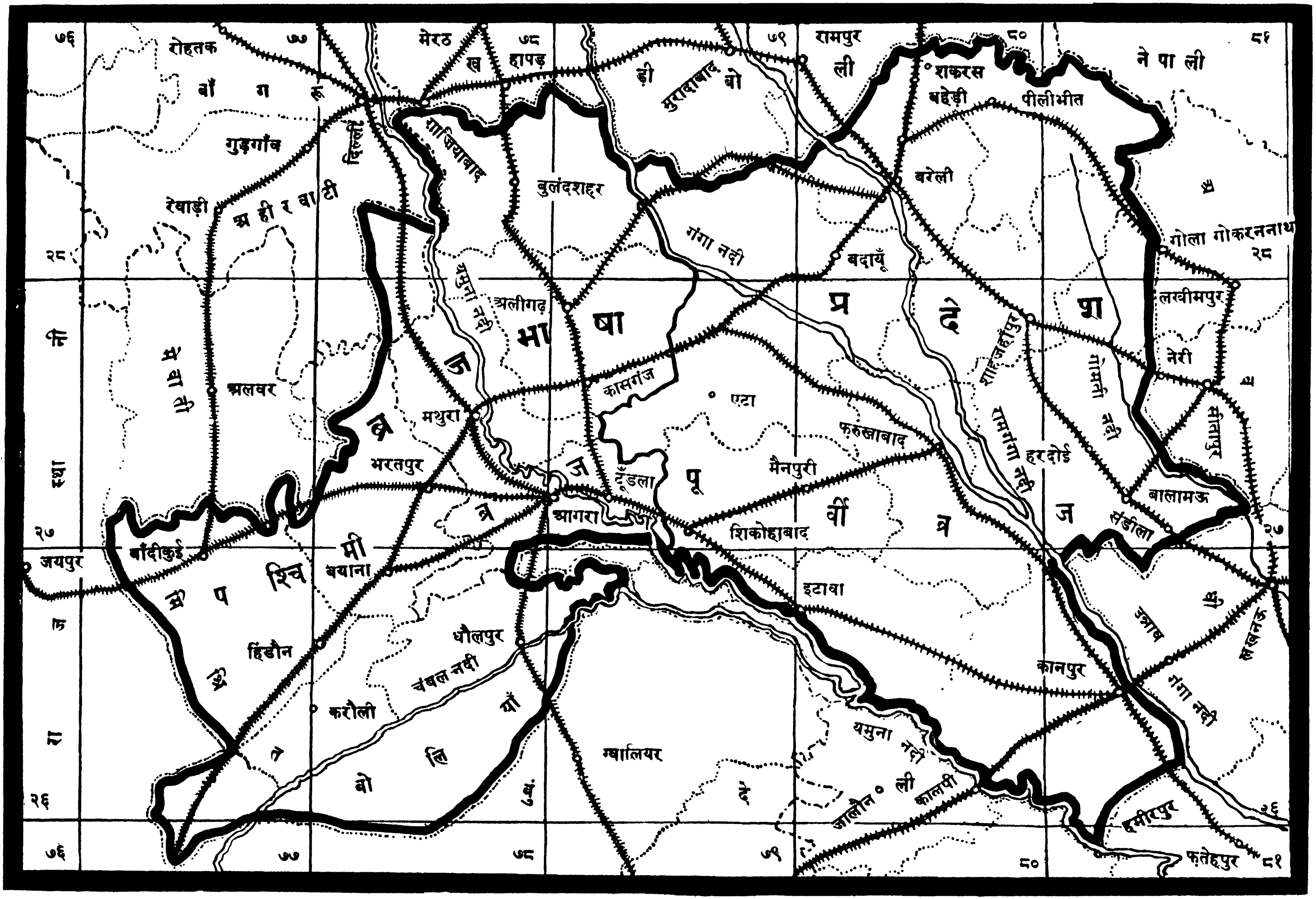

पैमाना १ इंच = ३२ मील

आधुनिक ब्रज भाषा क्षेत्र

व्रजभाषा

धीरेन्द्र वर्मा

१९५४
हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : : २००० : : १९५४

मुद्रक : सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

आचार्यवर

प्रोफ़ेसर ज्यूल ब्लाक

की

पुण्य स्मृति

को

सादर समर्पित

वक्तव्य

ब्रजभाषा का प्रस्तुत अध्ययन इसी नाम के मेरे फ्रेंच मे प्रकाशित थीसिस "ला लाँग-ब्रज" का हिंदी रूपान्तर है जिस पर मुझे पेरिस विश्वविद्यालय ने १९३५ मे डाक्टरेट दी थी।

इस पुस्तक मे मध्यकालीन साहित्यिक ब्रजभाषा तथा आधुनिक बोलचाल की ब्रजभाषा दोनों का प्रथम विस्तृत अध्ययन है। मध्यकालीन साहित्यिक ब्रजभाषा की सामग्री प्रधानतया १६ वी, १७ वी तथा १८ वी शताब्दी ईसवी के लगभग डेढ दर्जन प्रतिनिधि ब्रजभाषा लेखकों की कृतियों से सकलित की गई है (दे० अनु० ६७-६९)। आधुनिक ब्रजभाषा की सामग्री ब्रजप्रदेश के गॉवो से ब्रजभाषा बोलने वाली जनता के मुख से १९२८-३० ई० मे की गई कई यात्राओ मे मैंने स्वय एकत्रित की थी (दे० अनु० ७३-७४)। मेरी अपनी मातृभाषा ब्रजभाषा का ही पूर्वी रूप होने के कारण मैंने अपनी बोली के ज्ञान से भी पूर्ण सहायता ली है। लेखक गॉव शकरस, तहसील बहेडी, ज़िला बरेली का निवासी है।

पुस्तक के प्रारभिक अध्यायों मे ब्रजप्रदेश, ब्रजवासी जनता, ब्रजभाषा साहित्य तथा आधुनिक ब्रजभाषा की स्थिति का परिचय दिया गया है। भौगोलिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियो का प्रभाव ब्रजभाषा के विकास पर किस प्रकार पडा इसका मौलिक विवेचन इस अश मे मिलेगा। ब्रजभाषा के रूपों के सबध मे अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूपों के साथ तुलनात्मक परिस्थिति का परिचय भी पहली बार इस ग्रथ मे मिलेगा। ब्रजभाषा के रूपो से सबधित ऐतिहासिक सामग्री जानबूझ कर नही दी गई है क्योंकि इसमे विशेष मौलिकता के लिए अब स्थान नही रह गया है।

ब्रजप्रदेश से एकत्रित विस्तृत सामग्री मे से प्रत्येक प्रदेश के कुछ चुने हुए उदाहरण परिशिष्ट मे दिए गए हैं तथा अत मे पुस्तक मे आए हुए समस्त ब्रजभाषा के शब्दों की अनुक्रमणी है। ये दोनों ही अश मूल फ्रेंच थीसिस मे नही थे, इस हिंदी रूपान्तर मे पहली बार दिए जा रहे हैं। प्रारभ मे ब्रजप्रदेश का एक मानचित्र भी दे दिया गया है। इसके लिए मैं अपने सहयोगी डा० जगदीश गुप्त का आभारी हूँ।

ब्रजभाषा का प्रस्तुत अध्ययन मैंने १९२१ ई० मे प्रारंभ किया था और अनेक अड़चनों और कठिनाइयो के उपरान्त १९३५ ई० मे पूरा कर सका था। इससे पूर्व हिंदी की इस प्रमुख बोली का परिचयात्मक सक्षिप्त वर्णन मिर्ज़ा खां, लल्लूलाल तथा ग्रियर्सन की कृतियो मे किया गया था। मैंने स्वय एक सक्षिप्त ब्रजभाषा व्याकरण थीसिस की सामग्री के आधार पर प्रकाशित किया था। आज भी इस स्थिति में विशेष अन्तर नहीं हुआ है।

ग्रंथ का अनुवाद तैयार करने मे मुझे अपने सहयोगी श्री उमाशंकर शुक्ल तथा रिसर्च स्कालर श्री केशवचन्द्र सिनहा से विशेष सहायता मिली। यदि इन्होंने अत्यंत परिश्रम करके अनुवाद का प्रथम प्रारूप तैयार न कर दिया होता तो कदाचित् यह हिंदी रूपान्तर कभी प्रकाश में न आ सकता। शब्दानुक्रमणी मेरे एक अन्य स्कालर श्री भोलानाथ तिवारी के परिश्रम का फल है। मै इन सब का अत्यत आभारी हूँ। अनुवाद मे, विशेष-तया प्रारभिक अध्यायों में, जो शैली सबधी त्रुटि है उसका उत्तरदायित्व मुझ पर है।

आशा है हिंदी में उपलब्ध हो जाने से ब्रजभाषा के इस मौलिक अध्ययन का उपयोग अब हिंदी विद्वान्, विद्यार्थी तथा पाठक सुविधा पूर्वक कर सकेंगे। संभव है कि इस ग्रथ के प्रकाशन से हिंदी की अन्य शेष बोलियो के वैज्ञानिक अध्ययन के सबध में हिंदी भाषा के विद्यार्थियों को प्रेरणा मिले।

विजयदशमी, १९५४ | धीरेन्द्र वर्मा

संक्षिप्त रूप

क. जिलों तथा उपप्रदेशों की सूची

(जिनसे आधुनिक ब्रजभाषा के अध्ययन की सामग्री एकत्रित की गई)

अ०	अलीगढ़
आ०	आगरा
इ०	इटावा
ए०	एटा
क०	करौली
का०	कानपुर
ग्वा० प०	ग्वालियर : पश्चिम
ज० पू०	जयपुर : पूर्व
धौ०	धौलपुर
पी०	पीलीभीत
फ़०	फ़र्रुखाबाद
बदा०	बदायूँ
ब०	बरेली
बु०	बुलदशहर
भ०	भरतपुर
म०	मथुरा
मै०	मैनपुरी
शा०	शाहजहाँपुर
ह०	हरदोई

ख. ब्रजभाषा ग्रंथों की सूची

(जिनसे मध्यकालीन साहित्यक ब्रजभाषा की सामग्री एकत्रित की गई)

केशव० केशवदास : रामचन्द्रिका
(केशव कौमुदी, सं० भगवानदीन, प्र० लाला रामनरायणलाल, इलाहाबाद, स० १९८६; उदाहरणों में अंक प्रकाश तथा छंदसख्या के द्योतक हैं)

गोकुल० गोकुलनाथ : चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता
(अष्टछाप, सं० धीरेन्द्र वर्मा, प्र० लाला रामनरायण लाल, इलाहाबाद, १९२९ ई०; अक पृष्ठ तथा पंक्ति-सख्या के द्योतक है)

घना० घनानंद : सुजान सागर
(सेलेक्शन्स फ्राम, हिंदी लिटरेचर पुस्तक ६, भाग २, सं० सीताराम, प्र० कलकत्ता यूनीवर्सिटी, १९२६ ई०; अंक छदसख्या के द्योतक है)

तुलसी० तुलसीदास : कवितावली तथा गीतावली
(तुलसी ग्रथावली, भाग २, प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, स० १९८०; अक छद अथवा पदसंख्या के द्योतक है)

दास० भिखारीदास : काव्य निर्णय
(प्र० भारत जीवन प्रेस, बनारस, १८९९ ई०; अक पृष्ठ तथा छदसख्या के द्योतक है)

देव० देवदत्त : भावविलास
(प्र० भारत जीवन प्रेस, बनारस, १८९२ ई०; अंक विलास तथा छदसख्या के द्योतक है)

नद० नंददास : रासपचाध्यायी
(सं० बालमुकुन्द गुप्त, प्र० भारत जीवन प्रेस, बनारस, १९०४ ई०; अक अध्याय तथा छदसख्या के द्योतक है)

नरो० नरोत्तमदास : सुदामाचरित
(स० भगवानदीन, प्र० साहित्य सेवक कार्यालय, बनारस स० १९८४; अक छदसख्या के द्योतक है)

नाभा० नाभादास : भक्तमाल
(सं० सीताराम सरन, प्र० नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १९१३ ई०; अक छदसख्या के द्योतक है)

पद्मा० पद्माकर : जगत्विनोद
(प्र० भारत जीवन प्रेस, बनारस, १९०१ ई०; अंक पृष्ठ तथा छदसख्या के द्योतक है)

बिहारी० बिहारीदास : सतसई
(बिहारी रत्नाकर, स० जगन्नाथ दास रत्नाकर, प्र० गगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, सं० १९८३; अक दोहासंख्या के द्योतक है)

भूषण०	भूषण : शिवराज भूषण (भूषणग्रंथावली, सं० ब्रजरत्नदास, प्र० रामनरायण लाल, इलाहाबाद, १९३० ई०; अक छदसख्या के द्योतक है)	
मति०	मतिराम : रसराज (मतिराम ग्रंथावली, स० कृष्णबिहारी मिश्र, प्र० गगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, स० १९८३; अक छंदसंख्या के द्योतक है)	
रस०	रसखान : रसखान पदावली (प्र० हिंदी प्रेस, इलाहाबाद; अंक छदसख्या के द्योतक है)	
लल्लू०	लल्लूलाल . राजनीति (प्र० नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १८७५ ई०; अक पृष्ठ तथा पक्तिसख्या के द्योतक है)	
लाल०	गोरेलाल : छत्रप्रकाश (सं० श्यामसुन्दर दास तथा कृष्ण बलदेव वर्मा, प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, १९१६ ई०; अंक पृष्ठ तथा पक्तिसख्या के द्योतक है)	
सूर० मा०, य०, वि०	सूरदास : सूरसागर (प्र० नवल किशोर प्रेस लखनऊ, माखन चोरी, यमुना स्नान, विनय पद, अक पदसख्या के द्योतक है)	
सेना०	सेनापति : कवित्तरत्नाकर (साहित्य समालोचक, अप्रैल १९२५, सं० कृष्णविहारी मिश्र; अक द्वितीय तरग की छदसंख्या के द्योतक है)	
हित०	हितहरिवश : सिद्धान्त और हित चौरासी (ब्रजमाधुरीसार, स० वियोगीहरि; अंक पदसंख्या के द्योतक है)	

विशेष लिपिचिह्न

अं	॑	उदासीन स्वर	
इँ		फुसफुसाहट वाली	इ
उँ		फुसफुसाहट वाला	उ
ए	ॅ	ह्रस्व	ए
एँ	ॅ	अर्द्ध विवृत	ए
एॅ	ॅ	मध्य स्वर	
ओ	ो	ह्रस्व	ओ
ओँ		अर्द्ध विवृत	ओ
च़्		स्पर्श-संघर्षी	च्
ज़्		स्पर्श-संघर्षी	ज्
झ़्		संघर्षी	झ्
ट़्		वर्त्स्य	ट्
ड़्		वर्त्स्य	ड्
थ़्		संघर्षी	थ्
द़्		संघर्षी	द्

(कोष्ठक के अक अनुच्छेद के द्योतक हैं)

मानचित्र	पृष्ठ
वक्तव्य	[७]
सक्षिप्तरूप	[९]
क. जिलों तथा उपप्रदेशों की सूची	
ख. ब्रजभाषा के ग्रथों की सूची	
विशेष लिपिचिह्न	[१२]
विषय-सूची	[१३]
१. मध्यदेश तथा ब्रजप्रदेश (१-७)	१
२. ब्रजवासी जनता	५
राजनीतिक परिवर्त्तन (८-१२)	५
सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था (१३-१९)	५
धार्मिक आन्दोलन (२०-२८)	१३
३. ब्रजभाषा साहित्य	१६
बोली का नाम (२९, ३०)	१६
साहित्य तथा भाषा (३१)	१७
प्राचीनकाल (३१-३९)	१७
मध्यकाल (४०-६९)	२०
सामग्री के उपयोग की शैली (६७-६९)	३०
लिपि सबधी कुछ विशेषताएँ (७०-७२)	३२
४. आधुनिक ब्रजभाषा	३३
बोली का विस्तार तथा सीमाएँ (७३-७४)	३३
क्या कनौजी भिन्न बोली है? (७५)	३४
वर्त्तमान ब्रजभाषा के उपरूप (७६-८०)	३४
गाँव, कसवा तथा नगर की बोली (८१-८४)	३६
शब्दसमूह (८५-८७)	३८
५. ध्वनि समूह	३९
स्वर तथा व्यजन (८८)	३९
मूलस्वर (८९-९४)	४०
अनुनासिक स्वर (९५)	४१
स्वर सयोग (९६-१००)	४१
स्पर्श (१०१-१०६)	४२
पार्श्विक, लुठित तथा उत्क्षिप्त (१०७-११०)	४४
संघर्षी (१११-११४)	४५

अर्द्धस्वर (११५) ४६
शब्दांश और शब्द (११६-१२२) ४६
शब्दसंपर्क मे अनुरूपता (१२३-१२८) ४८
फ़ारसी शब्द (१२९-१३३) ५०
अंग्रेज़ी शब्द (१३४-१३९) ५२

६. संज्ञा ५५
लिंग (१४०-१४२) ५५
वचन (१४४, १४५) ५६
रूपरचना (१४६-१५१) ५६
रूपों का प्रयोग (१५२, १५३) ५९
विशेष संयोगात्मक रूप तथा उनका प्रयोग (१५४) ५९
विशेषणमूलक रूप (१५५) ६०

७. सर्वनाम ६१
उत्तमपुरुष सर्वनाम (१५६-१६१) ६१
मध्यमपुरुष सर्वनाम (१६२-१६७) ६५
दूरवर्त्ती निश्चयवाचक (१६८-१७३) ६९
निकटवर्त्ती निश्चयवाचक (१७४-१७९) ७१
संबधवाचक और नित्यसंबधी (१८०-१८५) ७४
प्रश्नवाचक सर्वनाम (१८६-१९०) ७७
अनिश्चयवाचक सर्वनाम (१९१-१९५) ७९
निजवाचक तथा आदरवाचक (१९६) ८२
सयुक्त सर्वनाम (१९७) ८३
सर्वनाम मूलक विशेषण (१९८) ८३

८. परसर्ग ८५
परसर्ग (१९९-२०४) ८५
संयुक्त परसर्ग (२०५) ९०
परसर्गों के समान प्रयुक्त अन्य शब्द (२०६) ९१

९. क्रिया ९२
मूलक्रिया (२०७) ९२
प्रेरणार्थक (२०८) ९२
वाच्य (२०९) ९४
मूलकाल (२१०-२१५) ९४
कृदन्तीरूप (२१६-२२१) ९९
क्रिया 'होनो' (२२२-२३२) १०४
सयुक्त क्रिया (२३३-२३८) १११

१०. अव्यय	११६
क्रियाविशेषण (२४०-२४७)	११६
समुच्चय बोधक (२४८)	११९
निश्चयबोधक रूप (२४९-२५१)	१२०
परिशिष्ट—संख्यावाचक	१२१
११. वाक्य	१२५
शब्दक्रम (२५२-२५५)	१२५
अन्वय (२५६, २५७)	१२६
१२. उपसंहार	१२७
प्राचीन तथा आधुनिक ब्रजभाषा (२५८)	१२७
ब्रजभाषा के मुख्य लक्षण (२५९)	१२७
ब्रजभाषा और खड़ीबोली हिंदी (२६०)	१२८
आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में ब्रजभाषा का स्थान (२६१)	१२९
परिशिष्ट	
आधुनिक ब्रजभाषा तथा सीमान्त प्रदेशो की बोली के कुछ उदाहरण	१३१
अलवर	१३१
अलीगढ	१३१
आगरा	१३२
इटावा	१३२
एटा	१३३
करौली	१३४
गुडगाँव	१३४
ग्वालियर : पश्चिम	१३५
जयपुर : पूर्व	१३६
पीलीभीत	१३७
फ़रुखाबाद	१३८
वदायूँ	१३९
बरेली	१३९
बुलदशहर	१४२
भरतपुर	१४३
मथुरा	१४४
मैनपुरी	१४६
शाहजहाँपुर	१४८
शब्दानुक्रमणी	१४९

१. मध्यदेश तथा ब्रज प्रदेश

१ भौगोलिक दृष्टि से ब्रज प्रदेश अपने आस-पास के प्रदेश से अलग नही है, अतएव इस क्षेत्र की प्रकृति समझने के लिए इसकी स्थिति का वर्णन कर देना आवश्यक होगा।

हिमाच्छादित ऊँचे उत्तरी पर्वत तथा उससे संबद्ध उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व में फैली हुई पर्वत श्रेणियाँ भारतवर्ष को शेष यूरेशिया महाद्वीप से अलग कर देश की एक विशेष संस्कृति के विकास में सहायक हुई हैं। इन्ही उत्तरी पर्वतों के समानान्तर मनुष्यों के बसने योग्य पहाड़ियों की निचली श्रेणियाँ तथा विस्तृत घाटियाँ हैं। यही पर काश्मीर, गढवाल, कुमायूं, नेपाल आदि प्रदेश स्थित हैं। यह भूभाग उन तीन प्रसिद्ध भूभागों मे से एक है जिनमे साधारणतया भारतवर्ष विभक्त किया जाता है। इस पहाड़ी भाग के दक्षिण मे प्राचीन काल मे आर्यावर्त्त[1] के नाम से पुकारा जाने वाला गगा-सिंधु का विस्तृत मैदान है, जिसका दक्षिणी अर्द्धभाग क्रमश: ऊँचा होता हुआ विंध्य की पहाड़ियों मे मिल जाता है। विंध्याचल के बाद धुर दक्षिण का त्रिकोण ऊँचा पठारी भाग है।

२. गंगा-सिंधु का मैदान दोनों नदियों अर्थात् सिंधु तथा गंगा के मैदानों में विभक्त हो कर आर्यावर्त्त के दो स्वाभाविक भाग बनाता है। गंगा के मैदान का पश्चिमी अर्द्ध भाग जो आर्यावर्त के मध्य भाग में पड़ता है बहुत प्राचीन समय से मध्यदेश[2] कहलाता रहा है। हिंदी मध्यदेश की वर्तमान भाषा है। प्राचीन मध्यदेश आजकल निम्नलिखित प्रमुख राज्यों में विभक्त है :—पूर्वी पंजाब का पूर्वी भाग, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, विंध्य प्रदेश, मध्य प्रदेश, मध्यभारत, अजमेर, तथा राजस्थान। उत्तरप्रदेश उपर्युक्त हिंदी भाषी संघ का सब से अधिक महत्त्वपूर्ण भाग है।

३. मध्यदेश कुछ विशेष भौगोलिक सीमाओं से घिरा हुआ है। उत्तर में हिमालय की तराई ऊपर कहे गए हिमालय के निचले भागों से इसे अलग करता है। किंतु तराई

---

[1] आर्यावर्त्त की अनेक परिभाषाओं में से एक के लिए देखिए, मनुस्मृति २-२२; सूत्र साहित्य के उल्लेखों के लिए देखिए, कीथ : वैदिक इंडेक्स।

[2] मध्यदेश शब्द की उत्पत्ति के लिए देखिए लेखक का 'मध्यदेश का विकास' शीर्षक लेख, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ३, सं० १। मनु के अनुसार मध्यदेश की पूर्वी सीमा प्रयाग थी (२, १७-२४)। विनयपिटक, महावग्ग ५, १३, १२ के आधार पर यह सीमा कजंगल तक थी, जो बिहार में भागलपुर के बाद माना जाता है। यहाँ मध्यदेश शब्द का प्रयोग बौद्ध काल के अर्थ में अर्थात् उसके पूर्ण विकसित रूप के लिए किया गया है।

का भाग इतनी बाधा नही उपस्थित करता कि वह पार ही न किया जा सके। इसीलिए हिमालय के निचले भागों में, जहाँ मध्यदेश के लोग बस गए हैं, हिंदी से मिलती जुलती बोलियाँ पाई जाती हैं। हिमालय पर्वत की मुख्य श्रेणियाँ अवश्य पहुँच के बाहर हैं अतएव हिमालय के दूसरी ओर की संस्कृति तथा भाषाएँ, पर्वत के दक्षिणी भाग की संस्कृति तथा भाषाओं से नितान्त भिन्न हैं। तराई का भाग तो सदैव अपनी सीमाएँ बदलता रहा है। आज भी हम पाते हैं कि तराई के जंगलों को साफ़ कर जहाँ खेती के योग्य बनाया जा रहा है वहाँ हिंदी भाषी उत्तर की ओर बढते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए बरेली ज़िले में, जो ब्रज-क्षेत्र की उत्तरी सीमा है, वहाँ के निवासी पिछले ३०, ४० वर्षों मे लगभग २० मील आगे तक इस प्रदेश मे उत्तर की ओर बढ़ गए हैं। यहाँ यह बता देना अनुपयुक्त न होगा कि प्राचीन मध्यदेश के अनेक शक्तिशाली बौद्ध राज्य तथा नगरों के भग्नावशेष आज तराई के जंगलों मे स्थित हैं। श्रावस्ती इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। हिमालय के दक्षिणी पार्श्व पर अधिक वर्षा होने के कारण यहाँ वनस्पति की उत्पत्ति प्रचुर मात्रा मे होती है और यदि इस वनस्पति को निरंतर नष्ट न किया जाय, तो इसका प्रसार दक्षिण की ओर बढ़ता चला जाता है।

४. मध्यदेश की दक्षिणी सीमा उतनी अधिक स्पष्ट नही है। यमुना के ठीक दक्षिण से ही विशिष्ट भौगोलिक लक्षण भिन्न रूप मे दृष्टिगत होते हैं। उपजाऊ मैदान के स्थान पर हमे पथरीली चट्टानी भूमि मिलने लगती है, जिसमे स्थान स्थान पर विन्ध्याचल की छोटी छोटी पहाडियाँ हैं। यहाँ खेती के योग्य भूमि कम है, इसीलिए आबादी भी कम है। गंगा के मैदान तथा दक्षिणी भूमिभाग का अतर दोनों की जनसंख्या के घनत्व की तुलना से स्पष्ट प्रकट होता है। गगा के मैदान की जनसंख्या उत्तरप्रदेश मे ८०० से लेकर ५०० तक प्रति वर्ग मील है; विध्यप्रदेश, मध्यभारत, तथा मध्यप्रदेश के उत्तरी भागो में यह १५० से लेकर १०० तक प्रति वर्ग मील है; तथा राजस्थान मे यह १०० प्रति वर्ग मील से भी कम है।

किन्तु गंगा के मैदान की ओर से यह भूभाग यातायात के लिए बिल्कुल खुला हुआ है। इस मिले हुए समस्त दक्षिणी भाग की नदियो का बहाव उत्तर की ओर है तथा वे सब अन्त मे गगा मे आकर मिलती हैं। इस भूभाग की प्रकृति पहाडी होने के कारण यहाँ की नदियाँ नाव चलाने योग्य तो नही हैं किन्तु इस भाग तथा गंगा के मैदान के बीच यातायात के लिए उनकी घाटियाँ सुगम पथ अवश्य बनाती हैं। इस क्षेत्र की जनसंख्या नदियों की घाटियो में केवल एक ही स्थान पर नही मिलती है बल्कि पठार मे स्थान स्थान पर बिखरी हुई है। पहाड़ियो द्वारा इस पथरीले प्रदेश का विभाजन अनेक भागों मे हो गया है। किसी प्रकार का भी आतंक होने पर, चाहे वह आर्थिक हो या राजनैतिक अथवा धार्मिक, गंगा के मैदान के निवासी देश के इसी भाग मे शरण खोजने के लिए जाते रहे हैं। मध्यभारत विंध्य प्रदेश तथा राजस्थान के अनेक हिंदू राज्यों की नीव ऐसे ही राजपूत वंशो के द्वारा पडी थी, जो किसी समय गंगा के मैदानों मे राज्य करते थे और जिन्हें बारहवी शताब्दी के बाद होने वाले राजनैतिक परिवर्त्तनों के कारण अपना मूल निवास स्थान छोड़ देना पडा था।

वास्तव में आर्यावर्त की दक्षिणी सीमा जो पहले विंध्य तक थी अब इस विस्तार के कारण बदल गई है। हिंदी बोलने वालों ने विंध्य के उस पार न केवल नर्मदा की घाटी मे ही अपना अधिकार स्थापित कर लिया है, बल्कि और भी दक्षिण मे फैल गए है। उदाहरणार्थ महानदी के उत्तरी मैदान में छत्तीसगढ प्रदेश, में इन्होंने उपनिवेश सा बना लिया है। राजस्थान में अरावली के उस पार दक्षिण-पश्चिम मे मारवाड के रेगिस्तान में तथा कुछ अशों में गुजरात तक गंगा की घाटी की संस्कृति के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रवेश दिखलाई पडता है। यहाँ यह स्मरण दिलाना अनुचित न होगा कि भौगोलिक दृष्टि से विंध्य के पार पहुँचने के लिए गुजरात का प्रदेश सब से अधिक सुगम है इसीलिए बहुत प्राचीन काल से यह मध्यदेश का उपनिवेश सा रहा है।

५. पश्चिमी सीमा की कोई स्पष्ट विभाजक रेखा न होने पर भी सीमा है। यह सिंधु तथा गंगा के मैदानों के बीच मे प्राचीन काल की सरस्वती नदी के किनारे किनारे मानी जा सकती है। सरस्वती के पश्चिम मे पंजाबी तथा पूर्व मे हिन्दीभाषी प्रदेश है। सरस्वती और यमुना के बीच का भाग सरहिंद कहलाता है। मध्यदेश का यह पश्चिमोत्तरी सीमांत प्रदेश है इसीलिए विशेष महत्त्वपूर्ण रणक्षेत्र, जैसे कुरुक्षेत्र और पानीपत, यहीं स्थित है। मध्यदेश तथा शेष भारत पर एकाधिपत्य पाने के लिए इन्ही स्थानों पर अनेक बार घोर युद्ध हुए है। प्राचीन संस्कृत साहित्य मे, उदाहरण के लिए महाभारत में, इस प्रदेश मे घने जगलों का ज़िक्र मिलता है तथा यह भी उल्लेख है कि इन जंगलों को काट कर इस भूमि भाग को आबादी के योग्य बनाया गया था।[1]

सरहिंद तथा उससे मिला हुआ गंगा यमुना के दोआब का उत्तरी भाग वह हिस्सा है जो पजाब के कुछ कम कट्टर भूभाग के सर्वाधिक निकट है। यह भाग अपनी स्थिति के कारण ग्यारहवी शती के बाद लगभग ६०० वर्षों तक विदेशी आक्रमणो का अड्डा बना रहा। इसी भाग मे विदेशी मुस्लिम शासकों ने दिल्ली को अपनी राजधानी बना कर शताब्दियों तक मध्यदेश तथा शेष भारत पर राज्य किया। फिर मध्यदेश के अन्य अधिक महत्त्वपूर्ण सास्कृतिक केन्द्रों जैसे मथुरा, अयोध्या, प्रयाग, काशी आदि से यह सब से अधिक दूर पडता है। यही कारण है कि हिंदी भाषी होने पर भी इस प्रदेश की भाषा, रीति-रिवाज तथा लोगों के रहन सहन मे हम पजाबीपन तथा इस्लामी प्रभाव अधिक पाते है।

६. मध्यदेश के पूर्व मे कोई प्राकृतिक रुकावट नही है। बिहार मे वर्तमान भागलपुर के बाद, जहाँ विंध्यमाला के प्रसार से मैदान के अत्यन्त सँकरीले मार्ग बन जाने के कारण गंगा कुछ उत्तर की ओर मुडती है, गगा के मैदान की पहली पूर्वी सीमा कही जा सकती है। इस स्थान के पूर्व मे हम गगा के मुहाने का प्रारभ पाते है, जो दक्षिणी बंगाल का दलदली भाग बन जाता है। सरहिंद मे स्थित अम्बाला से लेकर बिहार मे भागलपुर तक की दूरी लगभग ७५० मील है। एक ओर इस दूरी के कारण इस विस्तृत क्षेत्र मे हमे विभिन्न सास्कृतिक इकाइयाँ मिलती है, किन्तु साथ ही इस क्षेत्र की विशिष्ट प्राकृतिक रचना के कारण यातायात मे सुविधा होने के फलस्वरूप ये इका-

---

[1] महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १८, खाण्डवदाह।

इयाँ कही भी एक दूसरे से पूर्णतया पृथक् नहीं होने पाई है। बनारस के बाद एक हल्की विभाजक रेखा मानी जा सकती है, जहाँ से मैदान का सँकरापन प्रारम्भ होता है, यद्यपि यह स्थान उतना अधिक सँकरा नही है जितना कि भागलपुर के पूर्व का स्थान है।

इस हल्की विभाजक रेखा के उस पार वर्तमान विहार मे, जो किसी समय बौद्ध धर्म का केन्द्र था, हम मध्यदेश का पूर्वी भाग पाते है। इस रेखा के पश्चिम मे मध्यदेश का पश्चिमी तथा मध्य भाग है। वास्तव मे भागलपुर तक गंगा के मैदान मे किसी भी प्रकार का विभाजन एक प्रकार से स्वेच्छित ही कहा जायगा। आर्यावर्त्त के मध्यदेश अथवा वर्तमान हिंदी प्रदेश के पृथक् अस्तित्व का यही प्रधान कारण रहा है। यद्यपि इस विस्तृत क्षेत्र के दोनों छोरों पर एक दूसरे से भिन्न रहन-सहन तथा रस्म-रिवाज मिल जायँगे, किन्तु यह पता लगाना कि किस विशेष स्थान पर एक इकाई का अन्त होता है तथा दूसरी का प्रारम्भ होता है एक प्रकार से कठिन ही है। गगा के मैदान की सस्कृति का यह प्रवाह पूर्व की ओर वढता है इसका मुख्य कारण गगा तथा उसकी सहायक अन्य कई स्थायी नाव चलाने योग्य नदियों का होना है जो उसी दिशा की ओर बहती है। एक समय जब कि नदियाँ ही यातायात की प्रमुख साधन थी, उनके महत्त्व को नही भुलाया जा सकता। नहरों के बन जाने के कारण इन नदियों में से अनेक अब वर्षा ऋतु को छोड कर अन्य ऋतुओं मे नाव चलाने योग्य नहीं रह गई है। किन्तु यह परिवर्तन उस युग मे हो रहा है जब नए यातायात के साधनों के हो जाने के कारण नदियों का इस दृष्टि से महत्त्व विशेष नही रह गया है।

७. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में ब्रजभाषा क्षेत्र की स्थिति को समझना सरल हो जायगा। यह मध्यदेश के दक्षिण पश्चिम मे है। इस प्रदेश का अधिकांश उत्तरी-पूर्वी भाग गंगा-यमुना के दोआब में पडता है तथा गंगापार तराई तक चला गया है। इसका दक्षिणी-पश्चिमी भाग विंध्य भूमि का एक अंश है, जो मध्यभारत तथा राजस्थान तक फैला हुआ है। यमुना तट पर बसे हुए मथुरा और वृन्दावन इस दूसरे खण्ड के अधिक निकट है, इसी कारण ब्रज का लगाव कोसल काशी से कही अधिक राजस्थान तथा बुन्देलखड से है। ब्रज, बुन्देली और पूर्वी राजस्थानी का अन्तर वास्तव में केवल मात्रा का ही है। उत्तर मे ब्रज-प्रदेश धीरे धीरे सरहिंद में मिल जाता है, जो प्राकृतिक रूप मे उसी मैदान का एक भाग है। किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है सरहिद मे पजाबी तथा विदेशी प्रभाव अत्यधिक मात्रा मे मिलने लगते है। नैमिषारण्य (लखीमपुर-खेरी ज़िले का वर्तमान नीमसारन जहाँ प्रसिद्ध महाभारत की रचना हुई थी) से लेकर रामायण के प्रयाग वन अर्थात् वर्तमान इलाहाबाद तक इस क्षेत्र में जंगलों की एक पेटी सी थी। यह जंगल बहुत प्राचीन समय मे ही काट डाले गए थे, इसलिए मध्यदेश के पश्चिम और मध्यभाग की यह विभाजक रेखा अस्पष्ट हो गई थी। इस प्राचीन वन के कुछ चिह्न आज भी पलाश वृक्षो की पेटी के रूप मे खेरी, सीतापुर, हरदोई और फतेहपुर ज़िलों मे पाए जाते है। इस क्षेत्र मे जन सख्या का घनत्व भी कम है। इस पेटी के पूर्व और पश्चिमी भागों की जनसंख्या ८०० से लेकर ५०० मनुष्य प्रति वर्ग मील है किन्तु पेटी की जनसंख्या प्रति वर्ग मील ५०० से लेकर ३०० तक ही है।[1]

---

[1] भारत की जनगणना रिपोर्ट सन् १९३१, जिल्द १, भाग १, पृष्ठ ६।

मध्यदेश का पश्चिमी भाग किसी समय एक पृथक् इकाई के रूप मे था, इस बात का पता इसके 'ब्रह्मर्षिदेश' नाम से भी चलता है। यह नाम कुरु, पञ्चाल, शूरसेन और मत्स्य जनपदों के समूह का था।[१] इस प्रकार हम देखते है कि ब्रज-क्षेत्र को किसी भी ओर से विभाजित करने वाली कोई प्राकृतिक सीमा नही है। विभाजक अंग प्राकृतिक से कही अधिक सास्कृतिक है और इन पर आगे विचार किया जायगा।

२. ब्रजवासी जनता

राजनीतिक परिवर्तन

८. ब्रज क्षेत्र प्राकृतिक रूप मे जिस प्रकार शेष मध्यदेश से अलग नही है, इसी प्रकार इस क्षेत्र की जनता की भी कोई पूर्णतया पृथक् सास्कृतिक इकाई नही है। उसे समझने के लिए यह आवश्यक है कि मध्यदेश के सास्कृतिक इतिहास की सक्षिप्त रूपरेखा समझी जावे। मध्यदेश की जनता, जिनका मदेसिया (मध्यदेशीय) नाम आज भी नेपाल मे सुनाई पड जाता है, बहुत प्राचीन समय से अनेक जनपदों मे विभक्त थी। जनपद कदाचित आर्यो के 'जन' अथवा टोलियो के उपनिवेश थे जो मुख्यतया गगा, यमुना और सरयू के किनारे सुविधानुसार, कुछ कुछ दूरी पर बसे थे। गौतम बुद्ध[२] के समय तक इनका पृथक् अस्तित्व था।

मध्यदेश मे गगा के किनारे तीन प्रमुख जनपद थे, जो कुरु, पञ्चाल और काशी नाम से प्रसिद्ध थे। शूरसेन और वत्स यमुना के किनारे थे तथा कोशल सरयू के किनारे था। मत्स्य और चेदि विध्य प्रदेश मे क्रमश शूरसेन और पञ्चाल के दक्षिण मे थे। वश और उशीनर हिमालय के दक्षिणी भाग मे थे किन्तु राजनीतिक दृष्टि से ये अधिक महत्त्वपूर्ण नही थे। इनमे से कुछ जनपदों को साथ मिला कर भी पुकारा जाता था। कुरु-पचाल तथा कोसल-काशी का नाम बहुधा साथ साथ आता है। इस बात का ऊपर उल्लेख हो चुका है कि चार पश्चिमी जनपद अर्थात् कुरु, पञ्चाल, शूरसेन और मत्स्य सामूहिक रूप मे ब्रह्मर्षिदेश के नाम से प्रसिद्ध हो गए थे।

९. सम्पूर्ण आर्यावर्त तक और बीच बीच मे उसके बाहर भी फैलने वाले साम्राज्यों के उत्कर्ष के फलस्वरूप गौतम बुद्ध के बाद जनपदो की पृथक् राजनीतिक सत्ता लुप्त हो गई। इन साम्राज्यो मे सब से पहला साम्राज्य मौर्यों का था, जिनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी, दूसरा साम्राज्य गुप्त वश का था जिसने बाद मे पाटलिपुत्र से हटा कर अपनी राजधानी अयोध्या बनाई थी, तथा तीसरा साम्राज्य सम्राट् हर्षवर्द्धन का था जिन्हे सरहिद में स्थित स्थानेश्वर—वर्तमान थानेसर—से हट कर अपनी बहिन के राज्य की देखभाल करने के लिए प्राचीन पचाल मे स्थित कान्यकुब्ज (कन्नौज) आना पडा था। सम्राट् हर्षवर्द्धन का साम्राज्य लगभग मध्यदेश के जनपदो तक ही सीमित था। मुसलमानो के आने से पहले अधिकाश ठेठ मध्यदेश गहरवार वश द्वारा कन्नौज से शासित होता था, जिनकी

---

[१] मनु० २-१९। [२] विनयपिटक, २, १४६।

दूसरी राजधानी काशी थी। पश्चिम मे दिल्ली का चौहान राज्य था, जो अपने अंतिम दिनों में अजमेर तक फैला हुआ था। दक्षिण मे महोबा राज्य था, जो यमुना के दक्षिण में सम्पूर्ण निकटवर्त्ती विंध्यभूमि पर छा गया था।

विदेशी मुसलमान शासकों ने मध्यदेश मे अपना नया साम्राज्य स्थापित कर पहले दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया किन्तु बाद मे राजस्थान, तथा बुन्देलखण्ड के राजाओं पर अधिक नियंत्रण रखने के लिए उन्हे राजधानी दिल्ली से हटा कर ब्रजप्रदेश मे आगरा में बनानी पडी (१५०२ ई०)। सुल्तान तथा मुगलों का साम्राज्य मध्यदेश के भी बाहर सम्पूर्ण आर्यावर्त मे फैला हुआ था, और कुछ समय तक तो दक्षिण के भी कुछ भाग पर उसका अधिकार हो गया था। मुगल सम्राट् अकबर के समय मे साम्राज्य कई सूबों मे बाँट दिया गया था। मध्यदेश में मुख्य सूबे दिल्ली, आगरा, अवध और इलाहाबाद थे।

१०. अठारहवी शताब्दी में, अर्थात् मुगल साम्राज्य के अतिम दिनो मे, अवध स्वतंत्र राज्य मे परिणत हो गया। दक्षिण का अधिकांश भाग भी या तो किसी हिंदू राजा के सरक्षण में आ गया अथवा मराठों ने छीन लिया। मध्यभारत के ग्वालियर (सिंधिया) तथा इन्दौर (होल्कर) राज्य मध्यदेश मे मराठों की विजय के चिह्न थे। विंध्यभूमि के पूर्वी भाग के रीवाँ, छतरपुर, पन्ना आदि के राज्य स्थानीय हिन्दू राजाओ की स्वतंत्रता के स्मृति-चिह्न थे। इसी प्रकार के कुछ अन्य राज्य जैसे भरतपुर, धौलपुर, करौली आदि राजस्थान के अंग बन गए थे।

११. मुगल शक्ति के क्षीण हो जाने पर मध्यदेश मे राजनीतिक सत्ता के लिए मराठो तथा अंग्रेज़ों मे संघर्ष हुआ। मराठों का दबाव दक्षिण की ओर से था। यहाँ तक कि अब नाममात्र को मुगलो की राजधानियाॅ कहे जाने वाले दिल्ली तथा आगरा जैसे नगरों मे भी उनका बोलबाला हो गया था।

उधर अंग्रेज पूर्व की ओर से गगा के निचले मैदानों से धीरे धीरे बढ रहे थे। उत्तर-पश्चिम से प्रवेश करने वाले एक नवीन मुसलमान आक्रमणकारी अहमदशाह अब्दाली ने सरहिंद में पानीपत के मैदान मे (१७६१ ई०) मुगलों की शक्ति छिन्न-भिन्न कर दी थी, दूसरी ओर प्लासी के युद्ध की सफलता (१७५७ ई०) के बाद ही बक्सर की विजय ने (१७-६४ ई०) वास्तव मे अग्रेज़ों को मध्यदेश के पूर्वी भाग का स्वामी बना दिया था। लासवारी के युद्ध (१८०३) के बाद तो पश्चिमी मध्यदेश भी अग्रेज़ो के हाथो मे चला गया था। १८५६ ई० के बाद अवध को मिला कर आगरा तथा अवध के संयुक्त प्रात के नाम से नये प्रांत का निर्माण किया गया था। दिल्ली, जो हिन्दी भाषी प्रदेश का एक भाग है, बहुत दिनों तक एक ब्रिटिश एजेन्ट (१८०३-१८५८ ई०) के सरक्षण मे रहा। १८५८ ई० मे इसे पजाब में मिला दिया गया था, किन्तु (१९११ ई० मे) इसे एक अलग प्रान्त बना दिया गया था। मध्यदेश का विध्य भाग पहले संयुक्त प्रान्त के पुराने रूप उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त (१८३५-१८६१) के अतर्गत था, किन्तु बाद मे मध्य प्रान्त के नाम से (१८६१ ई०) यह भी एक अलग प्रान्त बना दिया गया था। इस प्रकार अग्रेज़ी शासन मे मध्यदेश अथवा हिंदी प्रदेश की जनता तीन या चार राजनीतिक प्रान्तों में विभक्त कर दी गई थी अर्थात् दिल्ली, सयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार।

१२. मध्यदेश में होने वाली राजनीतिक उथल-पुथल की उपर्युक्त रूप-रेखा से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रज प्रदेश अथवा प्राचीन शूरसेन जनपद ने अपनी राजनीतिक सत्ता खो दी थी और वह उत्तर और पूर्व में केन्द्र रखने वाले राज्यों का एक साधारण अंग मात्र रह गया था। मुगल साम्राज्य के अंतिम दिनों में जब राजधानी दिल्ली से उठ कर ब्रज प्रदेश में अर्थात् आगरा मे आई तब राजनीतिक दृष्टि से एक बार फिर लोगों का ध्यान ब्रज प्रदेश की ओर आकृष्ट हुआ। यह स्मरण रखना चाहिए कि आगरा मुगल साम्राज्य का एक प्रान्त था इसलिए इस क्षेत्र का पृथक् अस्तित्व हो गया था, जैसा कि बाद के नामकरण संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध से स्पष्ट होता है। राजधानी के आगरा हो जाने से शासकों के द्वारा स्थानीय बोली की संरक्षिता पर प्रभाव पड़ा। यह प्रवृत्ति एक प्रकार से पडोस के हिन्दू राजाओं तथा मराठा शासको के दरबारों तक में आ गई थी।

सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था

१३ मध्यदेश कृषि प्रधान प्रदेश है। इसकी ९०% जनता छोटे गॉवो मे या खेतों के बीच बसे हुए पुरवों में बसती है, तथा जीविका के लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर रहती है। तराई मे बहुत जंगल है और दक्षिणी विंध्य भाग में खनिज पदार्थों का बाहुल्य है। किंतु प्राचीन अथवा मध्यकाल मे इस सामग्री का इस प्रकार कभी उपयोग नही किया गया था कि इन क्षेत्रों मे महत्त्वपूर्ण उद्योग-धधे विकसित हो जाते। गंगा का मैदान इतना अधिक उपजाऊ है और फिर उसकी सुन्दर जलवायु के कारण लोगों की आवश्यकताएँ इतनी कम है कि जीविका के लिए उन्हे अन्य किसी साधन की आवश्यकता ही नही पडती थी। इस आर्थिक व्यवस्था के कारण प्राचीन काल से ही मध्यदेश की जनता को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकने की आवश्यकता नही पडी। इसके अतिरिक्त कृषि के व्यवसाय में यह असम्भव है कि लोग उसे छोड कर अधिक समय के लिए इधर-उधर जा सकें। गंगा के मैदान में दो फसलें होती हैं—एक वर्षा ऋतु मे तथा दूसरी जाडों मे। ये क्रम से मुख्य रूप से चावल तथा गेहूँ की होती है। जाडे की फसल के बाद बसन्त ऋतु मे जब कृषकों को थोडा सा अवकाश मिलता है तो होली आदि कुछ प्रधान धार्मिक तथा सामाजिक उत्सव मनाए जाते है। जून के अंत में बरसात प्रारंभ हो जाती है और किसान फिर कृषि सम्बन्धी कार्यों में लग जाते है। खेतों को जोत-बो चुकने के बाद उन्हें थोडा अवकाश अवश्य मिलता है किन्तु अधिक वर्षा होने के कारण नदियों में बाढ़ आ जाती है और कच्ची सडकों पर चलना कठिन हो जाता है, इसलिए बाहर निकलना असम्भव हो जाता है। चौमासा (चतुर्मास्य अर्थात् जून से सितम्बर तक) तो अब भी ग्रामीणों द्वारा ऐसा समय समझा जाता है जब लोग बाहर न जा कर घर में ही आनन्द मनाते है तथा व्यायाम आदि के द्वारा स्वास्थ्य-लाभ करते है। वर्षा ऋतु की फसल तैयार करने तथा उसे काटने के उपरांत किसान को फिर थोडा सा अवकाश मिलता है, और इसीलिए जाडे की ऋतु के प्रारम्भ (अक्टूबर-नवम्बर) में अनेक प्रकार के सामाजिक तथा धार्मिक मेले होते है। ये सब मेले आर्थिक पक्ष भी रखते हैं, जिनमें अधिकांश में वाणिज्य की महत्त्वपूर्ण हाटें लगती हैं। गाँव की आवश्य-

कता के प्रायः सभी सामान जैसे ढोर, गाड़ियाँ, बर्तन, महीन वस्त्र, आभूषण, कृषि सम्बन्धी औज़ार इत्यादि इन धार्मिक सम्मेलनों के नाम पर लगने वाले मेलों मे मिल जाते है। वास्तव में इनके आर्थिक तथा धार्मिक दोनों ही पक्ष होते है। सुदूर सम्बन्धियों से मिलने का अवसर भी इनमें मिल जाता है। किन्तु इस समय भी किसान एक पखवारे अथवा एक मास से अधिक समय के लिए बाहर नही रह सकता, क्योकि जाडा आ जाने से उसे आगे आने वाली फ़सल की तैयारी करनी पड़ती है। इस प्रकार हज़ारो वर्षों से मध्यदेश की अधिकाश जनता का जीवन-चक्र इसी प्रकार अनवरत रूप से चल रहा है।

यातायात के साधनों की कठिनाई के कारण प्राचीन तथा मध्यकाल मे बहुत दूर की यात्रा संभव नही हो सकती थी। अधिक से अधिक यात्रा का स्थान दस दिनों की दूरी वाला हो सकता था। यह यात्रा पैदल, बैलगाडी या नाव से होती थी, जिन सबकी गति प्रायः एक सी ही रहती है। साधारण औसत से चलने वाला व्यक्ति एक दिन मे १० मील पैदल चल सकता है, इस प्रकार यात्रा की दूरी लगभग १०० मील ठहरती है। फिर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि लौटने मे भी १० दिन का समय लगेगा। इसके अतिरिक्त १०० मील चल कर लगभग एक सप्ताह विश्राम करना तथा यात्रा का आनन्द लेना भी आवश्यक होगा। इस प्रकार एक मास का अवकाश समाप्त हो जाता है। फलस्वरूप अधिकाश मेले लगभग १०० मील की परिधि के लोगो को खीच लेते रहे है। वर्तमान समय मे यातायात की सुविधा, विशेषतया रेल और बस के कारण, परिस्थिति मे परिवर्तन हो रहा है, किन्तु निर्धनता के कारण सर्व साधारण इन सुविधाओं से अधिक लाभ नही उठा पा रहा है। उच्च वर्ग के लोग ही इन नवीन साधनो का विशेष उपयोग अधिक करते है। यह भी सत्य है कि समस्त आर्यावर्त के लिए और बाद मे सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए भी ऐसे सामाजिक-धार्मिक मेले लगते थे, जिनके मुख्य केन्द्र तीर्थस्थान थे, जैसे बद्रीनारायण, हरद्वार, मथुरा, अयोध्या, काशी, प्रयाग, गया, द्वारिका, जगन्नाथ और रामेश्वरम्। इनमे से अधिकाश स्थान मध्यदेश मे ही स्थित है। किन्तु इन स्थानो मे भी बहुत दूर के गाँवो की जनसख्या के यात्रियो का प्रतिशत अत्यत न्यून रहता रहा है और जनसंख्या का यह नगण्य भाग भी शायद अपने जीवनकाल मे केवल एक ही बार अपनी अभिलाषा की पूर्ति कर पाता रहा है। इसलिए साधारण जनता पर इन अखिल भारतीय केन्द्रो का प्रभाव अधिक नही पड़ सकता था।

१४. मध्यदेश के जनपदो मे लगभग १०० मील के अर्द्ध व्यास को लेकर अथवा २०० मील की दूरी पर एक बड़ा नगर रहा है जिसे पुर कहते थे। यह नगर जनपद की राजधानी होता था और राजनीतिक दृष्टि से ही नही वरन् पडोस के जनपदों के लेन देन का बाज़ार होने के कारण आर्थिक दृष्टि से भी महत्व रखता था। कुछ पुर धार्मिक तथा सास्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हो गए थे, जैसे मथुरा, अयोध्या तथा काशी। राजधानी मे उच्चकोटि के साहित्य तथा बहुमूल्य कला को भी संरक्षण मिलता था। इस प्रकार इस नगर विशेष पर जनपद की जनता की दृष्टि केन्द्रित रहती थी, और उस क्षेत्र विशेष की सास्कृतिक एकता बनाए रखने मे जनपद की यह राजधानी महत्त्वपूर्ण हाथ रखती थी। किन्तु इन पुरवासियों (पौर, नागर, शहरुआ लोगों) का जीवन तो रेगिस्तान में नख-

लिस्तान की भॉति पृथक्, अपने मे पूर्ण तथा ऐसे स्तर का होता था जो साधारण ग्रामवासी की पहुँच के बाहर था। इसी कारण गगा के मैदान मे हम दो प्रकार का जीवन पाते रहे है—एक तो ग्रामीण संसार जो प्राकृतिक जीवन के अधिक निकट है, दूसरा शहर का जीवन जिसके प्रत्येक व्यवहार मे कृत्रिमता तथा कलात्मकता अधिक रहती है। कुछ साधारण समानताओं को छोड कर ग्रामीण (जानपद) और नागरिक (पौर) जीवन मे सर्वदा एक गहरी सास्कृतिक खाई रही है। यह स्मरण रखना चाहिए कि नगरों की जनसंख्या किसी भी जनपदी क्षेत्र मे अधिक नही रही। उत्तर प्रदेश मे ५००० जनसख्या वाले नगरों को मिला कर भी यह संख्या १९३१ ई० मे केवल ११% थी, किन्तु उच्च संस्कृति की उत्पत्ति मे उनकी देन अवश्य अधिक रही है—विशेषतया मध्यकाल तथा आधुनिक काल मे। वास्तव मे मध्यदेश अथवा शेष भारत का भी इतिहास मुख्यतया केवल ३% या ४% नागरिक जनता का, बल्कि उनमे से भी शासक वर्ग अथवा साहित्यिक परिवारो के मुट्ठी भर थोडे से लोगो का इतिहास है।

१५. मध्यदेश मे बडे-बडे साम्राज्य स्थापित हो जाने पर और उसके बाद विदेशी सस्कृति वाले आक्रमणकारियो द्वारा राजनीतिक तथा धार्मिक उथल पुथल होने पर भी यहाँ के जीवन की व्यवस्था मे कोई तात्त्विक अन्तर नही आया। गॉव का जीवन, यहॉ तक कि १५० वर्षो के अग्रेजो के राज्य के बाद भी, इस समय बीसवी शती मे लगभग उसी परंपरागत गति से चला जा रहा है। इस अपरिवर्त्तनशीलता के मूल मे आर्थिक कारण इतने गहरे है कि गॉव के सामाजिक ढाॅचे मे किसी प्रकार का भी परिवर्तन नही हो पाता है। विदेशी प्रभाव प्राय: बडे नगरो तक ही सीमित रह जाता है, जहाँ की जनसख्या १०% से भी कम है। यह सत्य है कि विदेशी शासन कालो मे मध्यदेश की गाव की जनता का विशेष आर्थिक शोषण हुआ है, और अधिक निर्धनता के कारण उस मात्रा मे गॉव के धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक जीवन मे अधिक विशृंखलता आ गई है। मुस्लिम शासन काल मे तो सम्पत्ति शाही राजधानी मे केन्द्रित हो जाया करती थी, और क्योकि यह राजधानी मध्यदेश मे ही स्थित होती थी इसलिए कम से कम कुछ धन फिर गॉवो मे लौट जाता था। किन्तु अग्रेजी साम्राज्य काल मे सम्पत्ति का अधिक भाग शिक्षित कहे जाने वाले वर्ग के माध्यम से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे देश के बाहर चला जाता था। यहां यह स्मरण दिलाना उचित होगा कि पौराणिक, मुसलमान तथा अग्रेजी साम्राज्यकालो मे प्रान्तीय केन्द्र भी बराबर रहे। मुसलमान काल के सूबो की राजधानी तथा अग्रेजी-भारत के ज़िले अथवा कमिश्नरियों के प्रधान नगरो का लगभग वही स्थान था जो प्राचीन समय मे जनपद के पुर का होता था। आज भी इस परिस्थिति मे अंतर नही हुआ है।

१६. आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थतियों के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यदेश मे बोलियो के इतने भेद क्यो पाए जाते है। समाज का आर्थिक ढाँचा हमे इस निष्कर्ष पर पहुँचा देता है कि इस विभाजन की उत्पत्ति का मूल कारण आर्यों के

उपनिवेशों अथवा जनपदों के रूप मे गगा की घाटी[1] मे सर्वप्रथम था। ब्रज प्रदेश भी इसी प्रकार का एक क्षेत्र है, जिस पर उपर्युक्त सभी बाते घटित होती है। यह क्षेत्र आगरा या मथुरा को केन्द्र मान कर यमुना के दोनों ओर लगभग १०० मील तक फैला हुआ है। जैसा ऊपर कहा गया प्रारम्भ मे मथुरा राजनीतिक तथा धार्मिक दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, यद्यपि अब उसका महत्त्व केवल धार्मिक ही रह गया है। आगरा मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम दिनो मे एक नवीन राजनीतिक तथा सामाजिक केन्द्र बन गया था। ब्रजप्रदेश के उत्तर मे स्थित दिल्ली, एक विश्व विख्यात नगर होते हुए तथा ८०० वर्षों तक भारतीय विदेशी साम्राज्यों की राजधानी रहते हुए भी, ब्रज क्षेत्र को विशेष प्रभावित नही कर सका। दक्षिण मे ग्वालियर और जयपुर ब्रज क्षेत्र के आगरा तथा मथुरा के सास्कृतिक केन्द्रो से प्रभावित हुए है। सम्भवत· इनमे आदान और प्रदान दोनों ही विशेष होते रहे है।

पूर्व की ओर कन्नौजी क्षेत्र पर ब्रज के प्रभाव का विशेष विस्तार धार्मिक तथा राजनीतिक दोनो ही कारणो मे खोजा जा सकता है। निकटवर्ती सम्पूर्ण पूर्वी क्षेत्र मथुरा-वृन्दावन के कृष्ण सम्प्रदाय के प्रभाव के अन्तर्गत आगया था। वर्ष मे एक बार लोग बडी संख्या मे कृष्णभक्ति से संबद्ध इन स्थानो को जाते थे तथा इनसे पद साहित्य लेकर घर लौटते थे जिसका प्रभाव वर्ष भर बना रहता था। यहाँ तक कि ब्रज क्षेत्र के उत्तर-पूर्व की सीमा पर स्थित लेखक के गाँव तक मे इन दोनो रूपो मे धार्मिक प्रभाव आज भी मिलता है। कुछ वर्ष पहले तक जब लोगो की आर्थिक दशा कुछ अधिक अच्छी थी और वर्तमान आर्थिक तथा सामाजिक उथल पुथल ने लोगों को आक्रान्त नही किया था यह प्रभाव और भी अधिक था। बारहवी शताब्दी के अन्त मे मुसलमान आक्रमणकारियो द्वारा कन्नौज नगर के नष्ट हो जाने के उपरान्त विदेशी शासनो के पूर्वी क्षेत्र मे किसी नगर का न रह जाना ही कदाचित् ब्रज क्षेत्र के प्रभाव का पूर्व की ओर फैलने का मुख्य राजनीतिक कारण था। यातायात की सुविधा के कारण यह क्षेत्र सीधे दिल्ली अथवा आगरा से नियत्रित हो सकता था, इसलिए विदेशी शासको ने इस स्थान पर दूसरा राजनीतिक केन्द्र बनाना प्रारम्भ मे आवश्यक नही समझा। कन्नौज का मुस्लिम सस्करण फरुखाबाद नगर प्रसिद्धि नही पा सका। अवध के नियंत्रण के लिए उनके केन्द्र कुछ पूर्व की ओर हटे हुए फैजाबाद अथवा लखनऊ थे तथा अवध के दक्षिणी भाग के लिए इस प्रकार के नगर फतेहपुर, कडा तथा इलाहाबाद थे। किन्तु इन सब कारणो के रहते हुए भी केवल दूरी के कारण ब्रज का पूर्व क्षेत्र कुछ निजी विशेषताएँ बनाए रहा। इनमे से कुछ भाषागत विशेषताएँ साहित्यिक ब्रजभाषा की अग स्वरूप हो गई थी। यह पहले ही कहा जा चुका है कि दिल्ली से शाही राजधानी को उठा कर आगरा ले जाने से चारों ओर के लोगो का ध्यान

[1] इस विषय में विस्तृत सुझाव के लिए देखिए लेखक का 'Identity of the Present dialect-areas of Hindustan with the ancient Janapadas' शीर्षक लेख—इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़, भाग १ (१९२५)

ब्रज प्रदेश की ओर आकृष्ट होने मे सहायता मिली थी। किसी राजनीतिक अथवा व्यवसायिक उद्देश्य से आगरा आने वाले हिंदू मथुरा-वृन्दावन के धार्मिक केन्द्रो के अवश्य दर्शन करते थे, इसी प्रकार मथुरा-वृन्दावन आनेवाले यात्री प्रायः आगरा भी जाते थे।

१७ किसी धार्मिक अथवा राजनीतिक केन्द्र मे यातायात के अभाव ही उस स्थान की विशेष सामाजिक प्रवृत्तियों एवं रहन सहन के विकास के लिए उत्तरदायी रहा है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था भारत में जाति-भेद रही है, जिसने विदेशियो द्वारा देश के अधिकृत हो जाने पर समाज को सुरक्षित बनाए रखा। सामाजिक रक्षा की दृष्टि से इस समय विवाह, भोजन तथा 'हुक्का-पानी' आदि के कुछ कडे नियम बने। साधारण समान बातो के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत मे पाए जाने वाले जाति-भेद के ढॉचे मे हमें कुछ ऐसी स्थानीय विलक्षणताएँ मिलती है जो उसी क्षेत्र विशेष मे ही पाई जाती है। बहुत सी ऐसी उपजातियाँ मिलती है जिनका नाम किसी स्थान अथवा नगर विशेष के आधार पर पडा है। उदाहरण के लिए ब्रज प्रदेश से सबंधित माथुर ब्राह्मण और माथुर कायस्थ ऐसी ही उपजातियॉ या बिरादरियॉ है, जो ब्राह्मण तथा कायस्थ जातियो के बीच अपनी निजी इकाई रखती है। कन्नौज का प्राचीन केन्द्र, जो हिन्दू राज्यकाल के अंतिम भाग में बहुत शक्तिशाली राज्य था, ब्राह्मणो के बीच कान्यकुब्ज उपजाति के लिए उत्तरदायी है। इसी प्रकार कदाचित् एटा जिले के बौद्ध नगर सकिसा के नाम पर कायस्थों मे एक सक्सेना नामक उपजाति बन गई। इस प्रकार की उपजातियो की विवाह तथा खान-पान सम्बन्धी सीमाएँ स्थिर हो गई। मुस्लिम शासन काल की सास्कृतिक उथल-पुथल भी पूर्व तथा पश्चिम ब्रज-क्षेत्र मे बने इन सामाजिक समूहो की इकाइयो मे ऐक्य स्थापित न कर सकी, क्योकि दूरी के अधिक होने के कारण सम्पूर्ण क्षेत्र मे उचित सामाजिक देख रेख नही संभव थी। इसके अतिरिक्त ऐसी सामाजिक दुर्दशा के काल मे रक्षा के लिए अन्य किसी प्रकार का परिवर्तन करना सम्भव नही था, जब कि देश मे न तो अपना कोई राष्ट्रीय शासक था और न जनता के पथ-प्रदर्शन के लिए अपनी सरकार ही थी। क्षेत्र विशेष की बोलियो का सगठन भी इन्ही स्थानीय उपजातियो द्वारा स्थिर रहा। माथुर उपजातियॉ, जिनमे साधारणतया आपस मे ही विवाह होते रहे, इस बात के लिए बाध्य रहती है कि बोली की एकता सुरक्षित रखे। इसी प्रकार की परिस्थिति ब्रज क्षेत्र की पूर्वी उपजातियो के समूहो की है। इस प्रकार ११ वी, १२ वी शताब्दियो मे जो सामाजिक ढॉचा बना था वही आज भी चल रहा है, क्योकि जिस स्थिति मे उसकी उत्पत्ति हुई थी वह अब तक पूर्ण रूप से नही बदली है। आधुनिक काल मे गॉवो के आर्थिक जीवन मे लौट-पौट होने तथा शहरो मे अंग्रेजी शिक्षा और सुधार आन्दोलनों द्वारा नवीन विचारों के प्रभाव से ऐसी अवस्था उत्पन्न हुई है जिसमे कि समाज का नया ढॉचा पुरानी परम्परा को हटा कर उसका स्थान ग्रहण कर लेगा। किन्तु अब तक तो इसका व्यावहारिक रूप प्रायः नगण्य सा ही रहा है। सोचने वाले वर्ग के विचार-जगत् पर इसका प्रभाव अवश्य पडा है।

१८ छोटे-छोटे रीति-रिवाजों तथा रहन-सहन के ढँगो मे भी भिन्न-भिन्न जनपदी

प्रदेशों में अन्तर पाया जाता है। विवाह अथवा अन्य अवसरों पर कुछ ऐसी स्थानीय रीतियाँ प्रचलित हैं, जो उसी क्षेत्र विशेष तक ही सीमित होती हैं। पहनावे मे, विशेषतया स्त्रियों के पहिनावे मे, स्थानीय विशेषताएँ मिलती है। ब्रज प्रदेश का कमर के नीचे का स्त्रियों का पहनावा लहँगा अथवा घाघरा है। यह पहनावा ब्रजभाषा से सबधित अन्य प्रदेशों--उत्तरी पहाडी प्रदेश तथा राजस्थान और बुन्देलखण्ड--में भी प्रचलित है। अवध से धोती अथवा साडी का चलन प्रारम्भ होता है जो पहनने के ढग मे कुछ रूपान्तरो के साथ पूर्व मे बगाल तक प्रचलित है। भोजन मे पजाब की भाँति ब्रज क्षेत्र में गेहूँ और राजस्थान के समान बाजरे की प्रधानता है। अवध मे तथा पूर्व मे चावल की बहुलता है। अवध का स्थानीय वृक्ष महुआ ब्रज मे पाया ही नही जाता। आम अवश्य समस्त मध्यदेश का राष्ट्रीय वृक्ष है, जो राजस्थान अथवा पहाडी प्रदेशो को छोड कर, जहाँ जलवायु के कारण यह नही हो सकता है, सम्पूर्ण देश मे पाया जाता है। कदाचित् मुसलमानो के अधिक सम्पर्क में रहने के कारण अथवा वैष्णव सप्रदायो के उदार प्रभावों के कारण पश्चिमी मध्यदेश मे भोजन विषयक उतनी अधिक कट्टरता नही है। प्राचीन उदार आर्य सस्कृति की परंपराएँ भी इसके मूल मे हो सकती है। इस सबध मे पूर्व मध्यदेश अधिक कट्टर तथा सकुचित है। इसका कारण उसका मुसलमानी केन्द्रो से दूर होना हो सकता है तथा साथ ही काशी के प्रभाव का निकट होना हो सकता है, जो सनातनी कट्टर हिंदू परंपरा का केन्द्र रहा है। पश्चिमी मध्यदेश के लोग पूर्वी लोगो की अपेक्षा स्नान आदि व्यक्तिगत स्वच्छता की ओर कम ध्यान देते हैं। यह बात सम्भवत: जलवायु--पश्चिमी प्रदेश के अधिक ठण्डा होने के कारण--तथा मध्यकाल मे मुसलमानो से अधिक सम्पर्क इन दोनो ही कारणो से हो सकती है। इसी प्रकार साधारण आदतो तथा रहन-सहन मे भी कुछ वारीक अन्तर पाये जाते है।

१९. यह जानना रोचक होगा कि ब्रज क्षेत्र के उत्तर का सरहिद अर्थात् प्राचीन कुरु जनपद इसी प्रकार की दूसरी सास्कृतिक इकाई है, जिसमे पजावी तथा इस्लामी प्रभाव हिंदी प्रदेश मे सब से अधिक पाये जाते है। पजाबी की भाँति यहाँ की वोली मे द्वित्व व्यंजनो की प्रवृत्ति, हिंदू स्त्रियो द्वारा भी पायजामे का पहना जाना, दूसरी जाति के लोगो के बनाए भोजन को स्वीकार करने मे अधिक कट्टरता का न होना इत्यादि कुछ ऐसी विशेषताएँ है जिसे साधारण दर्शक भी भली प्रकार देख सकता है। भौगोलिक निकटता के अतिरिक्त गंगा तट पर इसी क्षेत्र मे हरद्वार की स्थिति पजाबी प्रभाव के इस क्षेत्र मे प्रवेश कराने का दूसरा महत्वपूर्ण कारण रही है। पजाबी हिंदुओ की तीर्थ यात्रा का हरद्वार सब से महत्त्वपूर्ण स्थान है जहाँ ये वर्ष मे कई बार गगा मे स्नान करने के लिए एकत्रित होते हैं और इस प्रकार निकट के दिल्ली, मेरठ, मुरादाबाद, मुजफ्फरनगर आदि जिलो से व्यापारी तथा वहाँ की जनता अपने इन पश्चिमी पडोसियो के सम्पर्क मे निरन्तर आती रहती हैं। इस क्षेत्र के पूर्व मे मध्यदेश मे मुस्लिम शासन काल का अन्तिम अवशेष रामपुर की मुसलमानी रियासत है। इस रियासत की उपस्थिति मुस्लिम संस्कृति की कुछ विशेषताओ को सुरक्षित रखने मे बहुत सहायक रही।

धार्मिक आन्दोलन

२०. वैदिक तथा बौद्धकाल मे मध्यदेश के धार्मिक इतिहास पर यहाँ विचार करना अनावश्यक होगा। वैदिक धर्म का यज्ञ-सम्बन्धी पक्ष तथा बौद्ध धर्म के आदि रूपो का पोषण क्रमशः पश्चिम तथा पूर्व मध्यदेश मे हुआ था यह बात बहुधा भुला दी जाती है। मध्यदेश से ही वे शेष आर्यावर्त मे तथा भारतवर्ष के बाहर तक फैले थे। किंतु वैदिक अथवा बौद्ध धर्म का स्पष्ट अवशिष्ट प्रभाव लोगो के वर्तमान धार्मिक विश्वासो पर नही दिखलाई पडता। जो प्रभाव है भी वह बहुत ही कम है। प्राचीन ग्रथो तथा खुदाई से इस बात के प्रमाण मिलते है कि ब्रज के हृदय प्रदेश मे स्थित मथुरा नगरी बौद्ध काल मे भी एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक केन्द्र थी। किन्तु प्राचीन वैभव की यह स्मृति सर्वसाधारण द्वारा पूर्णतया भुला दी गई है। जलवायु के प्रभाव तथा धर्मोन्मत्त भारतीय एव विदेशी शासको की धर्मांधता के कारण मथुरा मे ऐसा कोई महत्त्वपूर्ण अवशेष नही रहा है, जिससे उसका पूर्वरूप पहचाना जा सके।

२१. मध्यदेश मे लिखे गए रामायण तथा महाभारत महाकाव्यों के दोनों महान् नायक राम और कृष्ण की पूजा मध्यकाल मे देश के धार्मिक इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस घटना ने इन महाकाव्यों के मूल रूप को ही बदल दिया, और इसके साथ ही पौराणिक तथा प्राचीन सस्कृत साहित्य मे भी रूपान्तर कर दिया। उस काल के लोगो के धार्मिक विश्वासो को बदलने मे पुराणों मे भागवत पुराण का सर्वाधिक प्रभाव था।

२२. १००० ई० के बाद ब्रज क्षेत्र तथा शेष मध्यदेश दो नवीन धार्मिक शक्तियों—विदेशी इस्लाम धर्म तथा दक्षिण भारत के सगुण भक्ति सम्प्रदायों—के प्रभाव मे आया। मध्यदेशवासियों को अरब का इस्लाम धर्म सदा अग्राह्य रहा और उन्होंने इसका भरसक विरोध किया। यद्यपि इस्लाम ने अप्रत्यक्ष रूप से लोगों की संस्कृति को अवश्य प्रभावित किया, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस्लाम धर्मावलंबी हिन्दुओ की जनसंख्या का प्रतिशत मध्यदेश में उत्तरी भारत के अन्य भागो की अपेक्षा बहुत हीं कम, अर्थात् लगभग १५% है। तुलनार्थ पश्चिमी पजाब तथा पूर्वी बगाल मे लगभग ५०% तथा इससे भी अधिक ही इस्लाम धर्मावलबी जनसंख्या पाई जाती है। यह बात इसलिए और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि मध्यदेश भारत मे इस्लामी शक्ति तथा प्रभाव का प्रधान केन्द्र रहा। इसी समय दक्षिण के रामानुज, निम्बार्क (१२ वी शती) आदि आचार्यों द्वारा प्रवर्तित वैष्णव संप्रदायों ने उत्तरी भारत मे अपने बीज डाले थे, जो जडे पकड़ कर अकुरित होने लगे थे। मध्यदेश मे वैष्णव धर्म की वृद्धि का सर्वाधिक श्रेय रामानन्द (१५ वी शताब्दी) तथा वल्लभाचार्य (१६ वी शती) को है। प्रयाग के कान्यकुब्ज ब्राह्मण महात्मा रामानन्द के प्रभाव का केन्द्र महापुरुष राम की जन्मभूमि अवध तथा पूर्वी मध्यदेश थी, और इन्ही के मंगल सदेश से अनुप्राणित हो कर गोस्वामी तुलसीदास (१६ वी शती) और अप्रत्यक्ष रूप से कबीरदास (१५ वी शती) एवं नानक (१६ वी शती) ने भक्तिभाव पूर्ण रचनाएँ कीं।

२३. यहाँ हमारा सम्बन्ध महाप्रभु वल्लभाचार्य (१४८८-१५३० ई०) से विशेष है। महाप्रभु वल्लभाचार्य तैलग ब्राह्मण थे। उनका जन्म बिहार मे हुआ था और उनकी शिक्षा काशी मे हुई थी। उनका मुख्य निवास स्थान प्रयाग के निकट यमुना के तट पर अरैल में था जहाँ यमुना गगा मे आकर मिलती है। दक्षिण के चार प्रमुख आचार्यों में विष्णु स्वामी द्वारा प्रवर्त्तित विष्णु सम्प्रदाय से उनका सम्बन्ध जोडा जाता है। वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग अथवा वल्लभ सम्प्रदाय नाम से एक स्वतन्त्र वैष्णव मत की स्थापना की। १४९२ ई० मे वल्लभाचार्य ने ब्रज क्षेत्र मे अपने मत के प्रचार के कार्य के लिए एक दूसरा केन्द्र स्थापित करने का विचार किया और अन्त मे १४९५ ई० मे मथुरा के पास गोवर्द्धन मे श्रीनाथ जी के स्वरूप की स्थापना की जो बाद मे उनके एक धनी व्यापारी शिष्य के द्वारा एक विशाल मन्दिर मे परिवर्तित कर दिया गया (१४९९-१५१९ ई०)। १५१९ ई० में गोवर्द्धन मे इस मन्दिर का पूर्ण होना ब्रज प्रदेश की भाषा तथा साहित्य को प्रभावित करने वाली एक असाधारण घटना समभनी चाहिए। इसी स्थान पर वल्लभ मतानुयायी अनेक कवियो तथा गायको के द्वारा कृष्ण कीर्त्तन के हेतु उत्कृष्ट धार्मिक गीतिकाव्य का प्रणयन हुआ। इसी प्रकार का दूसरा मन्दिर मथुरा के निकट गोकुल मे स्थापित किया गया, जहाँ पर बाद को वल्लभाचार्य जी के पुत्र गुसाँई विट्ठलनाथ (१५१५-१५८५ ई०) रहने लगे थे। वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ के शिष्यों की रचनाओ के कारण ब्रज प्रदेश की बोली सोलहवी शताब्दी मे मध्यदेश की सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक भाषा बन गई। इसका प्रभाव ब्रज क्षेत्र के बाहर भी पडा। इस व्यापक प्रभाव का प्रधान कारण ब्रज केन्द्र मे कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो का होना तो था ही, किंतु साथ ही अन्य कारण इस भाषा का माधुर्य, तथा इसमे लिखे गए साहित्य की मनोरमता और काव्योत्कर्ष भी थे।

२४. वल्लभाचार्य के समय मे ही चैतन्य महाप्रभु के कुछ बंगाली शिष्यो ने वृन्दावन को अपना केन्द्र बनाया था, किन्तु ये लोग प्रादेशिक जनता को न तो उतना अधिक प्रभावित ही कर सके और न स्थानीय प्रतिभावान भक्त कवियो को ही आकर्षित कर सके। बाद में निम्बार्क सम्प्रदाय से सबंधित कुछ अन्य उपसम्प्रदाय भी बने जिनमे हित हरिवश (१६ वी शती) द्वारा स्थापित राधावल्लभी सम्प्रदाय तथा स्वामी हरिदास (लगभग १५६०ई०) द्वारा स्थापित टट्टी सम्प्रदाय विशेष उल्लेखनीय है। इन दोनों कृष्ण सम्प्रदायो के प्रवर्त्तक ब्रजभाषा के लेखक थे और उनके द्वारा प्रारभ की गई साहित्य रचना की परपरा उनके शिष्यो द्वारा निरतर चलती रही। किन्तु शुद्ध साहित्यिक गुणो की दृष्टि से उनकी रचनाएँ पुष्टिमार्गी साहित्यिक रचनाओ के समकक्ष नही रक्खी जा सकती। ब्रज मे इन धार्मिक चर्चाओ का सर्वोत्कृष्ट काल लगभग डेढ शताब्दी तक रहा। १६६९ ई० मे अतिम मुगल सम्राट् औरगज़ेब के धार्मिक अत्याचार प्रारम्भ हो जाने से ब्रज मे कृष्ण सम्बन्धी समस्त संस्थाएँ तितर बितर हो गईं अथवा दबा दी गईं। न केवल पुष्टिमार्ग के उत्साही शिष्यों तथा अनुयायियो की यह दशा हुई, बल्कि स्वय भगवान के स्वरूप को राजस्थान की पहाड़ियों मे शरण लेनी पडी जहाँ उदयपुर राज्य मे नाथद्वारा मे यह अब भी विद्यमान है।[१]

[१] विस्तार के लिये देखिये श्री गोवर्धननाथजी की प्राकट्य की वार्ता।

२५. ब्रज के कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों के द्वारा शैव तथा शाक्त धर्मों के क्षेत्र राजस्थान में ब्रजभाषा तथा साहित्य का प्रसार हुआ। १७ वी तथा १८ वी शताब्दी मे राजस्थान के हिन्दू दरबारों ने ब्रजभाषा कवियों को संतशिक्षा दी किन्तु इन दरबारी कवियों ने प्राचीन कृष्ण काव्य को लौकिक रूप दे डाला। कृष्ण भक्ति सप्रदायो का प्रभाव गुजरात तक पहुँचा जहाँ वल्लभाचार्य के शिष्यों की सब से अधिक सख्या आज भी मिलती है।

२६. १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे सब से महत्वपूर्ण धार्मिक सुधार जिसने मध्यदेश को प्रभावित किया वह एक गुजराती ब्राह्मण स्वामी दयानन्द सरस्वती का चलाया हुआ था। अपनी शिक्षा के अन्तिम दिन उन्होने वैदिक संस्कृत के एक प्रकाड विद्वान् स्वामी विरजानंद की शिष्यता मे मथुरा मे व्यतीत किए थे। स्वामी दयानन्द द्वारा प्रचारित सुधार मे विश्वास रखने वाली आर्य समाज नाम की सस्था द्वारा चलाई गई अर्द्ध-धार्मिक तथा अर्द्ध-शिक्षा संबधिनी एक सस्था वृंदावन मे ही स्थित है। किन्तु अब साहित्यिक क्षेत्र मे ब्रजभाषा का स्थान खडी बोली हिंदी ने ले लिया था अत: स्वामी दयानन्द ने अपने उपदेशो के प्रचार के लिए इसे ही चुना। देवनागरी लिपि सहित खडीबोली हिंदी को उन्होने आर्य समाज के समस्त सदस्यो के लिए अनिवार्य कर दिया। फलस्वरूप इस धार्मिक सुधार के द्वारा ब्रजभाषा को नवीन जीवन ग्रहण करने मे कोई सहायता न मिली। इतना सब होते हुए भी हम पाते है कि आर्य समाज के कुछ कवियो ने ब्रजभाषा मे रचनाएँ कर के इसके साहित्य को धनी बनाया है।

२७. मध्यदेश से संबधित अन्तिम धार्मिक चेतना स्वामी जी महाराज (१८१८-१८७८)[१] कहलाने वाले गुरु स्वामीदयाल द्वारा स्थापित राधास्वामी सम्प्रदाय की है। इस धार्मिक सप्रदाय के प्रसिद्ध गुरु श्री आनन्द स्वरूप, उपनाम साहिबजी महाराज, ने १९१३ ई० के बाद ब्रज क्षेत्र मे आगरा के निकट दयालबाग मे अपने शिष्यों का एक महत्त्वपूर्ण उपनिवेश बसाया। इस आन्दोलन के दो मुख्य पक्ष है—एक आध्यात्मिक और दूसरा औद्योगिक। दोनों ही पक्षो के लिए भाषा की बहुत कम आवश्यकता पडती है, और जितनी पडती है उसकी पूर्ति खडीबोली हिंदी के ही साधारण बोलचाल के रूप से कर ली जाती है। खडीबोली हिंदी ही ब्रज प्रदेश की भी वर्तमान साहित्यिक भाषा हो गई है।

२८. ब्रज मे आज भी ऐसे अनेक केन्द्र है जहाँ धार्मिक प्रवृत्ति के लोग विशेष आकर्षित होते है। मथुरा तीर्थयात्रा का अखिल भारतवर्षीय स्थान है। वृन्दावन मुख्य रूप से राधावल्लभीय सप्रदाय का केन्द्र है तथा राधाकृष्ण प्रेमी बंगालियों का भी प्रिय स्थान है।

---

[१] यहाँ यह बता देना उचित है कि राधा स्वामी सम्प्रदाय में राधा शब्द का अर्थ कृष्ण की सहचरी पौराणिक राधा नहीं है, किन्तु स्वामी सहित यह शब्द परमेश्वर का सच्चा नाम माना जाता है। यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सम्प्रदाय का नाम सम्प्रदाय के स्थापक गुरु स्वामीदयाल के नाम के एक अंश से तथा उनकी पत्नी नारायणी देवी के नाम से, जिन्होंने बाद में अपना नाम राधा रख लिया था, प्रभावित है।

गोकुल गुजराती यात्रियों का विशेष तीर्थ स्थान है क्योकि ये अधिक संख्या में पुष्टि मार्ग में विश्वास रखने वाले हैं। विट्ठलनाथ के समय से ही गोकुल के मन्दिर का कार्य भार गुजराती ब्राह्मणों के हाथ मे रहा है। गुजरातियों का गोकुल के प्रति विशेष आकर्षण इस कारण भी कदाचित् बना हुआ है। पुष्टिमार्ग से सबद्ध बालकृष्ण की पूजा तथा अनेक आकर्षक उत्सव और भोग आदि ऐसी बाते है जो इस संप्रदाय के प्रति स्त्रियो तथा धनी वर्ग को विशेष आर्काषित करती है। पर्दा प्रथा से स्वतत्र गुजराती स्त्रियों तथा गुजरात के धनी व्यापारियो के इस ओर आकर्षण का कारण सम्प्रदाय का एक यह विशेष मनोरम पक्ष भी है।

ब्रज मे दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान सोरों अथवा सूकर-क्षेत्र है जहाँ पुराणो के अनुसार विष्णु भगवान का शूकर अवतार हुआ था। यह गगा के किनारे बदायूँ जिले मे है और राजस्थान की हिन्दू जनता का प्रिय स्थान है। समस्त पश्चिमी तथा दक्षिणी ब्रज प्रदेश को पार कर के बहुत बडी संख्या मे राजस्थानी जनता यहाँ आती है और इस प्रकार अपने मूल देश के सम्बन्ध को बनाए हुए है। इसके अतिरिक्त गगा ब्रज क्षेत्र मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक बहती है, और इसके पवित्र तट पर ऐसे अनेक स्थान है जहाँ विशेष पर्वो के अवसरों पर बड़े बडे मेले लगते है। इनमे अलीगढ जिले मे राजघाट, बदायूँ मे ककोरा तथा बुलन्दशहर मे अनूपशहर विशेष प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त ब्रज मे अनेक छोटे छोटे स्थानीय धार्मिक केन्द्र है जिनका उल्लेख करना यहाँ अनावश्यक होगा।

३. ब्रजभाषा साहित्य

बोली का नाम

२९. 'ब्रज' शब्द का सस्कृत तत्सम रूप 'व्रज' है जो सस्कृत धातु 'व्रज्' 'जाना' से बना है। 'व्रज' शब्द का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद संहिता[1] मे मिलता है किन्तु यहाँ यह शब्द ढोरों के चरागाह या बाडे अथवा पशु समूह के अर्थो में प्रयुक्त हुआ है। वैदिक साहित्य तथा रामायण महाभारत[2] तक मे यह शब्द देशवाचक नही हो पाया था। हरिवंश[3] तथा भागवत[4] आदि पौराणिक साहित्य मे भी इस शब्द का प्रयोग कृष्ण के पिता नन्द के मथुरा के निकटस्थ व्रज अर्थात् गोष्ठ विशेष के अर्थ मे ही हुआ है। मध्यकालीन हिंदी साहित्य[5] मे तद्भव रूप 'ब्रज' अथवा 'बृज' निश्चय ही मथुरा के चारो ओर के

---

[1] जैसे, ऋग्वेद मं० २, सू० ३८ मं० ८; मं० ५, सू० ३५, मंत्र ४; मंत्र १०, सू० ४, मंत्र २। अन्य उल्लेखों के लिए देखिये वैदिक इंडेक्स, भाग २, पृ० ३४०।

[2] 'वृजि' शब्द प्राचीन बौद्ध साहित्य में कुछ देशवासियों के नाम के अर्थ में मिलता है। विवरण के लिए देखिए मोनियर विलियम का संस्कृत अंग्रेजी शब्दकोष।

[3] हरिवंश, विष्णुपर्व, अध्याय ९, श्लो० ३, ६, १८, १९, ३०; अध्याय २२, श्लो० ३४।

[4] भागवत, स्कन्ध १०, अध्याय १, श्लो० ९९; अध्याय २ श्लो० १।

[5] चौरासी वार्ता, प्रसंग १।

प्रदेश के अर्थ मे मिलता है। इस प्रदेश की भाषा के लिए मध्यकालीन हिंदी लेखकों के[1] द्वारा केवल भाषा अथवा भाखा शब्द का ही प्रयोग होता था। यह प्रयोग केवल ब्रज क्षेत्र की भाषा के लिए ही सीमित नहीं था, बल्कि हिन्दी की अन्य साहित्यिक बोलियों के लिए भी प्रयुक्त होता था।

३०. निश्चित रूप से ब्रजभाषा का उल्लेख १८ वी शताब्दी[2] से पूर्व नही मिलता। राजपूताना में काव्य की भाषा होने के कारण ब्रजभाषा 'पिंगल' कहलाई। उर्दू लेखक ब्रजभाषा को 'भाखा' कह कर पुकारते थे। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि बंगाली लेखकों की ब्रज-बुलि[3] ब्रजभाषा नही थी, बल्कि मैथिली बोली से मिली हुई हिंदी शब्दों तथा हिंदी व्याकरण के ढाँचे में ढली हुई बंगाली बोली ही थी।

पूर्ण शब्द 'ब्रजभाषा' अथवा 'भाखा' के स्थान पर सरल तथा स्पष्ट होने के कारण इस पुस्तक में प्राय: 'ब्रज' का प्रयोग किया गया है। अन्तर्वेदी, कन्नौजी, जादोबाटी, सिकरवारी, कँथेरिया, डाँगी, डांगभाँग, कालीमल और डुंगवारा आदि बोलियाँ ब्रज के ही स्थानीय रूपान्तर हैं तथा अपने क्षेत्र विशेष तक सीमित है।[4]

साहित्य तथा भाषा

प्राचीन काल (१४०० ई० के पूर्व)

३१. १९ वी शताब्दी से पहले हिंदी साहित्य का इतिहास प्रधानतया ब्रज साहित्य का इतिहास है इसलिए इस काल की सक्षिप्त परीक्षा कर लेने से ब्रज की साहित्यिक एवं भाषा विषयक रूपरेखा को समझने मे विशेष सहायता मिलेगी। हिंदी भाषा तथा साहित्य का इतिहास तीन मुख्य कालों मे विभक्त किया जा सकता है, अर्थात् (१) प्राचीन काल (१४०० ई० के पूर्व), (२) मध्य काल (१४०० से १८०० ई०) तथा (३) आधुनिक काल (१९०० ई० के बाद)।

मध्यकाल कभी कभी दो उपकालों में विभक्त किया जाता है, अर्थात् भक्ति उपकाल (१४००-१६०० ई०) और रीति उपकाल (१६०० ई०—१८०० ई०)। यह विभाजन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों के आधार पर है। विभाजन के इस दूसरे आधार पर प्राचीन तथा आधुनिक कालों को प्राय: वीरगाथा काल तथा गद्य काल भी क्रमश: कहा जाता है।

३२. परम्परानुसार हिंदी साहित्य का सब से प्राचीन रूप हमें १२ वी शताब्दी में मिलता है, जब कि मध्यदेश के प्राय: सभी हिन्दू दरबारों मे स्थानीय बोलियों की संरक्षिता

---

[1] तुलसीदास : दोहावली, पद्य ५७२; नन्ददास : रासपंचाध्यायी, अध्याय १, पंक्ति ४०; केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश १, पद्य ५; वृन्द सतसई : दोहा ७०५।

[2] भिखारीदास : काव्य निर्णय (१७४६ ई०), अध्याय १, छन्द १४, १६; लल्लूलाल : राजनीति (१८०२ ई०), पृष्ठ १ और २।

[3] चटर्जी : बंगाली भाषा (Bengali Language) पृ० ५६।

[4] लिंग्विस्टिक सर्वे आँव् इण्डिया : भाग ९, खण्ड १, पृष्ठ ६९।

के प्रमाण मिलते हैं। मध्यदेश की एक आधुनिक बोली में लिखी गई सब से प्राचीन प्राप्त पुस्तक बीसलदेव रासो की रचना अन्तर्साक्ष्य के आधार पर ११५५ ई० में अजमेर के राजा बीसलदेव के दरबार में नरपति नाल्ह द्वारा हुई थी। किन्तु आजकल प्राप्त पोथी की प्राचीनतम हस्तलिपि १६१२ ई० की मिलती है और छपी हुई[1] पुस्तक का आधार एक तो यही हस्तलिपि है तथा दूसरी १९०२ की लिखी हुई हस्तलिपि है। यदि यह रचना वर्तमान रूप मे इतनी प्राचीन[2] भी हो, तो भी यह राजस्थानी भाषा मे ही है ब्रज मे नही, जैसा कि छु सहायक क्रिया, स भविष्य, न के स्थान पर ण का व्यवहार तथा इसी प्रकार की अन्य राजस्थानी विशेषताओं से स्पष्ट होता है।

३३. दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना, जो बारहवी शताब्दी के अन्तिम दशाब्द की कही जाती है, पृथ्वीराज रासो है जो दिल्ली के अन्तिम हिंदू शासक महाराज पृथ्वीराज के राजकवि चन्द द्वारा रचित मानी जाती है। किन्तु यह ग्रथ भी वर्त्तमान रूप में इतना प्राचीन नही है।[3] इस रासो की प्राचीनतम हस्तलिपि १५८५ ई० तक की प्राप्त हुई है। राजपूत काल के सर्वमान्य इतिहासज्ञ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार यह रचना अन्य किसी कवि द्वारा लगभग १६ वी शताब्दी के मध्य भाग मे लिखी गई होगी। भाषा की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की भाषा प्रधानतया व्रज है जिसमे उसकी ओजपूर्ण शैली को सुसज्जित करने के लिए प्राकृत अथवा प्राकृताभास रूप स्वतंत्रता के साथ मिश्रित कर दिए गए है। प्राकृत रूपो का प्रयोग करने की यह शैली हम तुलसीदास, भूषण तथा अन्य मध्यकालीन कवियों की रचनाओं मे भी पाते है, यद्यपि यह प्रवृत्ति इन बाद के कवियो में इस मात्रा मे नही मिलती है। पृथ्वीराज रासो मध्यकालीन ब्रजभाषा मे ही लिखा गया है, पुरानी राजस्थानी में नहीं जैसा कि साधारणतया इस विषय मे माना जाता है। यह पुस्तक ब्रजभाषा के वर्तमान अध्ययन मे नही सम्मिलित की गई है। इसका कारण सम्पूर्ण रचना का संदेहात्मक तथा विवादग्रस्त होना ही है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कन्नौज के समकालीन हिन्दू दरबार मे स्थानीय बोली की अपेक्षा कदाचित् संस्कृत को अधिक उच्च स्थान मिला हुआ था। संस्कृत का अंतिम महाकाव्य नैषधचरित कन्नौज के अतिम हिन्दू शासक जयचन्द (१२ वी शती) के दरबार मे लिखा गया था। बाद की कुछ रचनाओ से ज्ञात होता है कि जयचन्द के दरबार के दो भाषा कवियों—भट्ट केदार तथा मधुकर—ने क्रमशः जयचन्द प्रकाश

[1] सत्यजीवन वर्मा द्वारा संपादित, तथा नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित-बनारस १९८१ वि०। ग्रंथ का नवीन सुसंपादित संस्करण 'बीसलदेव रास' के नाम से हिंदी परिषद् विश्वविद्यालय प्रयाग द्वारा १९५३ में प्रकाशित हुआ है।

[2] गौ० ही० ओझा इस पुस्तक को हम्मीर देव के काल की बतलाते हैं, देखिए राजपूताना का इतिहास, भूमिका पृष्ठ १९।

[3] ज० बं० रा० सो० १८८६, खण्ड १, पृष्ठ ५।

[4] ना० प्र० पत्रिका, भाग १०, पृष्ठ २९।

[5] ज० बं० रा० सो०, १८७३, खण्ड १, पृ० १६५।

तथा जयमयंकजस चन्द्रिका नाम की रचनाएँ की थी, किन्तु अभी तक ये पुस्तकें अप्राप्य हैं।

३४ मध्यदेश के चौथे समकालीन हिंदू दरबार अर्थात् बुन्देलखण्ड में महोबा के साथ लोकप्रिय वीरकाव्य आल्हखण्ड के रचयिता जगनिक अथवा जगनायक का नाम लिया जाता है। अभाग्यवश यह मूल ग्रंथ अनुपलब्ध है। इस रचना का वर्तमान प्राप्त संस्करण १९ वी शताब्दी मे चारणों मे प्रचलित मौखिक जनश्रुति के आधार पर संकलित किया गया था। इसकी भाषा बुन्देली के साथ मिली हुई पूर्वी ब्रज है किन्तु प्राचीन ब्रज के इतिहास के लिए इसका कोई मूल्य नही है। यह सच है कि लोकप्रियता की दृष्टि से आदिकाल से सम्बन्धित समस्त हिदी रचनाओं मे 'आल्हखण्ड' ही हिंदी भाषियों में सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश मे प्रथम स्थान रखता है।

३५. ११९२ ई० के बाद लगभग १२ वर्षों के भीतर ही मध्यदेश के इन समस्त महत्वपूर्ण हिन्दू राजदरबारों का लुप्त हो जाना स्थानीय आधुनिक बोलियो तथा उनके विकासशील साहित्य को आघात पहुँचाने वाली एक महत्वपूर्ण घटना थी। मुस्लिम शासन के आदि काल (१३ वीं, १४ वीं शती) मे हम मध्यदेश तथा ब्रज भाषा साहित्य के इतिहास में एक लम्बी अवधि वाला अन्धकार पूर्ण समय पाते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। विदेशी शासक देश की सस्कृति के प्रति किसी प्रकार की भी सहानुभूति नही रखते थे, और न इस सस्कृति के सरक्षण के लिए गगा के मैदान मे कोई हिन्दू राज दरबार ही रह गए थे। साधारण लोगो का जीवन भी इतना स्थिर न रहा होगा कि वह सांस्कृतिक आनंद के विषय मे कुछ सोच सके। जहाँ तक राजस्थान और बुन्देलखंड मे शरण लेने वाले हिन्दू राजाओं का सम्बन्ध है, वे अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए ही सदैव संघर्ष मे लगे रहते थे। इस प्रकार सस्कृति के उत्कर्ष के विषय मे सोचने का उनके पास भी अवकाश न था। इस काल के अकेले प्रसिद्ध हिदी कवि अमीर खुसरो (१२५५-१३२४ ई०) माने जाते हैं, जो वास्तव मे फ़ारसी लेखक थे। यदि खुसरो की उन फुटकर हिदी रचनाओं का रूप प्राचीन काल का ही मान लिया जाय, जिसमे अत्यंत सदेह है, तो भी वे ब्रज मिश्रित बोली मे मानी जाएँगी। ऐसा भी हो सकता है कि इस काल में कुछ अन्य साहित्यिक रचनाएँ भी हुई हो, जो कालान्तर मे खो गई हों। कुछ भी हो, अभी तक इस सम्बन्ध मे न तो कोई रचनाएँ ही सामने आई है और न उनके विषय में कोई उल्लेख ही मिला है।

३६ १२ वी तथा १३ वी शताब्दियों की संस्कृत तथा प्राकृत रचनाओं से एकत्रित किए गए "पुरानी हिन्दी" के कुछ उदाहरण चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखित (ना० प्र० पत्रिका, भाग २) इसी नाम के लेखो मे मिलते हैं। इन उदाहरणो की परीक्षा करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी भाषा प्रधानतया प्राकृत के अन्तिम रूपों से मि [illegible] जुडती है, तथा उसमे आधुनिकता [illegible]हुत कम मिलती है। जहाँ तहँ प्राप्त आधुनिकता का पुट (जैसे, स भविष्य, मूर्द्धन्य ध्वनियों का विशेष प्रयोग) हमें आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के म[illegible] वर्ग की अपेक्षा पश्चिमी वर्ग का अ[illegible]क स्मरण दिलाता है।

३७. इस काल में पूर्वी मध्यदेश में कुछ साहित्यिक क्रियाशीलता अवश्य थी, किन्तु इससे ब्रजभाषा पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। ब्रज गद्य के सर्वप्रथम लेखक कहे जाने वाले गोरखनाथ (१३ वीं शती) की कोई प्रामाणिक ब्रजभाषा रचना अभी तक नही मिली है। गोरखनाथ की प्राप्त रचनाएँ लगभग १३५० ई० की है किन्तु हस्तलिपियों का समय १७९८ और १८०२ ई०[1] के मध्य का है।

३८. प्राचीन ब्रजभाषा पर प्रकाश डालने वाले किसी महत्त्वपूर्ण शिलालेख अथवा ताम्रपत्र के लेख का भी पता अब तक नहीं चला है।[2] १२ वी शताब्दी के कहे जाने वाले कुछ पत्र तथा परवाने जाली सिद्ध हो गए है।

३९. कहा जाता है कि इसी काल मे निम्बार्काचार्य ने मथुरा ज़िले मे वृन्दावन की यात्रा की किन्तु उनकी तथा उनके समकालीन शिष्यों की स्थानीय बोली मे की गई रचनाएँ अभी भी अज्ञात है।

विद्यापति (लगभग १३६०-१४२८ ई०) के पद बिहारी की मैथिली बोली मे है, जिनमें कही-कही ब्रज रूप मिलते है। विद्यापति की पदावली के वर्तमान संस्करण प्राचीन हस्तलिखित सामग्री पर आधारित नहीं है बल्कि कवि के गीतों की मौखिक परपरा के बंगाली, मैथिली अथवा भोजपुरी रूपान्तरमात्र है इसलिए भाषा के प्राचीन रूप के विद्यार्थी के लिए उनकी विशेष उपयोगिता नही रह जाती है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के आदिकाल (१४०० ई० के पूर्व) से हमें ऐसी कोई विश्वस्त सामग्री नहीं मिलती, जो ब्रजभाषा के प्राचीन इतिहास पर विशेष प्रकाश डाल सके।

मध्यकाल (१४००–१८०० ई०)

४०. मध्यकाल (१४००–१८०० ई०) पर विचार करने से पता चलता है कि इसकी प्रथम शताब्दी (१५ वी शती) मे ऐसी कोई सामग्री नही मिलती जो ब्रज भाषा के इतिहास की रचना मे सहायक हो सके। इस शताब्दी मे प्रसिद्ध नाम केवल कबीरदास का ही लिया जा सकता है, किन्तु उनकी अब तक की प्राप्त रचनाएँ खडी बोली और भोजपुरी तथा अवधी, अथवा खडीबोली और पंजाबी के मिश्रित रूप मे

---

[1] रामचन्द्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, १९८६ वि०, पृष्ठ ४८०। गोरखनाथ के प्राप्त ग्रंथों का प्रामाणिक संस्करण गोरख-बानी नाम से हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ है।

[2] १६ वीं शताब्दी के हिन्दी शिलालेखों आदि के नमूनों के लिए देखिए, ना० प्र० पत्रिका, भाग ६, पृ० १; भाग ८, पृष्ठ ३९५। सन् १५९० तथा १६३६ ई० के दो संक्षिप्त लेखों के लिए देखिये, ग्राउज : मथुरा, ए डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर १८८०, भाग १, पृ० २२४ और पृ० २२७।

[3] ना० प्र० पत्रिका, भाग १, पृ० ४३२ नई।

[4] भण्डारकर : वैष्णविज्म आदि, पृ० ६६।

[5] विद्यापति की कीर्तिलता की भाषा अपभ्रंश तथा पुरानी मैथिली के बीच की है। विस्तार के लिए देखिए, सक्सेना : कीर्तिलता, भूमिका।

मिलती हैं। खड़ीबोली और पंजाबी मिश्रित संस्करण का आधार एक हस्तलिपि है जो १५०४ ई० की मानी जाती है।[१]

गुरु ग्रंथ साहब का संकलन १६०४ ई० मे हुआ था। यह खड़ीबोली तथा ब्रज की मिश्रित शैली मे है और इस में जहाँ तहाँ कुछ पंजाबी रूपों का भी मिश्रण है। अभाग्यवश इसका कोई भाषा विषयक प्रामाणिक संस्करण अब तक प्राप्य नही है।

१६ वी शताब्दी की होने पर भी यहाँ पर हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री मीराँ का उल्लेख कर देना आवश्यक है। उनकी मातृभाषा राजस्थानी थी, किन्तु वे कुछ समय तक वृन्दावन में भी रही थी तथा उनके जीवन के अन्तिम दिन गुजरात मे बीते थे। मीराँबाई के गीतों के उपलब्ध सकलन राजस्थानी तथा गुजराती के मिश्रितरूपों मे है, जिनमें कहीं कही ब्रज का पुट भी मिलता है। किसी प्राचीन हस्तलिपि के आधार पर न होने तथा केवल लोगों के मुख से सुन कर एकत्रित किए जाने के कारण भाषा की दृष्टि से उनकी यहाँ परीक्षा करना उचित नही समझा गया। ब्रज से सम्बन्ध रखने के दृष्टिकोण से मीराँ की रचनाओं का पश्चिमी मध्यदेश में वही स्थान है जो विद्यापति की पदावली का पूर्वी मध्यदेश मे है।

४१. १५ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा १६ वी के पूर्वार्द्ध के लगभग प्रथम मुसलमानी साम्राज्य के कुछ क्षीण होने पर बहुत समय के बाद जनता को अपने को नवीन वातावरण के अनुकूल बनाने का अवसर मिला, जिसके कारण हमे मध्यदेश में नियमित रूप से सास्कृतिक पुनरुत्थान के दर्शन होते है। जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है इसका प्रारम्भ पूर्वी मध्यदेश मे रामानन्द द्वारा आरम्भ किए गए धार्मिक जागरण से हुआ। बाद मे उसकी पुष्टि पश्चिमी मध्यदेश मे वल्लभचार्य ने की। कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो मे भागवत पुराण का, जो वैष्णवों में सर्वाधिक मान्य ग्रथ माना जाता है, मध्ययुगीन भाषा साहित्य को प्रभावित करने मे सब से अधिक हाथ रहा है। किन्तु यह बात केवल वाह्य रूपरेखा के लिए ही सत्य है। जहाँ तक उसकी आत्मा का सम्बन्ध है मध्ययुगीन साहित्य ने स्वय अपने वातावरण का निर्माण किया।

मध्यकाल मे १६ वी शताब्दी से १८ वी शताब्दी तक का हिन्दी साहित्य का इतिहास वास्तव मे ब्रज साहित्य का इतिहास है। मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत (लगभग १५४० ई०) तथा तुलसीदास के रामचरित मानस (१५७५ ई०) को छोड़ कर सभी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ ब्रजभाषा मे है।

मुगल साम्राज्य काल मे वैष्णव भक्तों द्वारा गीत काव्य के रूप मे तथा बुन्देलखण्ड और राजस्थान के हिन्दू दरबारों में शृंगार भावना को लेकर अलकार प्रधान लौकिक साहित्य के रूप मे साहित्यिक चर्चा का मध्यदेश में विशेष विकास हुआ।

४२. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है ब्रजभाषा और उसके साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ (१५१९ ई०) मे उस तिथि से होता है जब गोवर्द्धन मे श्रीनाथ जी के मन्दिर का निर्माण पूर्ण हुआ और महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवान् के स्वरूप के

---

[१] श्यामसुन्दरदास : कबीर ग्रंथावली, १९२८ ई०।

सम्मुख नियमित रूप से कीर्त्तन की व्यवस्था करने का संकल्प किया। इस कार्य के लिए उन्होंने कवि गायकों को ढूंढ निकाला और उन्हें प्रश्रय देकर उनमें नवीन धार्मिक उत्साह भरा। इसी प्रोत्साहन का फल था कि पुष्टिमार्ग से सम्बन्धित दो महान् एवं सर्वाधिक जनप्रिय कवि सूरदास और नन्ददास ने ब्रज मण्डल की स्थानीय बोली मे गीत लिखे और गाए, और इस प्रकार उस साधारण बोली को एक साहित्यिक भाषा के रूप मे विकसित करने मे समर्थ हुए। सूरदास (रचनाकाल १५३०-१५५० ई०) ब्रजभाषा के सर्व प्रथम तथा सर्व प्रधान कवि है जिनकी रचनाएँ हमे प्राप्त है। बल्लभाचार्य के पुत्र तथा उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ और पौत्र गोकुलनाथ, जिनकी प्रेरणा से चौरासी वैष्णवों की वार्ता की रचना हुई जो ब्रज का प्रथम उपलब्ध गद्य ग्रंथ माना जाता है, इन दोनो के केन्द्र ब्रज क्षेत्र के हृदय प्रदेश मे थे और इन दोनो ने पुष्टिमार्ग के सस्थापक द्वारा चलाए गए साहित्यिक एवं धार्मिक सगठन को उसी प्रकार सरक्षण प्रदान कर जारी रक्खा और इस प्रकार ब्रजभाषा के विशाल साहित्य की रचना मे योग दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की नीव डाली, जिस मे आठ प्रमुख प्रसिद्धि प्राप्त ब्रजभाषा कवि सम्मिलित थे। इनकी रचनाओं ने धर्म, साहित्य तथा भाषा विषयक मान स्थिर कर उस साहित्य को एक विशेष छाप दी।

ब्रजभाषा के रचयिताओ का यह मडल बनाने के लिए उन्होने अपने पिता के चार प्रसिद्ध कवि शिष्यों को तथा ऐसे ही चार अपने शिष्यों को चुना। इन प्रसिद्ध अष्टछाप कवियों के नाम है—सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास; नन्ददास, चतुर्भुज-दास, छीत स्वामी और गोविन्द स्वामी।[१] वर्तमान भाषा विषयक अध्ययन के लिए दोनो उपसमूहो के प्रतिनिधियो के रूप मे सूरदास और नन्ददास चुन लिए गए है। अष्टछाप कवियो में से यही दो कवि ऐसे है जिनकी रचनाएँ प्रमाणिक प्रकाशित सस्करणो के रूप मे प्राप्त है।

४३. सूरदास की अधिकाश रचनाएँ, मुख्यतया कृष्ण लीला सबंधी पद, कदाचित् १५३० और १५५० ई० के बीच रचे गए थे। सूर की सपूर्ण रचनाओ का सकलन सूरसागर के नाम से प्रसिद्ध है। मानवीय भावनाओ की सूक्ष्मताओ को चित्रित करने मे साहित्यिक दृष्टिकोण से कोई भी दूसरा हिन्दी कवि उनकी समता नही कर सका है। भाषा के दृष्टिकोण से स्थानीय ब्रजभाषा का प्रयोग जिस सुगमता तथा कुशलता से इन्होने किया है वह बेजोड है। सूरदास की ब्रजभाषा पर हमे

---

[१] अष्टछाप कवियों के पदों के संकलन के लिए देखिए, राग कल्पद्रुम, भाग १–३, कृष्णानन्द व्यासदेव द्वारा संकलित तथा बंगीय साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशित, संशोधित संस्करण १९१४-१९१६। इन कवियों की जीवनियाँ ८४ तथा २५२ वैष्णवों की वार्ता में मिलती है, तथा पृथक् लाला रामनारायण लाल पुस्तक विक्रेता एवं प्रकाशक इलाहाबाद के द्वारा अष्टछाप के नाम से प्रकाशित हुई हैं। इन कवियों की अप्रकाशित रचनाओं के लिए देखिए नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस द्वारा प्रकाशित हिन्दी सर्च रिपोर्ट्स।

अन्य बोलियो का प्रभाव बहुत कम मिलता है, कदाचित् ब्रज उनकी मातृभाषा थी। उदाहरणार्थ केवल एक ही दो स्थानों पर ब्रज रूप **मेरो** के स्थान पर अवधी रूप **मोर** पाया जाता है (दे० सूरसागर, पृष्ट २७८, पं० ७)। साधारणतया ऐसे प्रयोग तुक के लिए ही हैं। कही कही हमे ब्रज ***ता, जा, का*** के स्थान पर पूर्वी सर्वनामवाची रूपों—***तिह, जिहि, केहि*** इत्यादि—के प्रयोग भी मिलते है। ऐसे उदाहरण बहुत ही कम तथा कही-कही ही मिलते हैं। सूरदास की भाषा शुद्ध आदर्श ब्रजभाषा समझी जाती है और यह दावा अनुचित नही है। सूरसागर के दो प्राचीन संस्करणों मे से भाषा के दृष्टिकोण से वेंकटेश्वर प्रेस वाले सस्करण की अपेक्षा नवल किशोर प्रेस वाला सस्करण अधिक प्रामाणिक है। सूरदास की भाषा के वर्तमान अध्ययन मे प्रधानतया नवल किशोर प्रेस वाले सस्करण से सहायता ली गई है। पाठों की दृष्टि से अधिक प्रामाणिक सस्करण, जिसका कुछ अश स्वर्गीय जगन्नाथ दास रत्नाकर द्वारा संपादित हुआ था, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अब प्रकाशित हो गया है।

४४. अष्टछाप के लघु वर्ग के प्रतिनिधि तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ (१५१५-१५८५ ई०) के समकालीन कवि नन्ददास कदाचित् पूर्वी मध्यदेश के निवासी थे। वार्ता के अनुसार काशी मे वे बहुत समय तक रहे थे, और इसीलिए उनकी रचनाओं मे पूर्वी रूप अपेक्षाकृत अधिक मिलते है, जैसे **है** के लिए ***आहि*** (१-१००); ***होयगी*** अथवा **ह्वै है** के लिए **होई**। उनकी भाषा शैली अधिक कृत्रिम है, यद्यपि चुने हुए शब्दों में लघु-चित्रण की कला के कारण उन्हे उच्च स्थान दिया जाता है। तुक आदि के लिए कभी कभी वे शब्दो के रूपों में भी तोड मरोड कर देते है, जैसे **हमारो** (१,९२) के लिए **हमरो**, ***तुम्हारी*** (३-९) के लिए ***तुमरी***। उनकी रचनाओ मे दो प्रसिद्ध खडकाव्य रास पञ्चाध्यायी और भ्रमर गीत है।

४५ पुष्टिमार्ग के कवियों पर पूर्वी हिंदी की बोलियों के प्रभाव का एक दूसरा कारण भी हो सकता है। जैसा पहले कहा गया है, सप्रदाय का प्रथम प्रधान केंद्र अवधी भाषा क्षेत्र में स्थित प्रयाग के निकट अरैल मे था। ब्रज में धार्मिक केंद्रो की स्थापना के बाद भी अरैल और गोकुल के बीच निरंतर यातायात था। इसके अतिरिक्त संप्रदाय के ब्रज के केन्द्रों मे अवधी बोलने वाले सेवकों तथा अनुयायियों की उपस्थिति की सभावना हो सकती है, अतः ब्रज के स्थानीय लेखकों पर संपर्क में आने वाले लोगों का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप मे पड सकता है।

४६. पुष्टिमार्ग के आचार्यों की परंपरा मे वल्लभाचार्य के पौत्र गोकुलनाथ (१५५१-१६४७ ई०) अपने पितामह वल्लभाचार्य के ८४ मुख्य शिष्यों की जीवनी चित्रित करने वाली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' की रचना करने के कारण ब्रज गद्य के प्रथम लेखक माने जाते है। प्राचीन व्रज मे केवल यही एक प्रसिद्ध प्रकाशित गद्य रचना है।[1] वार्ता के वर्तमान प्राप्त संस्करण मे कुछ स्थानीय आधुनिक रूप जहाँ-तहाँ प्रयुक्त

---

[1] **यहाँ यह बता देना चाहिए कि प्राचीन ब्रज में गद्य की कमी नहीं है, किन्तु अभी तक उसका बहुत थोड़ा भाग प्रकाशित हुआ है। ना० प्र० सभा, काशी द्वारा प्रकाशित**

कर दिए गए हे, जैसे हौं के लिए हूँ, मैं के लिए में इत्यादि। हस्तलिखित पोथियों के लगातार कई बार प्रतिलिपि करने के कारण रचना के मूल रूप मे कुछ परिवर्तन हो सकता है। इस प्रकार से गद्य में परिवर्तन की अधिक संभावना होती है, क्योकि प्रतिलिपि करने वाले के सामने छंद संबधी बंधन नही रहते। यह तो निश्चय है कि ब्रज की दूसरी गद्यवार्ता, २५२ वैष्णवन की वार्ता, बाद मे ८४ वार्ता के अनुकरण में बनायी गई रचना है। भाषा के प्रमाण से भी यह बात भली प्रकार सिद्ध हो जाती है। यही कारण है कि ब्रज भाषा के वर्तमान अध्ययन मे उसे सम्मिलित नही किया गया है।

४७. कृष्ण की सहचरी राधा को अधिक महत्त्व देने वाले राधावल्लभी संप्रदाय के संस्थापक स्वामी हितहरिवंश ब्रजभाषा के भी प्रसिद्ध कवि थे। उनका जन्म मथुरा जिले में हुआ था। राधाकृष्ण पर लिखे गए उनके ८४ पदों का संकलन उनकी रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है। यह निश्चय ही विशुद्ध ब्रजभाषा मे है, यद्यपि इसकी शैली पर संस्कृत का अधिक प्रभाव है।

ब्रज मंडल मे रहने वाले उपर्युक्त कवि-समूह के प्रयास से स्थानीय बोली साहित्यिक भाषा के उच्चपद पर आसीन हो गई और शीघ्र ही संम्पूर्ण मध्यदेश मे उसका सर्वोच्च साहित्यिक पद स्वीकार कर लिया गया। हिंदी की द्वितीय महत्त्वपूर्ण बोली अवधी अधिक समय तक ब्रज का सामना न कर सकी। जब मुसलमान लेखको ने साहित्यिक रचना के लिए पहले दक्षिण मे और फिर दिल्ली मे हिदवी अर्थात् पुरानी खडीबोली को अपनाया तो वे भी 'भाखा' से प्रभावित हुए। मारवाड और मिथिला मे स्थानीय बोलियो अर्थात् क्रमशः डिंगल और मैथिली का साहित्यिक स्थान था। किंतु यहा भी ब्रजभाषा बडी बहिन के रूप मे मान्य थी, तथा आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। इस बोली का प्रभाव पूर्व में बंगाल तक तथा पश्चिम मे गुजरात और पजाब तक था।

४८. १६ वी शताब्दी मे ब्रज को साहित्यिक भाषा के रूप मे अपनाने वाले पूर्वी मध्यदेश के कवियों मे तुलसीदास, नाभादास और नरोत्तमदास का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। रामानंदी मतानुयायी तुलसीदास अपनी प्रसिद्ध लोकप्रिय रचना रामचरित मानस को अवधी भाषा मे लिखने के कारण साधारणतया अवधी लेखक माने जाते है, किन्तु साथ ही यह न भूलना चाहिए कि उनकी प्रायः समस्त शेष प्रधान रचनाएँ अवधी में न हो कर ब्रजभाषा मे ही है। पद तथा काव्य रचना के लिए उन्होंने वैष्णव भक्तों तथा दरबारो मे प्रचलित ब्रजभाषा को अपनाया और इस अपनायी हुई भाषा में, जो एक मत के अनुसार उनकी मातृभाषा थी, उन्होंने शैली के लालित्य का पूर्ण निर्वाह किया है। उनकी ब्रजभाषा की रचनाओ मे गीत काव्यो के दो

हिंदी हस्तलिपियों की खोज रिपोर्टों (१९००-१९२२) में लगभग सौ गद्य की अथवा गद्य पद्य मिश्रित रचनाओं का उल्लेख है। ये गद्य पद्य मिश्रित रचनाएँ अधिकतर पद्यात्मक साहित्य की गद्य टीकाएँ हैं और अपेक्षाकृत बाद की हैं। उनमें से अधिकांश १८ वीं और १९ वीं शताब्दी में लिखी गई हैं। इन टीकाओं में से बहुत कम प्रामाणिक छपे हुए रूप में उपलब्ध हैं।

संकलन--गीतावली तथा विनयपत्रिका--साहित्य प्रेमियों के अत्यन्त प्रिय ग्रथ है। उनकी तीसरी महत्त्वपूर्ण ब्रजभाषा रचना कवितावली है, जो साधारणतया दरबारी कविता मे प्रयुक्त होने वाले कवित्त और सवैया छन्दों की शैली में है। इसका विषय कृष्ण लीला न हो कर रामचरित है। गोस्वामी तुलसीदास की ब्रजभाषा रचनाओं मे अवधी का प्रभाव कुछ न कुछ मिल जाता है, जैसे **आपको** के लिए **रावरो** (क० २-४), **है** के लिए **अहइ** (क० २-६), **मेरे** के लिए **मोरे** (क० २-३) इत्यादि। इतना सब होते हुए भी गोस्वामी तुलसीदास ब्रज के ख्याति प्राप्त कवियों मे गिने जाते है, इसलिए प्राचीन ब्रज की परीक्षा करते समय इनकी रचनाओं की उपेक्षा नही की जा सकती है। साधारणतया लेखक किसी दूसरी बोली का प्रयोग करते समय अपनी भाषा की विशुद्धता के संबंध में विशेष सतर्क रहता है। कुछ भी हो उनका अवधी-भोजपुरी प्रदेश का स्थायी निवासी होना उन्हे ब्रज लेखकों की सूची से अलग करने के लिए कोई तर्क नहीं है। साहित्यिक भाषा के रूप मे ब्रजभाषा भौगोलिक सीमाओं से सीमित नही थी। इसके बाद की शताब्दियों मे हम देखेगे कि ब्रजभाषी प्रदेश के बाहर रहने वाले लेखकों की साहित्यिक देन ब्रजभाषा के संबंध से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

४९. नाभादास (१६ वी शती) यद्यपि रामानंदी सम्प्रदाय के थे तथा पूर्वी प्रदेश के रहने वाले थे किंतु उन्होंने वैष्णव भक्तों की लोकप्रिय छंदोबद्ध जीवनी भक्तमाल को उस समय की प्रतिष्ठित साहित्यिक भाषा ब्रज मे ही लिखना उचित समझा। पद्य मे होते हुए भी भक्तमाल काव्यमय ग्रथ नही है। इसका महत्त्व धार्मिक जीवनी और कवि भक्तो के साहित्यिक मूल्याकन के विचार से अधिक है। उनकी शैली सरल है तथा भाषा साधारणतया विशुद्ध है।

५०. नरोत्तमदास (१६ वी शती) भी अवध के रहने वाले थे, किन्तु कृष्ण और उनके सहपाठी निर्धन ब्राह्मण सुदामा के मिलन का चित्रण करने वाले अपने अमर खडकाव्य 'सुदामा चरित' के कारण ब्रजभाषा कवियो मे उनका स्थायी स्थान है। साहित्यिक दृष्टिकोण से ब्रज मे अन्य कोई खण्ड काव्य कदाचित् इतना सुन्दर नही है। यद्यपि सुदामा चरित की शैली मे जहाँ-तहाँ पूर्वी बोली का प्रभाव है, जैसे **है** के लिए **आहि** आदि किन्तु ऐसे स्थल अधिक नही है।

५१. जनता के लिए लिखी गई रचनाओ के इतिहास को छोड कर अब वर्ग विशेष अर्थात् शासकों के लिए लिखे गए साहित्य की चर्चा की जाएगी। यह परिवर्त्तन मध्ययुग के उत्तरार्द्ध (१७ वी और १८ वी शताब्दी) मे हुआ। यह रीति अथवा शृंगार काल कहलाता है। इस काल मे कृष्ण सबंधी भक्ति काव्य का लौकिक विकास बुंदेलखंड तथा राजस्थान के हिंदू दरबारो मे हुआ। इस साहित्य की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता सस्कृत ग्रंथों के आधार पर काव्य रीति विशेषतया अलंकार ग्रथों की रचना मे है। इनमे दिए गए उदाहरणों मे हमे कवियों की मौलिक काव्य रचना मिलती है। पूर्व मध्य काल के प्रभाव के फलस्वरूप हमे वीर रस पर रचना करने वाले तथा विशुद्ध भक्त कवियों के भी कुछ उदाहरण मिल जाते है।

५२. ब्रजभाषा के लेखकों की इस नवीन धारा मे सर्वप्रथम तथा सब से प्रसिद्ध

नाम केशवदास का है, जिनका संबंध बुंदेलखण्ड मे ओरछा राज्य से था। उनके प्रसिद्ध ग्रंथों में छंदो के उदाहरण देने के लिए लिखी गई रामकथा सबधी रामचन्द्रिका, अलकार विषय पर कविप्रिया और श्रृगार रस के दृष्टिकोण से नायक नायिका भेद पर लिखी गई रसिकप्रिया है। केशव की शैली अत्यन्त जटिल तथा सस्कृत प्रभाव से ओत प्रोत है। नन्ददास की भाँति असाधारण छन्दो मे शब्दो के रूप बदल कर प्रयोग करने के सबध मे वे बहुत स्वतत्रता लेते है। बुन्देली का भी कुछ प्रभाव उनकी रचनाओ पर है, किन्तु व्याकरण की अपेक्षा यह प्रभाव शब्द-भण्डार पर अधिक है। इतना सब होते हुए भी ब्रजभाषा कवियों मे वे बहुत बडे आचार्य समझे जाते है तथा नवरत्नों में उन्हे स्थान दिया गया है।

५३. दिल्ली के एक पठान सरदार रसखान (१७ वी शती) भी विट्ठलनाथ के शिष्य हो गए थे, यहाँ तक कि २५२ वार्ता मे उन्हे स्थान दिया गया है। उनकी मृत्यु के बाद उनका स्मृति चिह्न अर्थात् छत्री हिन्दू ढग से बनाई गई, जिसे वैष्णव भक्त अब भी आदर की दृष्टि से देखते है। वे भक्त कवि थे और कवित्त तथा सवैया की शैली मे अपने उपास्य देव श्रीकृष्ण के प्रति उन्होने अनन्य प्रेम प्रकट किया है। रसखान के प्रत्येक छद से उनके भक्त हृदय की सचाई प्रतिविम्बित होती है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा मे हमे विशुद्धता और अनोखा प्रवाह मिलता है, जो हिन्दू लेखको मे प्रायः कम पाया जाता है। रसखान की भाषा विदेशी प्रभाव से मुक्त है, और उनके ग्रथ शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा के उत्कृष्ट उदाहरण समझे जाते है।

५४. ब्रज प्रदेश के उत्तरी जिले बुलन्दशहर के निवासी सेनापति (१७ वी शती) की ब्रज रचनाओ मे हम भक्ति तथा अलंकारयुक्त शैली के प्रभावों का सयोग पाते है। उनकी रचनाओं का सर्वोत्तम सकलन कवित्त और सवैया शैली मे लिखा गया 'कवित्तरत्नाकर' है, जिसके तीसरे तरग मे उनका प्रसिद्ध षट् ऋतु वर्णन है। छहो ऋतुओं का वर्णन करने वाला यह अध्याय हिंदी मे प्रकृति वर्णन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है। यद्यपि उन्होने अपने जीवन के अन्तिम दिन वृन्दावन मे व्यतीत किए थे, किन्तु अपनी रचनाओं से वे भगवान विष्णु के कृष्ण रूप की अपेक्षा राम रूप के ही विशेष भक्त प्रतीत होते है। मिश्र-बन्धुओं ने नवरत्नो के बाद प्राचीन लेखको मे उन्हे सर्वोच्च स्थान दिया है। सेनापति की भाषा मे कही कही हमे अवधी रूप भी मिल जाते है, जैसे **रावरे** (३०)। पूर्वी ब्रज रूप जैसे सामान्य रूप **तुम्हारे** के लिए **तिहारे** तथा **हो** के लिए **हुतो** (२५) भी मिलते है। अवधी प्रभाव कदाचित् रामानन्दी सम्प्रदाय के भक्तो के सम्पर्क के कारण हो सकता है, जो अधिकतर पूर्वी ही रहे होगे। यह प्रभाव रामानन्दी सम्प्रदाय के साहित्य के कारण भी सभव है।

५५ सात सौ दोहा छन्दो मे लिखी गई प्रसिद्ध 'सतसई' के रचयिता बिहारीलाल श्रृगारी कवियो मे सर्वाधिक लोकप्रिय है। यद्यपि अलंकारशास्त्र पर लिखा गया उनका कोई स्वतत्र ग्रंथ नही है किन्तु सतसई को देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि उसका अधिकांश काव्य रीति के अनेक नियमों के प्रदर्शन के हेतु लिखा गया है। उनका बाल्यकाल

ग्वालियर में बीता था, तथा युवावस्था मथुरा मे ससुराल मे व्यतीत हुई थी। तरुणावस्था में ही वे पड़ोस के राजस्थान जयपुर राज्य मे राजकवि हो गए थे। यद्यपि बिहारी लाल को साधारणतया शुद्ध ब्रज का लेखक मानते हैं, किन्तु कुछ पूर्वी रूप भी उनकी रचना मे मिल जाते हैं, जो कदाचित् पूर्वी लेखको के ब्रज के प्रयोग के कारण साहित्यिक ब्रज का अग बन गए थे तथा बाहरी नही समझे जाते थे, जैसे **रावरे** (८५-२), **वाको** के लिए **उहिँ** (७७-१)। निःसन्देह बिहारी सक्षिप्त शैली के कुशल मर्मज्ञ है और इसी कारण वे कठिन लेखक भी माने जाते है।

५६. स्वर्गीय जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा सम्पादित बिहारी सतसई का सटीक संस्करण 'बिहारी रत्नाकर' प्राप्त ब्रजभाषा ग्रंथो मे एक ऐसी रचना है जो अनेक हस्तलिखित पोथियों को सावधानी से देखकर सम्पादित की गई है। सम्पादक ने पाठो मे एकरूपता ला दी है, यद्यपि प्राचीन हस्तलिपियों मे यह नही मिलती। उदाहरण के लिए उन्होंने समस्त अकारान्त सज्ञाओ को उकारान्त बना दिया है, यद्यपि ऐसे रूप पोथियों मे कही कही ही मिलते है। क्योकि कुछ ब्रज परसर्गो मे अनुनासिकता मिलती है इसलिए उन्होने समानता लाने के लिए समस्त परसर्गों को अनुनासिक कर दिया है और इस प्रकार हमे सर्वत्र **कौं** (१४७), **सौं** (३४), **तैं** (३), **वैं** (१४६) ही मिलते है। मूल पाठ को बनाए रखने के स्थान पर इस प्रकार उन्होने अपने सस्करण मे एक कृत्रिम समानता ला दी है, जो कदाचित् सतसई के मूलरूप मे वास्तव मे विद्यमान न थी।

५७ अवधी क्षेत्र के निकट पूर्वी जिले कानपुर के निवासी (१७ वी शती) मतिराम और भूषण भाई थे। दोनों ही हिन्दी अलकार शास्त्र के मान्य आचार्य माने जाते है किन्तु दोनों मे इतना अन्तर है कि जहाँ मतिराम ने अपने उदाहरण शृगार रस मे दिए हैं, वहाँ भूषण ने अपने उदाहरणो को केवल वीररस तक ही सीमित रखा है। शैलीकार के रूप मे तथा अलकार शास्त्र के पण्डित के रूप मे मतिराम भूषण से श्रेष्ठ थे। मतिराम राजस्थान मे बूँदी दरबार मे बहुत दिनों तक थे। उनकी रचनाओं मे अलकार विषय पर ललितललाम, रस सबधी ग्रथ रसराज तथा सतसई अधिक प्रसिद्ध है। कुछ अन्य पूर्वी लेखको की भाँति उनकी रचनाओं मे भी पूर्वी ब्रज रूप अधिक मिलते हैं।

५८. भूषण कवि, जिनका यह वास्तविक नाम न हो कर कदाचित् उपाधि थी अनेक हिन्दू राज दरबारो मे रहे, जिनमे से प्रधान बुन्देलखण्ड मे पन्ना के छत्रसाल, तथा शिवाजी और साहु के दरबार थे। वे मुगल साम्राज्य के पतनकाल मे हिन्दूराष्ट्र के जागरण का प्रतिनिधित्व करते है। इस प्रकार वे हिन्दू राष्ट्रीयता के कवि हैं, भारतीय राष्ट्रीयता के नहीं। यह दूसरी भावना उस समय तक बिल्कुल अज्ञात थी। इससे पूर्व वीर गाथा काल के कवि अपने संरक्षको की व्यक्तिगत वीरता का चित्रण करते थे। उस काल मे हिन्दू राष्ट्रीयता की भावना भी प्रधान नही थी। भूषण की सर्व प्रसिद्ध रचना अलंकारो पर है जो 'शिवराज भूषण' के नाम से प्रसिद्ध है, किन्तु अलकार शास्त्र पर लिखे गए ग्रंथ के रूप मे यह अधिक प्रामाणिक नही है। इसकी भाषा तथा शैली मे माधुर्य तथा सरसता की अपेक्षा ओज गुण अधिक है। दरबारी जीवन के निकट सम्पर्क

मे रहने के कारण उनकी ब्रजभाषा के शब्द भण्डार में फारसी-अरबी शब्दों का प्रतिशत अधिक मिलता है।

५९. अब हम १८ वी शताब्दी पर आते है, जिसका प्रारम्भ महाकवि लाल कहे जाने वाले पन्ना के छत्रसाल के राजकवि गोरेलाल से होता है। लाल का जन्मस्थान तथा निवासस्थान बुन्देलखण्ड मे ही था। उनकी प्रसिद्ध रचना छत्रप्रकाश बुन्देलखण्ड का इतिहास चित्रित करने वाली प्रामाणिक रचना है। यह ग्रंथ दोहा और चौपाइ की वर्णनात्मक अवधी महाकाव्यों की शैली मे लिखा गया है। छत्रप्रकाश ब्रजभाषा मे अपने ढंग का अकेला ग्रथ है, इसी कारण वर्तमान अध्ययन के लिए रक्खी गई पुस्तकों में इसे भी चुन लिया गया है। भाषा की दृष्टि से पूर्वी रूप इसमे अधिक मिलते है, जैसे **आहिँ** (१९-२), **तेहि** (३-१११)। जायसी और तुलसीदास की रचनाओ का आदर्श एक सीमा तक इस प्रभाव के लिए उत्तरदायी हो सकता है।

६०. इटावा के देव (१८ वी शती) हिंदी रीतिकाल के दूसरे मान्य आचार्य माने जाते है, साथ ही वे प्रौढ शैलीकार भी थे। इन्होने दो दर्जनों से अधिक ग्रंथ लिखे है जिनमे सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना अलकार शास्त्र पर लिखी गई भावविलास है और शृंगार रस के दृष्टिकोण से एक आदर्श नायिका के सम्पूर्ण दिन के कार्यक्रम का चित्रण करने वाली अष्टयाम नामक पुस्तक है। वे प्रौढ काव्य शैली के कुशल ज्ञाता थे फलस्वरूप उनकी रचना मे शब्दों की तोड मरोड नही आने पाई है, जैसी कि कुछ अप्रौढ लेखको मे मिलती है। ***रावरो*** (३-२५) इत्यादि पूर्वी रूपो को छोड कर, जो कदाचित् उस समय तक साहित्यिक ब्रज शैली के अग बन चुके थे, उनकी भाषा से हमे अन्य किसी बोली का मिश्रण नही मिलता।

६१. घनानन्द (१८ वी शती) रसखान और सेनापति की श्रेणी मे आते है। वे दिल्ली के मुगल दरबार की कचहरी मे थे, किन्तु जीवन के अन्तिम दिनो मे गृहस्थ जीवन छोड कर वृन्दावन मे रहने लगे थे तथा निम्बार्क सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गए थे। उनका धार्मिक उत्साह तथा भाषा की परिमार्जित शैली ही ऐसी विशेषताएँ है जिसके कारण उनकी रचनाओं का इतना मूल्य समझा जाता है। साधारणतया शुद्ध ब्रजभाषा के वे एक आदर्श लेखक माने जाते है, किन्तु अधिक निकट से परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि उनकी ब्रजभाषा मे भी कुछ अवधी रूप पाए जाते है, जैसे ***आहि*** (१९)। इसके अतिरिक्त कुछ खडीबोली हिन्दी रूप जैसे ***हो*** इत्यादि भी कही कही मिल जाते है। वास्तव मे वे भक्त कवि थे, आचार्य कवि नही।

६२. भिखारीदास अथवा दास (१८ वी शती) अवध के प्रतापगढ़ जिले के निवासी एक पूर्वी लेखक थे, किन्तु वे भी ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि माने जाते है और प्रमुख आचार्य कवियो की परम्परा मे अन्तिम कवि है। उन्होने अलकार शास्त्र की प्रत्येक शाखा पर लिखा है, किन्तु उनकी प्रसिद्धि का प्रधान कारण काव्यनिर्णय नामक ग्रथ है, जो संस्कृत मे लिखे गए मम्मट के काव्यप्रकाश के आधार पर लिखा गया है। उनकी ब्रज पर अवधी का प्रभाव अपेक्षाकृत कुछ अधिक है और यह कदाचित् उनके पूर्वी वातावरण के प्रभाव के कारण है, (उदाहरणार्थ ***उहि, की*** (२८-२४), **अहै** (१६-३), ***भौ*** (२९-२८)।

६३. रचनाओ की लोक प्रियता के दृष्टिकोण से पद्माकर (१८ वी शती) का स्थान शृंगारी कवियों मे बिहारी के बाद आता है। मध्यदेश मे बसे हुए तैलग ब्राह्मणों के वंशज पद्माकर का जन्म बाँदा मे हुआ था, और दरबारी कवि होने के कारण उनका सम्बन्ध प्रायः सभी प्रसिद्ध समकालीन हिंदू दरबारों, जैसे सतारा, जयपुर, उदयपुर, ग्वालियर, बूंदी इत्यादि से था। वे शृगार रस मे उदाहरण देने वाली अलकार-ग्रथो की परम्परा को चलाते रहे। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं मे अलकार सबधी ग्रथ पद्माभरण तथा रस संबंधी जगद्-विनोद विशेष प्रसिद्ध है। उनकी शैली मे भावों की स्पष्टता के साथ साथ एक विचित्र प्रकार का आकर्षण है, जिसने ब्रजभाषा प्रेमियों के बीच उन्हे अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया है। उनकी भाषा मे आधुनिक ब्रज के पुट भी स्पष्ट रूप मे मिलते है । उदाहरण के लिए मध्य **ह** का लोप किए हुए रूप, जैसे **कहा** अथवा **काह** के लिए **का** बहुधा मिलता है। दो सौ वर्ष पूर्व केशव की चलाई हुई रीति परंपरा के अन्तिम प्रसिद्ध कवि पद्माकर थे।

६४. लल्लूलाल (१७६२-१८२५ ई०) साधारणतया खडीबोली के प्रथम गद्य लेखक के रूप मे ही प्रसिद्ध है। यह बात प्रायः भुला दी जाती है कि वे ब्रजभाषा के भी लेखक थे। राजनीति शीर्षक उनका हितोपदेश का स्वतंत्र अनुवाद ब्रज की गद्य रचनाओं मे द्वितीय महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। उन्होने ब्रजभाषा का प्रथम व्याकरण भी लिखा है। ब्रज प्रदेश मे आगरा मे बसे हुए एक गुजराती ब्राह्मण कुटुम्ब मे वे उत्पन्न हुए थे। ब्रिटिश सिविलियनों को भारतीय भाषाओं की शिक्षा देने के लिए कलकत्ता में ईस्ट इडिया कम्पनी द्वारा स्थापित फोर्ट विलियम कालेज में वे बहुत समय तक भाषा मुंशी पद पर रहे। उपलब्ध ब्रज गद्य की न्यूनता के कारण यह आवश्यक समझा गया कि ब्रजभाषा के इस अध्ययन मे अन्य रचनाओं के साथ 'राजनीति' को भी सम्मिलित कर लिया जाय। लल्लूलाल की ब्रजभाषा में अवधी प्रभाव नही है, यद्यपि जहाँ-तहाँ हमे कुछ खडी बोली रूप मिल जाते है, जैसे ***का*** (१-४), ***माताओं ने*** (५-२) इत्यादि।

६५. लल्लूलाल के साथ ही हम १९ वी शताब्दी मे प्रवेश करते हैं, जब से आधुनिक युग का सूत्रपात होता है और फलस्वरूप नई भाषा, नई शैली, नए विषय तथा नए भावों का प्रारम्भ होता है। मध्यदेश के साहित्य एवं भाषा को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के संबध मे संपूर्ण १९ वी शताब्दी मे प्रयत्न जारी रहा। ये प्रयोग २० वी शताब्दी मे पहुँचने पर सफल हो सके। अब साहित्यिक भाषा के रूप मे खडीबोली ने पूर्णतया ब्रजभाषा का स्थान ले लिया है। गद्य की महत्ता ने पद्य को पीछे हटा दिया है। प्रचलित पद्य मे अनेक प्रकार के नए विषयों तथा पाश्चात्य ढँग के नए साहित्यिक रूपो ने राम कृष्ण सबंधी पद्यात्मक प्राचीन कथानको अथवा नायिका वर्णन संबंधी उदाहरण उपस्थित करने वाली पद्य रचनाओं का स्थान ले लिया है। किंतु अब भी हिंदी का मध्यकालीन साहित्य, जो मुख्यतः ब्रजभाषा में ही है, उन समस्त प्रदेशो में बडी रुचि के साथ पढ़ा जाता है जहाँ हिंदी साहित्यिक भाषा के रूप मे मान्य है। ब्रजभाषा के ठेठ प्रदेश मे भी अब ब्रजभाषा प्रमुख साहित्यिक भाषा नही है। कोई भी पत्रिका अथवा समाचारपत्र ब्रजभाषा में प्रकाशित नही होता और न शिक्षा संस्थाओ में ही यह शिक्षा का माध्यम है। हिंदी के

कुछ आधुनिक कवि अब भी ब्रजभाषा मे लिखते है किन्तु इनके लिए भी यह एक अपरिवर्तनशील आदर्श साहित्यिक भाषा के समान है।

६६. मध्यकालीन ब्रजभाषा साहित्य का परिचय समाप्त करने के पूर्व इसके शब्द भण्डार के विषय में भी यहाँ पर दो शब्द कहना अनुपयुक्त न होगा। मध्यकालीन ब्रजभाषा मे तत्सम शब्दों का प्रतिशत बहुत अधिक था। मध्यकालीन ब्रजभाषा की निकट से परीक्षा करने से यह धारणा कि आजकल की साहित्यिक हिंदी अपने मध्यकालीन साहित्यिक रूप की अपेक्षा अधिक संस्कृत शब्दावली ग्रहण कर रही है असत्य ठहरती है। साथ ही मध्यकाल की ब्रजभाषा मे तद्भव शब्द विशेष प्रचलित है। वास्तव में साधारण साहित्यिक ब्रजभाषा शैली मे उनकी ही संख्या अधिक मिलती है। कुछ फारसी-अरबी शब्दो का प्रयोग भी ब्रजभाषा के लेखको तथा बोलने वालों के द्वारा होता रहा है। ब्रजभाषा के ध्वनि रूप के अनुकूल बनाने के लिए फ़ारसी शब्दो मे कुछ रूपान्तर अवश्य हो जाता है। फारसी-अरबी शब्दो का अनुपात ब्रजभाषा में कठिनाई से एक प्रतिशत है। यह उल्लेखनीय है कि प्रसिद्ध ब्रजभाषा कवियों, जैसे हितहरिवंश, नरोत्तमदास, नन्ददास, नाभादास, केशवदास, देव, मतिराम, घनानन्द और लल्लूलाल आदि की रचनाओ मे फारसी-अरबी शब्द अपेक्षाकृत कम है तथा भूषण मे ये अधिक मिलते है, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है।[1]

सामग्री के उपयोग की शैली

६७. साहित्यिक ब्रजभाषा की उत्पत्ति, विकास एव अवनति की सक्षिप्त रूपरेखा ऊपर दी गई है। उपर्युक्त प्रसिद्ध ब्रजभाषा लेखकों के अतिरिक्त सैकडो अप्रसिद्ध लेखक भी है जिनके नाम हिंदी साहित्य के इतिहासो मे मिलते है।[2] इनमे बहुत से लेखकों के ग्रंथ अभी प्रकाशित नही हुए है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी खोज के विवरणों मे सैकडो अप्रकाशित ब्रजभाषा ग्रथो की चर्चा मिलती है। बहुत बडी संख्या देश मे वैयक्तिक रूप से पाए जाने वाले ब्रजभाषा ग्रथो की है जिनका उल्लेख कही भी नही मिलता। इस प्रकार प्राचीन तथा मध्यकालीन ब्रजभाषा का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के सामने सामग्री के अभाव की समस्या नही है, जैसी कि अवधी तथा हिंदी की अन्य बोलियो के सबध मे है, बल्कि ब्रजभाषा मे तो इन ग्रथो के बाहुल्य की समस्या है, जिनके चयन तथा निर्णय के लिए पर्याप्त छानबीन की आवश्यकता पड़ती है।

६८. फलस्वरूप मध्यकालीन साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित केवल १९ प्रतिनिधि लेखको पर आधारित किया गया है :—

---

[1] बिहारी की सतसई में विदेशी शब्दों की पूरी सूची के लिए देखिए, ड्यूहर्स्ट, आर० पी०; की 'बिहारी लाल की सतसई में फारसी और अरबी शब्द' जे० आर० ए० एस०, १९१५, पृष्ठ १२२।

[2] प्राचीन ब्रजभाषा लेखकों की पूरी जानकारी के लिए दखिए, विनोद, भाग १-४।

१६ वीं शती : १. सूरदास, २. हितहरिवंश, ३. नन्ददास, ४. नरोत्तमदास, ५. तुलसीदास, ६. नाभादास, ७. गोकुलनाथ ;

१७ वीं शती : ८. केशवदास, ९ रसखान, १० सेनापति, ११. बिहारीलाल, १२. मतिराम, १३. भूषण,

१८ वीं शती : १४. गोरेलाल, १६ देवदत्त, १७. घनानन्द, १८. भिखारीदास, १९. पद्माकर, २०. लल्लूलाल ।

इस प्रकार इन तीन शताब्दियो (१६ वी से १८ वी) मे से प्रत्येक से लगभग आधे दर्जन कवि लिए गए है। यह वह समय था जब ब्रजभाषा जीवित साहित्यिक भाषा थी। तुलनात्मक दृष्टि से इन लेखकों के महत्व के सम्बन्ध में हम पहले ही परीक्षा कर चुके है। प्रत्येक शताब्दी के विभिन्न अंशो तथा विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों से कवियों को छाँटने पर विशेष ध्यान रक्खा गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न साहित्यिक और साम्प्रदायिक धाराओं के प्रतिनिधियो को सम्मिलित करने पर भी ध्यान रखा गया है। भाषा की शुद्धता के विचार से जिन ब्रज लेखको की रचनाएँ मान्य मानी जाती है, स्वभावतः उन्हे पहले स्थान दिया गया है। उदाहरण के लिए लेखको के भौगोलिक विभाजन के विचार से सूरदास, नन्ददास, गोकुलनाथ और हितहरिवश आदि ऐसे कवि है जिन्होंने ब्रज मण्डल में रह कर रचना की। नरोत्तमदास, तुलसीदास और भिखारीदास अवधी क्षेत्र के निवासी थे किन्तु प्रसिद्ध ब्रजभाषा लेखक थे। केशवदास और लाल ने अपना अधिक समय बुन्देलखण्ड मे बिताया। बिहारी राजस्थान मे जयपुर दर्बार मे रहे, और मतिराम, भूषण, देव तथा पद्माकर ने अपना सम्पूर्ण जीवन मध्यभारत और राजस्थान मे एक दरबार से दूसरे दरबार मे घूमने मे बिताया था। इसी प्रकार रीतिकालीन शृगारी कवियो के अतिरिक्त इस सूची मे हमे रामानन्दी सम्प्रदाय (जैसे तुलसीदास, नाभादास), पुष्टिमार्ग (जैसे सूरदास, विट्ठलनाथ, नन्ददास) तथा राधावल्लभी सम्प्रदाय (जैसे हितहरिवश) के कवि मिलते है। ब्रजभाषा के मुसलमान लेखको के प्रतिनिधि स्वरूप रसखान है। बीसवी शताब्दी के ब्रजभाषा के मर्मज्ञ जगन्नाथदास रत्नाकर के अनुसार बिहारी और घनानन्द की रचनाओं की सहायता से ब्रजभाषा का अच्छा व्याकरण तैयार किया जा सकता है।[1] ब्रजभाषा के प्रस्तुत अध्ययन मे उपर्युक्त दो लेखको के अतिरिक्त सत्रह अन्य मान्य लेखक सम्मिलित है।

६९ अनेक गौण ब्रजभाषा लेखकों की रचनाओं की साधारण परीक्षा के अतिरिक्त प्रायः समस्त उपर्युक्त लेखको के प्रसिद्ध उपलब्ध ग्रथो का इस अध्ययन मे उपयोग किया गया है। साहित्यिक ब्रज के उदाहरण जिन रचनाओ से चुने गए है उनके संस्करणों का पूरा विस्तार सक्षिप्त नामावली की सूची मे लेखकों के नाम के साथ दे दिया गया है।

पूर्ण विचार के बाद यह उपयुक्त समझा गया कि साहित्यिक ब्रजभाषा के इस अध्ययन मे लल्लूलाल के बाद के १९ वी तथा २० वी शती के लेखको को सम्मिलित न किया जाए,

---

[1] **कोशोत्सव स्मारक संग्रह, १९८५ वि०, पृष्ठ ३९६।**

क्योंकि इन बाद के लेखकों की भाषा पिछली शताब्दियों के प्रमुख लेखकों की भाषा की नकल मात्र है और फिर इन लेखकों की भाषा मे कोई महत्त्वपूर्ण विकास नही हो सका है। हिंदी मे ब्रजभाषा का कोई जीवित विशेष प्रसिद्ध कवि आजकल नही है। साधारण लेखक अब भी अनेक है। अन्तिम प्रसिद्ध ब्रजभाषा मर्मज्ञ कविवर जगन्नाथदास रत्नाकर थे।

इस क्षेत्र मे कार्य करने वालों की कठिनाई बढाने के लिए मध्ययुगीन ब्रजभाषा लेखको की रचनाओ के वैज्ञानिक सस्करण भी अभाग्यवश बहुत कम है। साधारणतया छपे हुए सस्करण किसी एक हस्तलिपि पर आधारित है। इस बात का प्रयत्न किया गया है कि रचनाओं के यथासभव सर्वश्रेष्ठ सस्करण चुने जायँ। इसके अतिरिक्त इन संस्करणों मे पाई गई सामग्री, विशेषतया सूरदास, नन्ददास संबधी, उपलब्ध हस्तलिपियो मे प्राप्त कुछ सम्भव पाठान्तरो के दृष्टिकोण से भी जाँची गई है।

लिपि सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ

७०. ब्रजभाषा की हस्तलिपियों के विषय मे यहाँ दो शब्द कह देना अनुपयुक्त न होगा। फारसी अरबी अथवा उर्दू लिपि मे लिखी हुई कुछ पोथियो को छोडकर ब्रजभाषा की हस्तलिपियाँ साधारणतया देवनागरी मे ही पाई जाती है, जिनमें कही कही हस्तलिपि के काल भेद अथवा उनके रचना स्थान के भिन्न भौगोलिक क्षेत्र मे स्थित होने के कारण वर्ण विचार सम्बन्धी कुछ रूपान्तर पाए जाते है। इनमे से कुछ रूपातर विभिन्न ध्वनियो के साधारण परिवर्तनो पर प्रकाश डालते है। उदाहरण के लिए पोथियो मे ***य*** के लिए प्रायः ***यॖ*** लिखा जाता है, क्योकि ***य*** का प्रयोग अधिकतर ***ज*** के लिए होने लगा था। उच्चारण के परिवर्तन के कारण यह एक विशेष आवश्यकता को इंगित करता है। ***ज्ञ*** के लिए ***ग्य***, ***ब*** और ***व*** दोनो के लिए ***व*** अथवा ***ब***, ***व*** के लिए नए चिह्न केवल ***वॖ***, ***श*** और ***ष*** के लिए ***स*** का प्रयोग इसी प्रकार के अन्य उदाहरण है। क्योकि ***ख*** के सबध मे भ्रमवश ***र व*** पढे जाने का भय रहता था, इसलिए इसके लिए ***ष*** का प्रयोग प्रायः किया गया है। कदाचित् ***ख*** के लिए ***ष*** का प्रयोग होने के कारण ***ष*** का उच्चारण उन स्थानो पर भी ***ख*** हो गया जहाँ इसका मूल संघर्षी उच्चारण होना चाहिए।

अर्द्ध चन्द्र (ँ) तथा अनुस्वार (ं) मे साधारणतया अंतर किया जाता है, किन्तु कभी कभी उनमे कोई भेद नही माना जाता। अनुनासिक के पूर्व स्वर पर अनुस्वार का प्रयोग इस बात की ओर सकेत करता है कि ये साधारणतया अनुनासिक स्वरो की भाँति उच्चरित होते थे, जैसे ***कौंन, कल्यांन, धांम, स्यांम, ज्ञांन***। कभी-कभी जहाँ अनुस्वार माना जाता है वहाँ वह नही पाया जाता है, जैसे ***नाऊँ*** के लिए ***नाऊ***। ***मैं*** के लिए ***मै*** बहुत कम मिलता है। परसर्ग ***नै*** अथवा ***ने*** नियमित रूप मे बिना अनुस्वार के लिखा जाता है। इस प्रकार के प्रयोग में उर्दू वर्ण विन्यास का कुछ प्रभाव हो सकता है (तुलनार्थ दे० उर्दू रूप)

७१. एक ही हस्तलिपि मे ऐसे अन्तर जैसे को कौ; चलो चलौ, तें तैं इत्यादि यह स्पष्ट प्रकट करते हैं कि प्रतिलिपि लेखक अन्त्य ए अथवा ऐ और ओ अथवा औ की

ठीक स्थिति के विषय में अनिश्चित ही थे। कुछ पश्चिमी ब्रजभाषा भाषी ज़िलो में इनका वर्तमान उच्चारण अर्द्धविवृत स्वरों की भाँति होता है, जब कि शेष क्षेत्र में साधारणतया संयुक्त **ऐ औ** जैसा उच्चारण होता है। इन ध्वनियों का शुद्ध अर्द्धविवृत उच्चारण ही कदाचित् इनके स्थान पर मूल स्वरो के प्रयोग के लिए उत्तरदायी है।

७२. ब्रजभाषा साहित्य देवनागरी लिपि मे छपा है। इस भाषा मे पाई जाने वाली विशेष ध्वनियो के लिए कोई नवीन चिह्न नही प्रयुक्त किये जाते है, इसीलिए ह्रस्व तथा दीर्घ ए, ओ दोनों ए, ओ से प्रकट किए जाते हैं और अर्द्धविवृत स्वर सयुक्त स्वरों **ऐ, औ** के द्वारा अथवा मूल स्वरों **ए, ओ** के द्वारा प्रकट किए जाते है।

लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव् इंडिया मे ग्रियर्सन ने ह्रस्व ए, ओ के लिए विशेष लिपिचिह्नों का प्रयोग किया है। हिंदी भाषा के इतिहास में लेखक ने ह्रस्व तथा अर्द्धविवृत रूपों के लिए विशेष नवीन लिपि-चिह्न दिए है। इन नवीन चिन्हो का प्रयोग साधारण ब्रजभाषा-मुद्रकों द्वारा नही किया गया है।

४. आधुनिक ब्रजभाषा

बोली का विस्तार तथा सीमाएँ

७३. धार्मिक दृष्टिकोण से ब्रज मण्डल की सीमा मथुरा ज़िले तक सीमित है किन्तु ब्रज की बोली इस सीमित क्षेत्र की सीमा के बाहर भी प्रयुक्त होती है। इसका प्रसार निम्नलिखित प्रदेशों में है:—उत्तर प्रदेश के मथुरा, अलीगढ, आगरा, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली के ज़िले; पंजाब के गुड़गाँव ज़िले की पूर्वी पट्टी; राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग; मध्यभारत में ग्वालियर का पश्चिमी भाग। क्योकि ग्रियर्सन का यह मत लेखक को मान्य नही है कि कन्नौजी स्वतन्त्र बोली है (§ ७५) इसलिए उत्तरप्रदेश के पीलीभीत, शाहजहांपुर, फर्रुखाबाद, हरदोई, इटावा और कानपुर के जिले भी ब्रज प्रदेश मे सम्मिलित कर लिए गए हैं।

लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव् इडिया (भाग ९, खंड १, पृ० ७०, पृ० ३१९) मे ब्रज क्षेत्र के अन्तर्गत नैनीताल तराई को भी सम्मिलित कर लिया गया है, किन्तु लेखक की निजी जानकारी के अनुसार नैनीताल तराई की मण्डियों के निवासी प्राय: खडीबोली क्षेत्र के हैं और तराई के अन्य भागों में वे कुमायूँनी अथवा भूटिया हैं, जो जाडों मे पहाडों से नीचे उतर कर अस्थायी रूप से वहाँ रहते हैं इसलिए यही ठीक होगा कि ब्रजभाषा क्षेत्र मे नैनीताल के तराई भाग को सम्मिलित न किया जाय।

७४. आधुनिक ब्रजभाषा क्षेत्र उत्तर तथा दक्षिण में हिंदी की दो अन्य पश्चिमी बोलियों अर्थात् खडीबोली तथा बुन्देली से घिरा हुआ है। इसके पूर्व में हिंदी की पूर्वी बोली अवधी का क्षेत्र है और पश्चिम में राजस्थानी की दो पूर्वी बोलियाँ अर्थात् मेवाती और जयपुरी बोली जाती हैं। आधुनिक ब्रज लगभग १ करोड़ २३ लाख जनता के द्वारा बोली जाती है और लगभग ३८,००० वर्ग मील के क्षेत्र में फैली हुई है। तुलनात्मक

दृष्टि से ब्रजभाषा बोलने वालों की जनसंख्या आस्ट्रिया, बलगेरिया, पोर्तुगाल अथवा स्वीडेन की जनसंख्या से लगभग दुगनी है और डेनमार्क, नार्वे अथवा स्विटजरलैण्ड की जनसंख्या से चौगुनी है। इस बोली का क्षेत्र आस्ट्रिया, हंगरी, पोर्तुगाल, स्काटलैण्ड अथवा आयरलैण्ड से अधिक है।

क्या कनौजी भिन्न बोली है ?

७५. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव् इण्डिया (भाग ९, खड १, पृ० १) में हिंदी की बोलियों की चर्चा के प्रारम्भ मे ही सर जार्ज ग्रियर्सन का कथन है कि 'वास्तव में कन्नौजी ब्रज भाषा का ही एक रूप है किंतु जनमत के कारण इस पर अलग विचार किया जा रहा है'। आगे चलकर कन्नौजी की चर्चा करते हुए सर ग्रियर्सन इसकी कुछ विशेषताओं का उल्लेख करते है। किन्तु सर्वे की व्याख्या के अनुसार ही कन्नौजी की विशेषताएँ (लि० स० इ०, भाग ९, खड १, पृ० ८३) ब्रज क्षेत्र के किसी न किसी भाग में पाई जाती है। औकारान्त के स्थान पर ओकारान्त के प्रयोग का चुना जाना ग्रियर्सन के अनुसार भी ब्रजभाषा में किसी न किसी रूप मे पाया जाता है। व्यंजनात सज्ञाओ मे **उ** अथवा **इ** का जुड़ना कन्नौजी की विशेषता नही है। ऐसा अवधी मे सामान्यतया होता है और प्रायः उन सभी ज़िलों में ऐसा उच्चारण पाया जाता है जो अवधी क्षेत्र के निकट है। यह विशेषता साधारणतया पश्चिमी क्षेत्र के ग्रामीण प्रदेशो मे भी पाई जाती है। मध्य **–ह–** का लोप तो एक ऐसा लक्षण है जो न केवल आधुनिक ब्रज के समस्त रूपों मे ही मिलता है वरन् हिन्दी की अन्य बोलियो मे भी मिलता है। कुछ पुल्लिग आकारांत संज्ञाओं जैसे ***लरिका*** आदि के अन्त्य **अ** का विकृत रूप एकवचन मे–**ए** मे न बदलना भी एक ऐसी विशेषता है जो समस्त ब्रज क्षेत्र मे पाई जाती है। संकेतवाचक सर्वनाम **बौ** और **जौ** कुछ पूर्वी ब्रजभाषा क्षेत्रों में पाए जाते है, जहाँ ग्रियर्सन ही के अनुसार ब्रजभाषा बोली जाती है, जब कि **वहु** और **यहु** अवधी के प्रभाव के कारण है। ***लरिका ने चलो गओ*** जैसे प्रयोग एक व्यक्तिगत विशेषता हो सकती है । भूतकालिक कृदन्त के रूप जैसे **दओ, लओ, गओ** इत्यादि और सहायक क्रिया के भूतकाल के रूप ***हतो*** इत्यादि ब्रज क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रचलित है। ***रहौं*** अवधी से लिया गया रूप है और ***थो*** रूप ***त्*** मे अन्त होने वाले भूतकालिक कृदन्त के रूपो के बाद पाया जाता है। ***थो*** रूप हिंदी ***था*** के सादृश्य पर भी हो सकता है। इस प्रकार कनौजी की ऐसी कोई विशेषता नही बचती जो ग्रियर्सन के अनुसार ब्रजक्षेत्र मे न पाई जाती हो। उपर्युक्त तुलनात्मक परीक्षा के आधार पर कनौजी को निश्चित रूप से ब्रजभाषा के अन्तर्गत रखना चाहिए।

वर्तमान ब्रजभाषा के उपरूप

७६. वर्तमान ब्रज के अन्तर्गत कोई स्पष्ट भौगोलिक उपरूप नही मिलते है। इस प्रकार के विभिन्न उपरूपों को ढूँढने का प्रयास निष्फल ही सिद्ध होता है। फिर भी कुछ साधारण प्रवृत्तियाँ ऐसी है जिनके आधार पर इस बोली को तीन प्रमुख भागों में

विभाजित किया जा सकता है, अर्थात् पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी । मैनपुरी, एटा, इटावा, बदायूँ, बरेली, पीलीभीत, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, हरदोई और कानपुर की बोलियाँ पूर्वी ब्रज के अन्तर्गत आती हैं। इनमें अन्तिम तीन जिले अवधी क्षेत्र के निकट हैं, और इसलिए इन ज़िलों की स्थानीय बोलियों में हमें अवधी रूपो का विशेष मिश्रण मिलता है। इन तीन ज़िलों के बाद पड़ने वाले पीलीभीत और फर्रुखाबाद ज़िलों की बोलियों पर भी अवधी का प्रभाव कही कही पाया जाता है। इस प्रकार ब्रजभाषा के इन दस पूर्वी ज़िलों मे से अन्तिम पाँच सीमान्त जिलो में पड़ोस की अवधी बोली का प्रभाव मिलता है। अन्य पाँच ज़िले इस प्रकार के विशिष्ट वाह्य प्रभाव से स्वतंत्र है। बरेली और बदायूँ ज़िलों के उत्तरी पश्चिमी भागों में खडीबोली का कुछ कुछ प्रयोग मिलने लगता है किन्तु वह अधिक स्पष्ट नही है।

७७. मथुरा, आगरा, अलीगढ़ और बुलन्दशहर की बोली पश्चिमी अथवा केन्द्रीय ब्रज मानी जा सकती है। इस रूप को सर्वमान्य विशुद्ध ब्रज भी कहा जा सकता है। बुलन्दशहर के उत्तरी भाग की बोली खडीबोली क्षेत्र के अधिक निकट होने के कारण पडोस की इस बोली के रूपों से मिश्रित है। इसके अतिरिक्त गूजरो की अधिक जनसंख्या होने के कारण, जिनकी बोली मे कुछ विशेष भाषागत विशेषताएँ होती है, इस जिले की बोली में कुछ अन्य विषमताएँ भी मिलती है। भरतपुर, धौलपुर, करौली, पश्चिमी ग्वालियर और पूर्वी जयपुर की बोली पश्चिमी यद्यपि केन्द्रीय ब्रज से मिलती-जुलती बोली है, किन्तु इसमें कुछ राजस्थानी के चिह्न मिलने लगते है, इसलिए इसे दक्षिणी ब्रजभाषा कहना अधिक उपयुक्त होगा।

७८ ब्रजभाषा के इन उपरूपो मे अन्तर के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे **–य–** सहित भूतकालिक कृदन्त (जैसे **चल्यौ** अथवा **चल्यो**) समस्त पश्चिमी और दक्षिणी ज़िलों मे पाया जाता है, जब कि बिना **–य–** वाले रूप (**चलो**) केवल पूर्वी ज़िलों में ही मिलते है। **ब** क्रियार्थक सज्ञा, **ग** भविष्य, सहायक क्रिया का भूतकालिक कृदन्त रूप **हो**, उत्तम पुरुष सर्वनाम रूप **हौं** और प्रश्नवाचक सर्वनाम **को** पश्चिमी और दक्षिणी क्षेत्र के अधिकाश जिलो मे, विशेषतया विशुद्ध ब्रज रूप पाए जाने वाले केन्द्र, मथुरा और आगरा में मिलते हे, जब कि **न** क्रियार्थक सज्ञा, **ह** भविष्य, सहायक क्रिया का भूतकालिक कृदन्त रूप **हतो**, उत्तम पुरुष सर्वनाम रूप **मैं**, प्रश्नवाचक सर्वनाम रूप **कौन** पूर्वी क्षेत्र मे मिलते है। कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ ऐसी है जो एक दूसरे क्षेत्र मे आपस मे मिलती है। जैसा कि पहिले ही कहा गया है कि ब्रजभाषा का इन तीन अथवा दो भागो मे विभाजन विषय निरूपण की सुविधा के विचार से ही है, भाषा विषयक विशेषताओं के दृष्टिकोण से उतना नही है।

७९. भौगोलिक परिस्थितियों के कारण होने वाले रूपान्तरों के अतिरिक्त धर्मगत जातिगत, वर्गगत भेद भी लोगों की बोली मे अन्तर ला देते है। किसी मुसलमान ग्रामीण की ब्रजभाषा उसके पडोसी हिंदू की बोली से कुछ भिन्न हो सकती है। पहले वाले की बोली मे कुछ खडीबोली रूपो के साथ कुछ फ़ारसी शब्द भी अधिक मिलेगे। उदाहरण के लिए लेखक ने अपने गाँव मे कुछ मुसलमान कृषको को साधारण रूप **गओ हो** के

स्थान पर *गया हा* अथवा *सबेरे* के लिए *फ़जर*, *सुक्कुर* (शुक्रवार) के लिए *जुम्मा* बोलते हुए पाया है। इसी प्रकार की स्थिति ब्राह्मण किसान की है, जो अपनी जातिगत उच्चता प्रदर्शित करने के लिए विशुद्ध बोली मे अस्वाभाविक रूप से कुछ भद्दे खडीबोली रूपों के साथ अधिक संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग करता है। उदाहरण के लिए जिला मथुरा के राया गाँव के एक ब्राह्मण की बोली के उदाहरण मे मुझे निम्नलिखित वाक्य मिला : *जब वा नै क्या काम करो कि जो कुछ माल हाथ लगो सो लियो* यहाँ ब्रज रूप *कहा कछु* के स्थान पर हिन्दी रूप *क्या* और *कुछ* का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार बुलन्दशहर के गूजरो की बोली, जो एक वर्ग-जाति की बोली है, अपनी कुछ निजी विशेषताएँ रखती है। इस तरह की विशेषताओं की चर्चा इस पुस्तक मे स्थान स्थान पर कर दी गई है।

८०. बोली का विशुद्धतम रूप बडे शहरों से दूर गाँवों मे रहने वाली निम्न जातियों के वृद्ध हिन्दू कृषको मे मिलता है। छोटे बच्चो की बोली मे खडीबोली हिंदी के प्रभाव की अधिक संभावना पाई जाती है, क्योकि ब्रज प्रदेश मे भी गाँव के स्कूलो की शिक्षा का माध्यम खडीबोली ही है। शिक्षा का प्रतिशत बहुत कम होने के कारण इस प्रकार का प्रभाव अधिकतर अप्रत्यक्ष रूप से किसी पढे लिखे बराबर आयु वाले के बोलने की नकल के कारण अधिक होता है, प्रत्यक्ष रूप से बहुत कम। पुरुषों और स्त्रियो मे स्त्रियो की भाषा में खडीबोली अथवा अन्य पडोसी बोलियों का सब से कम मिश्रण रहता है क्योकि दूसरी भाषा बोलने वालो के साथ सम्पर्क कम होने तथा शिक्षा के अभाव के कारण इस प्रकार के प्रभावो की बहुत कम सभावना स्त्रियों मे रहती है। स्त्रियों की बोली के अधिक नमूने एकत्रित कर सकना सम्भव नही हो सका क्योंकि विशेष पर्दा न होने पर भी स्त्रियो से अधिक संपर्क भारतीय सामाजिक रिवाज के कारण सभव नही होता है।

गाँव, क़सबा तथा नगर की बोली

८१. गाँवों और छोटे क़सबो में, जो गाँव से बहुत अधिक भिन्न नही है, लोगो को आपस मे एक दूसरे से मिलने-जुलने के अधिक अवसर मिलते है। इसके अतिरिक्त बड़े शहरों के मोहल्लो के विभाजन के रूप मे विभिन्न जातियो का अलगाव बहुत कम होता है, इसीलिए खडीबोली अथवा अन्य बोलियो का प्रभाव भी बहुत कम मिलता है। उदाहरण के लिए लेखक के गाँव[1] मे लेखक का घर, जो एक कायस्थ घराना है, ब्राह्मणों, मुसलमानों, जुलाहो और हिंदू नाइयों से घिरा हुआ है, और सभी जातियो के लोग नित्य संध्या समय एक स्थान पर एकत्रित हो कर बातें करते है तथा हुक्का पीते है। गाँव मे कभी कभी कुछ मुहल्ले इस प्रकार के होते है जिनमें कोई जाति विशेष ही रहती है, किन्तु तब भी क्षेत्रफल के बहुत अधिक न होने के कारण इनकी जनसंख्या सीमित ही रहती है। इस प्रकार गाँवो मे अधिक जातियाँ निकट सम्पर्क मे आती हैं,

---

[1] गाँव अकरस, डाकखाना बहेड़ी, जिला बरेली।

इसलिए गाँवों की बोली में अधिक एकरूपता मिलती है तथा अन्य बोलियों का कम से कम मिश्रण मिलता है।

उदाहरणार्थ मेरे पैतृक निवासस्थान, गाँव शकरस (डा० बहेडी, जि० बरेली, उत्तर प्रदेश) की जनसंख्या १९३५ में लगभग १६०० थी और बसे हुए भाग की लम्बाई लगभग १००० गज तथा चौडाई १०० गज थी। गाँव का क्षेत्रफल चारों ओर के बागों तथा खेतों आदि को मिलाकर लगभग ९०० एकड था, जिसका ¾ भाग जोता जाता था। इससे सरकार को १७०० रु० तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को ६५ रु० आमदनी होती थी। सरकार द्वारा गाँव मे एक अपर प्राइमरी स्कूल भी खुला हुआ था, जिसमे कुल ४० लड़के थे। स्कूल के अध्यापक का वेतन २०) था; पटवारी का वेतन १५) तथा चौकीदार का भत्ता ५) प्रति मास था। स्कूल पडोस के कई गाँवों की आवश्यकता की पूर्त्ति करता था, इसी प्रकार चौकीदार भी पडोस के छोटे छोटे गाँवों की फ़ौज़-दारी आदि की सूचनाएँ पुलिस थाने में देता रहता था। गाँव के बस्ती वाले भाग मे पेशेवर जातियों के विचार से घरों का विभाजन था, उदाहरणार्थ जुलाहों, मज़दूरों, मेहतरों, काछियो, सुनारों इत्यादि के घरों के समूह एक एक जगह थे।

८२. बडे कसबो तथा नगरों मे भाषा विषयक परिस्थिति अन्य प्रकार की होती है। ये बहुधा किसी जाति अथवा बिरादरी विशेष के आधार पर कई मुहल्लों में बँटे रहते हैं। उदाहरण के लिए साधारणतया यह विभाजन दो प्रधान हिस्सो में रहता है—हिन्दू मुहल्ले और मुसलमान मुहल्ले। नगर के हिन्दू भाग मे भी प्राय. भिन्न-भिन्न विशेष वर्गो या जातियों की पृथक्-पृथक् बस्तियाँ होती हैं जैसे साहूकारा, काश्मीरी टोला, खत्री बाडा, गुजराती मुहल्ला इत्यादि। इस प्रकार यदि मोहल्ले के नाम के साथ जाति न भी जोड़ी जाय तो भी यह पता चल जाता है कि अमुक मुहल्ले मे इस जाति विशेष की बहुलता है। इस प्रकार का विभाजन एक प्रकार से सनातनी प्रभाव के रूप मे कार्य करता है तथा बोलियो के भेदो को सुरक्षित रखने मे सहायक होता है। ये भेद स्त्रियों की बोली मे अधिक सुरक्षित रहते है और कुछ मात्रा मे पुरुषो की भाषा मे भी पाए जाते हैं।

ब्रजप्रदेश मे नगरो मे भी साधारणतया हिन्दू स्त्रियाँ ब्रजभाषा बोलती है, किंतु पुरुष प्राय: दो भाषाएँ बोलते है—घरो मे तथा सीमित क्षेत्रो में फारसी, सस्कृत तथा अग्रेजी शब्दो के साथ ब्रज का प्रयोग करते है, तथा बाहर बाज़ार, दफ्तर अथवा स्कूल मे खडीबोली का प्रयोग करते है। काश्मीरी, खत्री तथा कुछ उच्च शिक्षित हिन्दुओं के घरानो मे फ़ारसी अथवा सस्कृत तथा स्थानीय बोलियो के मिश्रण के साथ खडी बोली को ही अपना लिया गया है।

८३. कुछ नगर उपर्युक्त साधारण प्रवृति के अपवाद स्वरूप भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ मथुरा जैसे धार्मिक हिन्दू नगर मे पुरुष वर्ग द्वारा घर तथा सीमित क्षेत्र के बाहर भी जन बोली का अधिक प्रयोग होता है। आगरा और बरेली मे मुसलमानों की अधिक जन संख्या होने के कारण नगर मे जन बोली बहुत कम सुनाई पडेगी। फिर हिंदुओं की बोली भी बड़े शहरों मे मुसलमानो की बोली उर्दू की ओर अधिक झुकाव रखती है।

८४. कानपुर ब्रजक्षेत्र की पूर्वी सीमा का सब से बड़ा औद्योगिक नगर है। ब्रजभाषा केन्द्र से अधिक दूर होने के कारण तथा अवधी क्षेत्र के अधिक निकट होने के कारण इस नगर मे अवधी ही अधिक सुनाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त क्योंकि यह उत्तर प्रदेश का मिलों तथा फैक्टरियों वाला बहुत बडा नगर है, इसलिए यहाँ अनेक प्रदेशों के लोगों की आबादी के कारण अनेक बोलियो का मिश्रण पाया जाता है। साथ ही खडीबोली हिंदी की ओर अधिक झुकाव मिलता है। इसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ, यद्यपि छोटे रूप में ही सही अलीगढ़ ज़िले के हाथरस जैसे कई मिलो वाले कसबों तथा छोटे नगरों में भी पाई जाती हैं। मिलों वाले नगरों की भाषागत समस्या खोज का एक रोचक विषय हो सकता है, जिससे उपयोगी निष्कर्ष निकलने की संभावना है।

शब्दसमूह

८५. ब्रजभाषा के शब्दसमूह का अधिकांश भाग भारतीय आर्यभाषा के शब्द समूह से बना है किन्तु ऐसे बहुत शब्द गाँवों मे मिलते है जिनकी व्युत्पति अस्पष्ट है। विदेशियो के सम्पर्क से बहुत से फ़ारसी-अरबी शब्द भी घुल मिल गए है और आधुनिक काल मे अनेक अंग्रेज़ी भाषा के शब्द बोली में आ गए है जिनमे से कुछ अंग्रेज़ी के प्रत्यक्ष प्रभाव के मिट जाने के बाद भी बोली में बने रह जायँगे। साधारणतया ऐसे विदेशी तद्भव शब्द विदेशी सस्थाओ से सम्बन्धित भावो को प्रकट करने के लिए ही उधार लिए गए है, जैसे कचहरी, दफ्तर, फौज़, पुलिस, यातायात तथा आदान-प्रदान के साधन, शिक्षा सम्बन्धी अथवा इसी प्रकार की अन्य व्यवस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाली सस्थाएँ। इसके अतिरिक्त विदेशी प्रभाव के कारण देश मे प्रयुक्त होने वाली दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के नाम भी अधिकतर विदेशी ही है, उदाहरण के लिए वस्त्र, शृंगार, खानपान की वस्तुएँ, कल-पुर्जे, मनोरंजन तथा अन्य दैमिक प्रयोग की वस्तुओं के नाम लिए जा सकते है। इस प्रकार के उधार लिए गए सभी विदेशी शब्दों मे बोली के शब्दसमूह मे मिलाने के पूर्व ही आवश्यक ध्वनि एवं अर्थ सबधी परिवर्तन कर लिए जाते है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि फ़ारसी अथवा सस्कृत तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग कुछ ही वर्गों मे, विशेष रूप से कसबो तथा नगरो में, ही पाया जाता है (§ ८२)।

८६. यह देखा जाता है कि कुछ शब्दो का प्रयोग किसी क्षेत्र विशेष तक ही सीमित है, अर्थात् सामान्य साधारण शब्दावली के अतिरिक्त कुछ स्थानीय शब्दावली भी मिलती है। उदाहरण के लिए पश्चिम तथा दक्षिण ब्रजप्रदेश मे ***छोरा*** (लडका) शब्द का प्रयोग मिलता है, जब कि पूर्व की ओर इसका बिल्कुल प्रयोग नही है। पूर्व में ***छोरा*** के स्थान पर ***लौंड़ा*** अथवा ***लड़का*** शब्द व्यवहृत होता है। इसी प्रकार ***लुगाई सेंत-मेंत, जीमनो, ब्यारू, लत्ता, न्यारो, पीनस*** इत्यादि शब्द अधिकतर पश्चिम-दक्षिण में मिलते है, जब कि क्रमशः ***बैअरबानी, खाली, खानो, कलेवा, कपड़ा, अलग और पालकी*** पूर्व ब्रजप्रदेश मे प्रचलित है। इसके अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे है जो ब्रजक्षेत्र, के बाहर नही सुनाई पडते। उदाहरण के लिए ***थरिया*** शब्द अवध के लिए अपरिचित ८

जहाँ पर इसके लिए ***टाठी*** शब्द मिलता है। इसी प्रकार ***ताऊ, बेला, मिरजई, पिटउआ,*** और इसी तरह के अन्य सैकडो शब्द है जो हिंदी की अन्य बोलियो क क्षेत्रों में साधारणतया अपरिचित हैं।

८७. गाँवों में बहुत से ऐसे शब्द मिलते हैं जो कृषि, अथवा कृषि सम्बन्धी कलपुर्जों, गाँव के यातायात के साधनों, पशुओं तथा उनके रोगों, घरो के हिस्सों, गाँव की लकडी की बनी चीज़ो, वृक्षो, पौधो तथा घासो, और विशेष धार्मिक और सामाजिक रीतियों से सम्बन्ध रखते हैं। यह ग्रामीण विशेष शब्दावली अधिकतर उसी क्षेत्र के नगर निवासियों के लिए अज्ञात होती है। वास्तव मे शब्दसमूह का अध्ययन एक पृथक् विषय है।

५. ध्वनि समूह

८८. ब्रजभाषा मे साधारणतया निम्नलिखित ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। ये हिंदी की अन्य बोलियों मे विशेष भिन्न नही हैं:-

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ए̆ ए ओ̆ ओ ऐ (अए) औ (अओ)

ये समस्त स्वर निरनुनासिक तथा अनुनासिक दोनों रूपों में पाए जाते है।

व्यंजन

	स्पर्श	अनुनासिक	पार्श्विक	लुठित तथा उत्क्षिप्त	संघर्षी	अर्द्धस्वर
कंठ्य	क् ख्					
	ग् घ्	ङ्				
तालव्य	च् छ्					य्
	ज् झ्	ञ्				
मूर्द्धन्य	ट् ठ्			र् र्ह्		
	ड् ढ्	ण्		ड़् ढ़्		
दत्य	त् थ्					
	द् ध्	न् न्ह्	ल् ल्ह्		स्	
ओष्ठ्य	प् फ्					व्
	ब् भ्	म् म्ह्			ह्	

पुरानी ब्रज में ऋ लिपिचिह्न मिलता है किन्तु इसका उच्चारण मूल स्वर के समान न होकर रि अथवा इर् था। अधिकाश पोथियों मे यह इसी प्रकार लिखा भी गया है।

कुछ अन्य ऐसे लिपि चिह्नों का प्रयोग भी मिलता है जिनका उच्चारण संस्कृत के मूल उच्चारण के अनुरूप था यह अत्यन्त सदिग्ध है। ये लिपिचिह्न निम्नलिखित है :—

व्, श्, ष्, : (विसर्ग)

मूल स्वर

८९. मूल स्वर **अ आ इ ई उ ऊ ए ओ** पुरानी ब्रज मे शब्दो के आदि मध्य तथा अन्त तीनो स्थानो मे पाए जाते हैं।

अ को छोड कर शेष समस्त स्वर आधुनिक ब्रज मे भी इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं। अन्त्य **अ** साधारणतया नियमित रूप से और मध्य **अ** प्रायः या तो लुप्त हो जाता हैं अथवा यह अवधी के समान उदासीन स्वर के समान उच्चरित होता है: **जोरअंबों** (**अ**०), **चारअ़** । संयुक्त व्यजनो के बाद अन्त्य–**अ** अथवा –**अ़** नियमित रूप से मिलता है।

९० बुलंदशहर ज़िले मे गूजर **आ** का उच्चारण **औ** के समान करते है: **आई** को **औई, मकाए** (मकान) को **मकौए, कहाँ** को **कहौं**।

९१. अवधी के समान आधुनिक ब्रज मे भी अन्त्य **–इ –उ** की प्रवृत्ति फुसफुसाहट वाला स्वर हो जाने की ओर है। यह उच्चारण अलीगढ ज़िले मे अधिक प्रचलित है: **ब्यारइ़, सूज्जउ़**।

इन स्वरो की परीक्षा लेखक ने ध्वनि-प्रयोगशाला मे की। लेखक के उच्चारण मे ये अन्त्य स्वर वर्तमान थे यद्यपि इनका रूप अत्यन्त क्षीण अवश्य था।

९२. **ए ओ** शब्द के आदि मे नही मिलते तथा आधुनिक ब्रज मे केवल स्वर सयोगो मे ही पाए जाते हैं: **नओरा, गाए**। क्योकि साधारण देवनागरी लिपि मे इनके लिए पृथक् लिपि चिह्न नही हैं अत इन ह्रस्व स्वरो के लिए भी क्रम से **ए ओ** लिपि चिह्नो का प्रयोग होता है।

९३ **ऐ** (**अए**) **औ** (**अओ**) सयुक्त स्वरो का उच्चारण कुछ ज़िलो मे क्रम से मूल स्वर **ऍ ऑ** के समान होता है। यह विशेष उच्चारण अलीगढ़, मथुरा, आगरा, बुलंदशहर, धौलपुर और कही कही एटा जिले मे मिलता है *ऍसो* (*ऐसा*), **हॅ** (**है**), **ठॅर** (ठहर), **दूसरॉ, दयॉ, तॉ**। इन उदाहरणो से यह प्रकट होता है कि **औ** केवल अन्त्य स्वर के रूप मे मिलता है। पूर्वी ब्रजप्रदेश मे **ऑ** का उच्चारण प्राय **ओ** होता है।

९४. यहाँ पर इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि प्राचीन ब्रजभाषा काव्य मे सवैया छन्द के अनेक रूपो का प्रयोग बहुत मिलता है। यह वर्णिक छन्द है, जिसमे लघु गुरु वर्णों के तीन भिन्न भिन्न समूहो के अनुसार गणो का निश्चित क्रम रहता है। सवैया मे **ए ओ ऐ औ** कभी कभी ऐसे स्थलों पर पड़ते है जहाँ पर इनका उच्चारण ह्रस्व होना चाहिए, नही तो गण के संबंध मे कठिनाई उपस्थित हो सकती है। उदाहरणार्थ सवैया की निम्नलिखित पक्तियो मे अधोरेखाकित **ए ओ ऐ औ** का उच्चारण ह्रस्व होना चाहिए:—

I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S

अवधे स के द्वा रे सका रे गई सुत गो द कै भू पति लै निकसे। (तुलसी का० १-१)

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I

पाहन हौं तो व ही गिरि को जो क रो सि र छ त्र पु रंदर धारन। (रस० १)

S I I S I I S I I S

जाहिरे जागत सी जमु ना। (पद्मा० १३)

S । । S ।।S ।। S । ।
जासो न ह्वीं ठह रै ठिक मा न कौ। (घना० २२)

पदों मे भी, जो मात्रिक छन्दों मे प्राय बद्ध होते है, छन्द की आवश्यकता के कारण कभी कभी इन स्वरों को ह्रस्व पढना पड़ता है। इस तरह के कुछ उदाहरण अन्य छन्दो की पक्तियों में भी मिल जाते है। उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि देवनागरी के **ए ओ ऐ औ** लिपि चिह्न पद्य साहित्य मे क्रम से इन स्वरो के ह्रस्व रूपो के लिए भी प्रयुक्त होते रहे है। इनका ह्रस्व उच्चारण आधुनिक **ए ओ ऍ ऑ** से मिलता जुलता मानना पडेगा।

ह्रस्व **ए ओ** प्रकट करने के लिए कभी कभी **ए ओ** को क्रम से **य़ व़** भी लिख दिया जाता था: ***आय गई ग्वालिनि त्यहि अवसर*** (सूर० म० ४), ***सुनि म्वहि नंद रिसात*** (सूर० म० १२)।

अनुनासिक स्वर

९५ उदासीन स्वर तथा फुसफुसाहट स्वर (§§ ८९, ९१) के अतिरिक्त शेष समस्त मूल स्वर अनुनासिक भी मिलते है: ***अँगिया, इँदरसे***।

पूर्वी जिलों मे कभी कभी अकारण अनुनासिकता के उदाहरण भी मिल जाते है:

भूको : *भूँको* (ब०)
हाथ : *हाँत* (मैं०)
बाकी (फा० बाकी) : *बाँकी* (फ०)

पुरानी ब्रज मे जब **ए ओ ऐ औ** का उच्चारण ह्रस्व होता है तो भी ये अनुनासिक हो सकते है: ***यातें*** (तुलसी क० १-१७), ***त्यों*** (पद्मा० ५-१२), ***ठाड़े हैं*** (तुलसी क० २-१३), ***कहौं*** (सूर० म० ९)।

स्वर संयोग

९६ प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे मूल स्वर सयोग के उदाहरण बराबर मिलते है। अधिकाश उदाहरण दो स्वरो के सयोग के पाए जाते है: ***गई, दिउली, खाओ***। स्वर सयोगो मे से **अए अओ** सयुक्तस्वर माने जाते है और इनके लिए **ऐ औ** स्वतत्र लिपिचिह्न देवनागरी लिपि मे है।

९७. जब **ए ओ** स्वर सयोग मे द्वितीय स्वर के समान प्रयुक्त होते है तब शाहजहापुर और निकटवर्ती पूर्वी सीमान्त जिलो मे इनका उच्चारण क्रम से **इ उ** होता है ***ऐसी अइसी, गौनो गउनो***।

९८ तीन स्वरों के सयोग के भी कुछ उदाहरण पाए जाते है ***सिआई*** (सिलाई)।

९९ स्वर सयोग मे एक या अधिक स्वर अनुनासिक भी हो सकता है: ***साईं झाँईं***।

१००. स्वर अनुरूपता (vowel assimilation) के उदाहरण बहुत कम पाए जाते है:

उ : इ	*रुपिया* · *रिपिया*	(म० ज० पू०)
	सुनी *सिनी*	(म०)
उ : अ	*चतुर* : *चतर*	(बु०)
	कुँमर : *कँमर*	(ज० पू०)

ब्रज का स्वर समूह साधारणतया अन्य आधुनिक आर्यावर्त्ती भाषाओं के समान है। कुछ विशेषताओं की ओर यहाँ ध्यान आकृष्ट किया जाता है। ब्रज मे **अ** का उच्चारण विवृत है किन्तु पूर्वी भाषाओ मे, भीली मे तथा मराठी और पहाडी की कुछ बोलियो मे इसका उच्चारण अर्द्धसवृत **ऑ** अथवा सवृत **ओ** भी होता है। दक्षिण-पश्चिमी (राजस्थानी और गुजराती) भाषाओ मे सयुक्त स्वर **ऐ औ** का उच्चारण मूल अर्द्धविवृत स्वर **ऍ ऑ** के समान होता है। इन सयुक्त स्वरों का यह उच्चारण दक्षिणी और पश्चिमी ब्रज के अतिरिक्त पश्चिमी हिंदी की बुदेली और खडीबोली में भी मिलती है।

स्पर्श

१०१. **ड् ढ्** को छोड कर शेष समस्त स्पर्श प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे शब्दो के आदि तथा मध्य मे मिलते है। अन्त्य स्वर के लुप्त हो जाने के कारण आधुनिक ब्रज मे स्पर्श शब्दान्त मे भी प्राप्त होते है. *बन्दर्*, *सब्*।

ड ढ् आधुनिक ब्रज मे केवल शब्द के आदि मे और प्राचीन ब्रज मे केवल तत्सम रूपो मे मध्य मे भी पाए जाते है: *डारी, ढाई, क्रीडत* (गोकुल ५-२)।

खडी बोली मे मध्य –ड– नियमित रूप से पाया जाता है।

१०२ मथुरा और अलीगढ मे **क्यौं** साधारणतया **च्यौं** या **चौं** के रूप मे उच्चरित होता है।

क् का **च्** मे परिवर्त्तित होना अनुगामी **य्** के कारण है।

द् की **स्** मे अनुरूपता के कुछ उदाहरण मिलते है.

बादसा : *बास्सा* (म०क०)
द्वादसी : *द्वास्सी* (म०)

करौली के एक उदाहरण मे हम–**स्स्**– के स्थान पर–**च्छ्**–पाते है: **बाच्छा** (बास्सा)

जयपुर पू० मे आदि का **ब् व्** की भाँति बोला जाता है:

बापिस : *वापिस*
बे : *वे*

कुछ शब्दो में मध्य का **ब्** बहुधा किसी अनुगामी अनुनासिक के रहने पर **म्** के रूप मे मिलता हैं (दे० § १०६, १२४):

आबतु : *आम्तु* (म० भ० मैं०)
बागवान् : *बाग्मान्* (बदा०)
पावैंगे : *पामैंगे* (म०)

१०३. शब्दों के मध्य अथवा अन्त की ध्वनियों का द्वित्व उत्तरी बुलंदशहर की बोली की एक प्रमुख विशेषता है। थोडे से उदाहरण कुछ पूर्वीय जिलो मे भी मिलते है :

ऊपर् *उप्पर्* (बु०)
दरबाजो : दरबज्जो (धौ० ब०)
कुल् *: कुल्ल* (बदा०)
बस् *: बस्स* (ब०)

स्पर्शों के द्वित्व उच्चारण की प्रवृत्ति पश्चिमोत्तरी आधुनिक आर्यभाषाओं में नियमित रूप से मिलती है और यह हिंदी की खडीबोली मे भी आ गई है।

१०४. अनुनासिकों मे ङ् ञ् स्ववर्गीय व्यंजनों के पूर्व शब्द के केवल मध्य में आते है : *सङ्ग, कुञ्ज*। आधुनिक ब्रज मे *ञ्* का उच्चारण लगभग *न्* के सदृश ही होता है : *कुन्ज्*।

१०५ प्राचीन ब्रज में *ण्* स्ववर्गीय व्यजनो के पूर्व शब्द के मध्य मे और अकेला दो स्वरों के बीच मे भी मिलता है : *कुण्डल* (सूर० य० ४), *मणि कोठा* (गोकुल० १४-१९)। प्राचीन पोथियो मे *ण्* के स्थान में *न्* का प्रचुर प्रयोग यह बतलाता है कि परवर्ती उच्चारण ही कदाचित् साधारण था। आधुनिक ब्रज मे *ण्* प्राय बिलकुल ही व्यवहृत नही होता है। अपने वर्ग के किसी व्यजन के पहले शब्द के मध्य मे उसका होना माना जाता है, किंतु उसका उच्चारण *न्* से बहुत अधिक मिलता जुलता होता है : *ठन्डो* (§ ११९)। तथापि बुलदशहर की बोली मे *ण्* का इतना अधिक प्रयोग होता है कि कभी कभी *न्* भी *ण्* की भाँति बोला जाता है : *मकौण*, (मकान), *बहण*। आधुनिक बोली मे *ण्* का उच्चारण वास्तव मे *ड़ँ* से मिलता जुलता है।

१०६. *न्* तथा *म्* ब्रज मे शब्द के आदि तथा मध्य मे प्रयुक्त होते है। आधुनिक ब्रज मे वे शब्दान्त मे भी मिलते है : *नोन् कन्कइया*।

न्ह् तथा *म्ह्* आधुनिक ब्रज मे केवल शब्दो के आदि तथा मध्य मे प्रयुक्त होते है : *न्हानो, कान्हा, म्हेतर, तुम्हारो*।

विशेष-प्राचीन ब्रज मे अनुस्वार (ं) शुद्ध अनुनासिक स्वर होने के अतिरिक्त लिपि के विचार से अपने वर्ग के स्पर्शों के पहले पाँच अनुनासिकों के लिए भी व्यवहृत होता है।

*–म्–*के *–ब्–*मे परिवर्तित होने के कुछ उदाहरण पाए जाते है, किंतु ये पूर्वीय ब्रज प्रदेश तक सीमित है :

सामल् : साबल् (बदा०)
पर्मेसुर् : पर्बेसुर् (ए०)

कुछ उदाहरणो मे *न्* *ल्* मे परिवर्तित देखा जाता है

न्कस्यो : लिकस्यो : (बु०), *लिकरो* (इ०)
नम्बर : लम्बर् (ब०)

पार्श्विक, लुंठित तथा उत्क्षिप्त

१०७. र् तथा ल् ब्रज मे शब्द के आदि तथा मध्य मे आते हैं और आधुनिक ब्रज मे शब्दात मे भी मिलते हैं : *रिस्*, *पुर्* (नगर), *लौंरा* (लडका), *कल्*।

बुलदशहर के गूजर अन्त्य र का उच्चारण ड़ के सदृश करते हैं : *ब्याड़्* (बयार), *जोड़्* (ज़ोर), *माड़्* (मार)।

इस प्रवृत्ति के कुछ उदाहरण पूर्वीय प्रदेशो मे भी मिले हैं :

दरी : दड़ी (ए०)

नम्बर्दार् : लम्बड़्दार् (ब०)

इन ध्वनियो के महाप्राण रूप अर्थात् र्ह्, ल्ह् केवल आधुनिक ब्रज मे मिलते हैं और ये भी शब्द के आदि तथा मध्य मे : *ल्हेड़ो* (भीड), *सल्हा* (सलाह), *र्हैनो* (रहना), *कर्हानो* (कराहना)।

१०८ ड़् तथा ढ़् ब्रज मे शब्द के मध्य मे प्रयुक्त होते हैं, आधुनिक ब्रज मे ये शब्दान्त में भी मिलते हैं : *बड़ो* (बडा), *जड़्* (जड), *चढ़्नो* (चढना), *कोढ़्* (कोढ)।

बुलदशहर के गूजर ड़् को ड् के समान बोलते हैं : *बडी*, *लड्* (लडाई), *पहाड्*।

ड़् का र उच्चारण बुंदेली की विशेषता है।

१०९ र् के ल् मे परिवर्तन के कुछ उदाहरण पश्चिम तथा दक्षिण मे मिले हैं :

साऊकार् : साऊकाल् (म०)

रेजु : लेजु (रस्सी) (ग्वा० प०)

ल के स्थान पर र् का प्रयोग समस्त ब्रज प्रदेश मे प्रचुरता मे पाया जाता है :

निकलो : निकरो (फ० ब०)

बीर्बल् : बीर्बर् (म०)

तालो : तारो (ब०)

ल् के न् मे परिवर्त्तन के उदाहरण कभी कभी सारे ब्रज प्रदेश मे मिल जाते हैं :

चल्त् चल्त् : चन्त् चन्त् (चलते चलते) (मैं०)

लकड़ी : नकड़ी (लकडी) (ज० पू०)

११०. शब्द के मध्य मे प्रयुक्त र् की च् ज् त् द् न् या स् मे अनुरूपता बहुत अधिक देखी जाती है, विशेष रूप से पूर्वीय प्रदेश मे (§ १२६) :

मोर्चा : मोच्चा (फ०)

कर्जा : कज्जा (ब०)

कर्ती : कत्ती (आ०)

गर्दन् : गद्दन् (मैं०)

सेर्नी : सेन्नी (ब०)

पर्सिकै : पस्सिकै (फ० मैं०)

ग्रामीण बोली मे ड़् का र् में परिवर्त्तन प्रायः हो जाता है :

अड़ोसी पड़ोसी : अरोसी परोसी (धौ०)
थोड़ी : थोरी (फ० अ०)

संघर्षी

१११. प्राचीन ब्रज मे तीनों ऊष्म ध्वनियों—**श् ष्** तथा **स्**—का प्रयोग पाया जाता है, किन्तु प्राचीन हस्तलिखित पोथियों मे हम **श्** के स्थान पर **स्** बहुलता से लिखा हुआ पाते है। इससे यह प्रकट होता है कि **स् श्** का स्थान ग्रहण कर रहा था और **श्** का प्रयोग कदाचित् लिपि परंपरा के अनुरोध से ही होता था : ***सिर*** (बिहारी० १३८)। इसके अतिरिक्त यह अत्यन्त सदिग्ध है कि प्राचीन ब्रज मे **ष्** का वास्तविक उच्चारण किया जाता था। पोथियों मे यह कभी कभी **ख्** के रूप मे लिखा मिलता है जिससे यह धारणा होती है कि कम से कम कुछ स्थलो पर इसका उच्चारण **ख्** के सदृश होने लगा था। अन्य स्थलों पर यह **स्** के रूप मे लिखा गया है : ***बिसन पद*** (गोकुल ८-११)।

आधुनिक ब्रज मे केवल **स्** पाया जाता है : ***सचो, बिसेस्***। यह परिस्थिति हिंदी की अन्य समस्त बोलियो मे तथा बिहारी मे भी मिलती है।

पूर्वी प्रदेश मे **-स्-** की अनुगामी **त्** मे अनुरूपता के उदाहरण बहुधा देखे जाते हैं (§ १३७) :

बिस्तरा : बित्तरा (मै०)
बस्ती : बत्ती (ए०)

११२. प्राचीन ब्रज में दंत्योष्ठ्य **व्** कभी कभी लिखा हुआ तो मिलता है, किंतु लिपि के विचार से यह प्राय. **ब्** के रूप मे परिवर्तित कर दिया जाता था और कदाचित् **ब्** की भाँति ही इसका उच्चारण भी होता था। आधुनिक ब्रज मे साधारणतया **व्** नही व्यवहृत होता है। तथापि अलीगढ की बोली मे किसी स्पर्श ध्वनि के बाद आने वाले तथा शब्द के मध्य मे प्रयुक्त **व्** के उच्चारण के पश्चात् किंचित सघर्ष होता हुआ प्रतीत होता है : *ग्वाला, ग्वातें* (उससे)।

११३. **ह्** ब्रज मे शब्द के आदि तथा मध्य मे और आधुनिक ब्रज मे शब्दान्त मे भी मिलता है : ***हर्दी, दही, साह्***।

: अर्थात् विसर्ग का प्रयोग केवल प्राचीन ब्रज के कतिपय तत्सम शब्दों में ही देखा जाता है : ***अंतःकरन*** (गोकुल १४-१२)।

११४. ह-कार के लोप के उदाहरण बहुतायत से पाए जाते हैं। शब्द के मध्य तथा अन्त के **ह्** के संबंध मे यह प्रवृत्ति विशेष स्पष्टता से लक्षित होती है और समस्त ब्रज प्रदेश मे इसका प्राय· नियमित रूप से लोप कर दिया जाता है। ग्वालियर पश्चिम में इस परिवर्त्तन के उदाहरण अधिकता से नही मिलते हैं :

है : *ऐ* (क०)
टहल्नो : *टैल्नो* (म०)
हाँथी : *हाँती* (इ०)
तुम्हारो : *तुमारो* (ए०)
मुह् : *मूँ* (म० ब०)
हाथ् : *हात्* (आ० ज० पू० ब० पी०)
तरफ् : *तरप्* (फ़०)

कुछ उदाहरणो मे ह-कार केवल स्थानान्तरित हो जाता है और इस प्रकार वह शब्द के आदि की अथवा अपने पूर्व की किसी अल्पप्राण ध्वनि मे महाप्राणत्व ला देता है :

बहुत् : *भौत्* (म० क० ब० पी०)
मुह्र : *म्हौर्* (ज० पू०)
अगहैन् : *अघैन्* (ब०)
इकट्ठो : *इखट्ठो* (ब०)

विशेष—१ धौलपुर के एक उदाहरण मे शब्द के आदि का स्पर्श, परवर्ती ऊष्म ध्वनि के प्रभाव के कारण महाप्राणयुक्त हो गया है : **पूस्** (महीना) : **फूँस्**।

विशेष—२ इकार के लोप की प्रवृत्ति समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं मे मिलती है। पश्चिम तथा दक्षिण की भाषाओ का झुकाव इस प्रवृत्ति की ओर विशेष है।

अर्द्धस्वर

११५. अर्द्धस्वर *य्* शब्द के आदि तथा मध्य मे और *व़्* केवल शब्द के मध्य में आते है : ***याद्, फरिया*** (लहँगा), ***ज्वा़न्***।

पोथियों मे *व्* तथा *ब्* दोनों **'व'** द्वारा सूचित किए जाते थे। इन ध्वनियो से पार्थक्य प्रकट करने के कारण अर्द्धस्वर के उच्चारण को **'व़्'** के रूप मे लिखा जाता था।

व़् राजस्थानी बोलियो मे नियमित रूप से मिलता है।

जयपुर पूर्व की बोली मे **आ** के पहले अथवा बाद मे **-य्-** जोड देने की प्रवृत्ति पाई जाती है। कुछ उदाहरण अन्य प्रदेशो मे भी मिले है :

साम् : *स्याम्* (शाम) (ज० पू०)
करामात् : *कराय्मात्* (ज० पू०)
माने : *म्याने* (बदा०)
बास्सा : *बास्स्या, बास्साय* (क०)

शब्दांश और शब्द

११६. शब्दाश ब्रज में निम्नाकित हो सकते है :

(क) ह्रस्व स्वर से युक्त अथवा स[illegible] रूप मे प्रयुक्त दीर्घ स्वर : **आ, आए** (आकर), **एआ** (यह)।

काव्य मे प्रत्येक मूलस्वर, चाहे वह ह्रस्व हो अथवा दीर्घ, एक शब्दाश माना जाता है। इस प्रकार ह्रस्व से युक्त होने पर प्रत्येक मूल स्वर में दो शब्दांश माने जायँगे : ***गाउ*** (बिहारी २१) में दो शब्दाश है, एक नही।

(ख) किसी व्यजन से युक्त एक ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर : ***ईख्, उठ्*** ।

प्राचीन ब्रज में शब्द कभी भी व्यंजनान्त नहीं होते थे (§ ८९) क्योकि शब्द के अन्त का व्यंजन परवर्ती स्वर के संयोग से एक शब्दाश बनाता था : ***दूध*** (सूर० म० ४), ***पाक*** (गोकुल १-६)

(ग) कोई स्वरयुक्त व्यजन : ***ति-हा-ई, सा-थी, पक्-को***

(घ) किसी संयुक्त व्यंजन के प्रथम अक्षर से युक्त एक ह्रस्व स्वर : ***इत्-तो, अर्-कस्***

काव्य में किसी शब्द मे प्रयुक्त यह ह्रस्व स्वर दीर्घ के सदृश माना जाता है : ***समरत्थ*** (केशव ५-२५)। ***त्थ्*** के पहले का ह्रस्व ***अ, आ*** का सा महत्त्व रखता है।

(ङ) किसी व्यजन तथा स्वर से युक्त कोई अकेला व्यंजन अथवा किसी सयुक्त व्यंजन का पहला अक्षर : ***चल्, घर्, कित्-तो बन्-डी*** । प्राचीन ब्रज मे संयुक्त व्यंजन के पहले का ह्रस्व स्वर दीर्घ माना जाता था। इसी से शब्दाश व्यजन, स्वर तथा दो व्यंजनो के संयोग से बना हुआ माना जाता है और परवर्त्ती स्वर स्वतत्र शब्दाश के रूप में गृहीत होता है।

११७. संयुक्त स्वर ***ऐ औ*** तथा मूलस्वर के युग्म के सबंध मे यह देखा जाता है कि मूलस्वर तथा संयुक्त स्वर के बीच मे प्राय. एक अर्द्धस्वर रहता है : ***अइआ अइया; हउआ हउवा; आयै*** (गोकुल १–२)

११८. ब्रज मे शब्द व्यजन अथवा स्वर से प्रारभ हो सकता है। किसी स्वर तथा शब्द के आदि में प्रयुक्त हो सकने वाले व्यजन से शब्द आरभ हो सकता है।

शब्दारंभ मे एक से अधिक व्यजन नही आ सकता है। फलत. सस्कृत अथवा विदेशी भाषाओं के शब्द के आदि मे प्रयुक्त होने वाले सयुक्त व्यजनो का परिहार या तो उनके पहले अथवा उनके बीच मे एक स्वर जोड कर कर लिया जाता है : ***इस्तुती, किर्किट्*** ।

११९ शब्द के मध्य मे दो से अधिक व्यजन नही आ सकते है और इन्हे निम्नाकित भाँति का होना चाहिए :

(क) स्ववर्गीय व्यंजन : ***कुत्ता, बद्ध, अस्सी, अम्मा*** ।

(ख) अनुनासिक तथा एक व्यंजन : ***अङ्कुर, लम्प्, पन्डित्, अन्जन्, कन्कइया*** । परवर्ती व्यंजन अनुनासिक के वर्ग का ही होना चाहिए यह आवश्यक नही है।

(ग) ***र*** तथा एक व्यजन :

बुर्का, मिर्चैं, अर्सी (अलसी)

(घ) ***ल्*** तथा एक व्यजन :

कलसा, कल्गी, बिल्टी ।

(ङ) स् तथा एक व्यंजन :

अस्तर्, कस्कुट्, विस्राम् ।

(च) कभी कभी दो स्पर्शों का युग्म किन्तु दोनों स्पर्शों को अनिवार्य रूप से या तो घोष अथवा अघोष होना चाहिए : *उक्तात्, बद्जात्* ।

१२०. अतएव विदेशी शब्दों मे प्रयुक्त अन्य व्यंजनों के युग्मों को किसी स्वर को बीच मे डाल कर तोड दिया जाता है :

क़दर (क़द्र), *हुकुम्* (हुक्म), *टिरेन्* (ट्रेन)

दो से अधिक व्यजनो की समष्टि एक साथ नही आ सकती, अतएव सदा स्वर का समावेश कर के ऐसी समष्टियों से बचा जाता है :

समझ्नो समझ्ाउनो ।

१२१. आधुनिक ब्रज मे शब्द का अन्त या तो स्वर मे अथवा व्यंजन मे होता है (§ १०१)। व्यंजनों के पश्चात् अन्त्य ह्रस्व स्वरों मे यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे अन्त मे फुसफुसाहट वाले स्वरो के रूप मे परिवर्त्तित हो जाते हैं (§ ९०)। अन्य स्थलों में उनके पहले कोई दीर्घ स्वर रहता है। शब्दान्त में केवल एक व्यंजन पाया जाता है। सयुक्त व्यजन के बाद प्रायः स्वर रहता है (§ ८९)। प्राचीन ब्रज मे प्रत्येक शब्द के अन्त मे कोई स्वर होता था (§ १०१)।

१२२. ब्रज मे एक शब्द एक से लेकर चार शब्दाशो के योग से बन सकता है, किन्तु दो शब्दाशो से बने शब्द प्रचुरता से पाये जाते हैं।

शब्दसंपर्क में अनुरूपता

१२३. बोलचाल की ब्रज मे शब्दसपर्क मे अनुरूपता की निम्नांकित स्थितियाँ देखी गई है :

किसी परवर्त्ती घोष स्पर्श के रहने पर शब्दान्त मे प्रयुक्त अघोष स्पर्श की अनुरूपता उसके वर्ग के घोष स्पर्श मे होती है :

रुक् गई : रुग्गई (ए० ब० पी०)

बाप् गओ : बाब् गओ (बाप गया)

किसी परवर्त्ती अघोष स्पर्श के रहने पर शब्दान्त मे प्रयुक्त घोष स्पर्श की अनुरुपता उसके वर्ग के अघोष स्पर्श मे होती है :

साग् करौ : साक् करौ

कब् खाओ : कप् खाओ

१२४. शब्दात मे प्रयुक्त स्पर्श की अनुरूपता उसके वर्ग के अनुनासिक मे होती है, यदि वह अनुनासिक परवर्त्ती शब्द के आदि मे आता है :

सब् मत् लेओ : सम् मत् लेओ

बात् नाएँ करौ : बान् नाएँ करौ

१२५. अन्त्य त् या थ् की अनुरूपता च्, ज्, ल् अथवा स् में होती है:

काँपत् चलो : काँपच् चलो
कण्डा पथ् जाएँ : कण्डा पज् जएँ
काँपत् जाए : काँपज् जाए
मत् लेओ : मल् लेओ
भौत् साथी : भौस् साथी
हाथ से : हास् से

अन्त्य च्, छ्, ज् की अनुरूपता द् अथवा ड् मे होती है:

सच् डर् लागत् है : सड् डर् लागत् है
कुछ् डारौ : कुड् डारौ
कुछ देओ : कुद् देओ
नाज् डारौ : नाड् डारौ
आज दर्बज्जें पै . आद् दर्बज्जे पै

अन्त्य ठ् की अनुरूपता ज् मे होती है:

बैठ् जाऊं : बैज् जाऊं

१२६. शब्दान्त में आने पर र् की अनुरूपता बहुधा च्, ज्, ट्, ड्, न्, ल् या स् मे होती है यदि ये परवर्त्ती शब्द के आदि मे आते हैं (§ १०९):

मार् चलौ : माच् चलौ (ग्वा० प०)
मर् जाउङ्गी : मज् जाउङ्गी (म०)
निकर् ठारे : निकट् ठारे (ए०)
मार् डारी : माड् डारी (धौ० ग्वा० प० ए०)
जोर् ते : जोत् ते (अ०)
घर् दई : घद् दई (इ०)
ठाकुर् ने : ठाकुन्ने (आ०)
टेर् लेओ : टेल् लेओ (धौ०)
और सूज्जु : औस् सूज्जु (अ०)

विशेष—१. बदायूँ के एक उदाहरण मे ज् के पूर्व प्रयुक्त र् न् मे परिवर्त्तित होता है:

समुन्दर् जी : समुन्दन्जी

२. एटा के एक उदाहरण मे र् ल् में परिवर्त्तित होता है यद्यपि उसके बाद ही यह ध्वनि नही है:

कराए लिऊं : कलाए लिऊं

४

३ बदायूँ के एक उदाहरण में न् के पूर्व प्रयुक्त र् ल् में बदल जाता है :

फिर् निकारे : फिल् निकारे

१२७ शब्दान्त के ड़् की अनुरूपता परवर्ती शब्द के आदि के र् अथवा द् मे होती है :

पड़् रई : पर् रई (आ०)

छोड़् दे : छोद् दे (बदा०)

१२८ शब्दान्त के स् की निम्नांकित मे अनुरूपता की प्रवृत्ति देखी जाती है च् ज् त् द् ट् ड् (§१११) :

साँस् चल्त है : साँच् चल्त है

पास् जाए कै : पाज् जाए कै

बाके पास् तर्बूज : बाके पात् तर्बूज्

कस् देओ : कद् देओ

दस् डङ्गर् : दड् डङ्गर्

रास् टूट् गई : राट् टूट् गई

फ़ारसी शब्द

१२९. प्राचीन ब्रज के लेखक फारसी शब्दो का प्रयोग स्वतत्रता से करते थे। आधुनिक ब्रज मे भी फ़ारसी शब्द प्रचुर है। ऐसे उद्धृत शब्दो मे प्राप्त ध्वनि-परिवर्त्तनो के सिद्धान्त मे प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे प्रयुक्त शब्दो के रूपो मे कोई भेद नही है। आधुनिक ब्रज मे व्यवहृत होने पर फारसी शब्दो मे जो ध्वनि परिवर्त्तन कर लिए जाते है उनमे से कुछ विशेष परिवर्त्तनो का निर्देश नीचे किया जाता है।[1]

अरबी तथा तुर्की के भी कुछ शब्द ब्रज मे व्यवहृत होते है। ये शब्द फ़ारसी से हो कर आए है, इसी से इनमे प्राप्त परिवर्त्तन फ़ारसी से भिन्न नही है। साधारणतया फारसी **इ उ ई ए ऊ ओ अइ अउ** मे कोई परिवर्त्तन नही होता है और ये **इ उ ई ए ऊ ओ ऐ औ** के रूप मे पाए जाते है : *किस्मिस्* (*किश्मिश्*) *जुलुम्* (*जुल्म्*) *काजी* (*क़ाज़ी*) *सेर्* (*शेर्*), *खूब्* (*ख़ूब्*) *जोर* (*ज़ोर्*) *खैरात्* (*ख़इरात्*) *फौज* (*फ़उज्*)।

---

१. फ़ारसी अरबी लिपि के कुछ विशेष अक्षरो की भिन्नता सूचित करने के लिए निम्नलिखित विशेष चिह्नो का प्रयोग किया गया है :

१. ه = ह् , ح = ह़् ;

२. ت = त् , ط = त़् ;

३. س = स् , ش = श , ص = स़् ;

४. ز = ज़् , ذ = ज़् , ض = ज़् ; ظ = ज़्,

कुछ स्थलों पर शब्द के आदि के शब्दाशों मे प्रयुक्त होने पर अ इ में तथा कभी कभी उ में परिवर्त्तित होता है : *निमाज़्* (*नमाज़्*), *सिर्दार* (*सर्दार्*), *जिहाज्* (*जहाज़्*), *बुलन्द्* (*बलन्द्*)।

शब्द के आदि मे अ आ अथवा ओ और मध्य मे ऐ हो जाता है यदि परवर्त्ती ह् का लोप हो जाता है · *सैनक्* (*सह्नक्*) *पैल्वान्* (*पह्लवान्*) *दमामो* (*दमामह्*) *रिसालो* (*रिसालह्*), *खलीफा* (*ख़लीफ़ह्*), *तकिया* (*तकियह्*) ।

ꜥ के साथ होने पर अ साधारणतया ब्रज मे आ हो जाता है : *आसा* (*अꜥसा*) *आमाल्* (*अꜥमाल्*) *लाल्* (*लꜥल्*), *नफा* (*नफ़्ꜥ*) ।

कुछ स्थलो पर मध्य इ अ हो जाती है : *इस्तम्रारी* (*इस्तिम्रारी*) ।

ह् के साथ होने पर शब्द के मध्य की इ प्रायः ए हो जाती है : *मेतर्* (*मिह्तर्*) *चेरा* (*चिह्रह्*) ।

फारसी ए ओ की इ उ मे परिवर्त्तित होने की प्रवृत्ति फारसी मे ही पाई जाती है। ब्रज में ये नियमित रूप से इ उ हो जाते हैं : *जाहिर्* (*ज़ाहिर्*), *साहिब्* (*साहिब्*), *उस्ताद्* (*उस्ताद्*) ।

१३० शब्द के आदि तथा मध्य का फारसी ह (ह् ह) ब्रज में उसी रूप में रहता है *हवा* (*हवा*), *हामी* (*हामी*), *जाहिर्* (*ज़ाहिर्*), *रहिम्* (*रह्म्*)।

किन्तु अन्त्य ह् का लोप हो जाता है : *सही* (*सहीह्*)। अन्त्य ह् के पूर्व अ के परिवर्त्तन के लिए देखिए § १२९।

आधुनिक ब्रज मे ह् के लोप कर देने की सामान्य प्रवृत्ति उद्धृत शब्दों में भी पाई जाती है (§ ११४)।

१३१ फारसी क़् ख़् ग़् तथा फ़् प्रायः क्रमशः क् ख् ग् फ् में परिवर्त्तित होते हैं : *कैद्* (*क़इद्*), *खत्* (*ख़त्*), *गुस्सा* (*ग़ुस्सह्*), *अफसोस्* (*अफ़्सोस्*)।

शब्द के मध्य का क़् कभी कभी ग् हो जाता है : *तगादो* (*तक़ाज़ह्*) ।

शब्द के मध्य का ख़् कभी कभी क् मे परिवर्त्तित होता है : *बकसीस्* (*बख़्शीश्*) ।

ग़् के क् होने के कुछ उदाहरण मिलते हैं : *सुराक्* (*सुराग़्*)।

१३२. फारसी श् ज् (ज़् ज़् ज़् ज़्) तथा व् या व् क्रमशः स् ज् ब् होते हैं : *सेर्* (*शेर्*), *जिम्मा* (*ज़िम्मह्*) *जमीन्*, (*ज़मीन्*), *जमानत्* (*ज़मानत्*), *जाहिर्* (*ज़ाहिर्*), *मेवा* (*मीवह्*) ।

कुछ स्थलो पर ज् द् हो जाता है : *कागद्* (*काग़ज़्*) ।

१३३. फ़ारसी क् ग् च् ज् त् (त् त्) द् प् ब् न् म् र् ल् स् (स् स् श्) य् मे साधारणतया कोई परिवर्त्तन नही होता है :

किनारो	(*किनारह्*)
लगाम्	(*लगाम्*)
चर्बी	(*चर्बी*)
जान्	(*जान्*)
तीर्	(*तीर्*)
तूती	(*तूती*)
बन्दूक्	(*बन्दूक्*)
नास्पाती	(*नाश्पाती*)
बुल्बुल्	(*बुल्बुल्*)
दुनिया	(*दुन्या*)
कमान्	(*कमान्*)
अनार्	(*अनार्*)
लास्	(*लाश्*)
सजा	(*सज़ा*)
सबाब्	(*सवाब्*)
सबर्	(*सब्र्*)
याद्	(*याद्*)

अंग्रेज़ी शब्द

१३४. प्राचीन ब्रज मे यूरोपीय भाषाओ के शब्द बहुत कम पाए जाते है। अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओ के समान ही आधुनिक ब्रज मे अग्रेज़ी के उद्धृत शब्दो का प्रयोग स्वतत्रता से किया जाता है। पुर्तगाली, फ़्रासीसी तथा जर्मन आदि के शब्द बहुत कम मिलते है, अतः यहाँ उन पर विचार नही किया गया है।

अँग्रेज़ी से उद्धृत शब्दों मे किए गए ध्वनिसबधी परिवर्तनों की सामान्य प्रवृत्ति को निम्नाकित रीति से सूत्रबद्ध किया जा सकता है · अग्रेज़ी उच्चारण प्रणाली के स्थान पर ब्रज की उच्चारण प्रणाली का प्रयोग किया जाता है जिसका फल यह होता है कि अग्रेज़ी की अपरिचित ध्वनियों के लिए उनकी निकटतम ब्रज की ध्वनियाँ व्यवहृत होती है किन्तु कुछ स्थलों पर असाधारण ध्वनियो अथवा ध्वनि समष्टियो को उच्चारण की सुविधा के लिए परिवर्त्तित कर लिया जाता है।

१३५. अँग्रेज़ी मूलस्वर **ई, इ, उ, ऊ** तथा **अ** ब्रज के स्वरो से बहुत अधिक भिन्न नही है और उद्धृत शब्दो मे इन्हे प्राय. यथावत् रहने दिया जाता है: ***टीम्*** (team), ***इँगलिस्*** (English), ***पास्*** (pass), ***फुटबाल्*** (football), ***बूट्*** (boot), ***गन्*** (gun)।

अवशिष्ट अँग्रेज़ी मूलस्वर ए, ऍ, **ऑ**, **ऑ॑**, ए॑, **अ॑** साधारणतया आधुनिक ब्रज मे नही व्यवहृत होते है। फलत ये ब्रज के निकटतम स्वर मे परिवर्त्तित कर लिए जाते है।

ए इ में परिवर्तित होता है : **इन्‌जन्** (engine), **चिक्** (cheque), **बिञ्च** (bench)।

ऍ साधारणतया **ऐ** हो जाता है : **ऐक्‌टर्** (actor), **गैस्** (gas),

किंतु कुछ उदाहरणों मे ऍ के स्थान पर **अ** होता है : **कम्पू** (camp.) **कमूरा** (camera), **लम्प्** (lamp)।

ऑ तथा **ऑ॑** के स्थान पर प्राय: **आ** होता है : **आफिस्** (office), **कापी** (copy), **ला** (law), **लान्** (lawn)।

कुछ स्थलों पर ये **अ** या **ओ** के रूप मे भी मिलते है : **बम्** (bomb), **अगस्त** (August), **बोर्ड** (Board)।

ऍ तथा **अ॑** साधारणतया **अ** मे परिवर्तित किए जाते है : **नर्स्** (nurse), **कर्नल्** (colonel), **बटर्** (butter), **फिलास्फर्** (philosopher)।

अ॑ कभी कभी **ओ** अथवा **आ** भी होता है : **फोटोग्राफ्** (photograph), **डिरामा** (drama)।

१३६. अंग्रेजी सयुक्त स्वरो मे निम्नांकित परिवर्त्तन होते है :

एइ : ए , **जेल्** (jail), **लेट्** (late), **रेल्** (railway);

ओउ : **ओ** , **कोट्** (coat), **पोस्‌काट्** (post card), **बोट्** (vote);

ओउ अ तथा **उ** मे बहुत कम परिवर्त्तित होते है :

रपट् (report), **पुल्‌टिस्** (poultice).

अइ ऐ, कभी कभी ए, **टैम्** या **टेम्** (time), **हाप् सैड्** (half side), **रैट्** (right);

अउ **औ**, कभी कभी **आउ**, **टौन् हाल्** या **टाउन् हाल्** (town hall), **कान्जी हौज** (-house), **औट्** (out);

ऑइ **आइ**, कभी कभी **ऐ**, **लाइल्** (loyal), **राइल्** (royal) **पैट्‌मैन्** (pointman);

इअ॑ **इअ**, कभी कभी ए, **डिअर्** (dear), **बिअर्** (bear);

कुछ शब्दो मे **इअ॑** ए मे परिवर्त्तित होता है, **एरन्** (ear-ring), **थेटर्** (theatre);

ऍअ॑ ए, कभी कभी ऐ, **डेरी** (dairy), **चेर्‌मैन्** (chairman), **बैरा** (bearer)

ऑअ॑ तथा **उअ॑** का अंग्रेजी से उद्धृत शब्दो मे प्राय अभाव देखा जाता है। व्यवहृत होने पर ये सयुक्त स्वर क्रमश. **ओ** तथा **उअ** हो जायँगे **फोर्** (four), **पुअर्** (poor), **म्योर्** (Muir)।

आदि स्वरागम तथा मध्यस्वरागम के उदाहरण प्रचुरता से पाए जाते है · **इस्कूल्** (school), **बिराँडी** (brandy)। स्वरलोप बहुत कम होता है।

१३७. ब्रज मे अप्रयुक्त निम्नलिखित अँग्रेजी व्यंजन परिवर्त्तित कर लिए जाते है।

अँग्रेज़ी वर्त्स्य ट् ड् मूर्द्धन्य ट् ड् अथवा दन्त्य त् द् मे परिवर्त्तित होते है : रपट् (report), बोतल् (bottle), डिकस् (desk), दिसम्बर् (December)।

विशेष—वर्त्स्य ट् ड् का त् द् मे परिवर्त्तन प्रायः उन्ही शब्दों मे होता है जो उर्दू के माध्यम से ब्रज में आए है।

अँग्रेज़ी स्पर्श-संघर्षी च् ज्, च् ज् हो जाते है : चेन् (chain), चर्च (church), जून (June), जज् (judge)।

अँग्रेज़ी अस्पष्ट ल साधारण स्पष्ट ल् के समान प्रयुक्त होता है : बोतल् (bottle), टेबिल् (table)।

अँग्रेज़ी संघर्षी फ़्, व्, ज़्, श् नियमित रूप से क्रमशः फ्, ब्, ज्, स् मे परिवर्त्तित होते है : फुटबाल् (football), फेल् (fail), बोट् (vote), बार्निस् (varnish), जब्रा (zebra), रिजर्ब (reserve), सिसन् (session), इसपेसल् (special)।

झ़ उद्धृत शब्दो मे नही मिलता है। व्यवहृत होने पर ज़् के समान यह भी ज् मे परिवर्त्तित कर लिया जायगा।

अँग्रेज़ी संघर्षी थ् दन्त्य स्पर्श थ् हो जाता है : थरमामेटर् (thermometre) थर्ड् (third), किंतु कुछ शब्दो मे थ् ट् या ठ् मे परिवर्त्तित होता है : ठेठर् (theatre), लङ्कलाट् (long-cloth)।

द़ उद्धृत शब्दो मे नही मिलता है। प्रयुक्त होने पर यह द् हो जायगा।

अंग्रेज़ी अर्द्धस्वर व् ब् मे परिवर्त्तित होता है : बास्कट् (waistcoat), रेलवे (railway)।

१३८ अवशिष्ट अँग्रेज़ी व्यजन प्, ब्, क्, ग्, म्, न्, ङ्, ल्, र्, स्, ह् तथा ज् ब्रज के व्यजनों के समान ही है, अतएव इनमे साधारणतया कोई परिवर्त्तन नही होता है : पोस्काट् (postcard), बङ्क् (bank), कम्प् (camp), गारड् (guard), मनीजर् (manager), नकटाई (neck-tie), बैरङ् (bearing), लम्प् (lamp), रपट् (report), मास्टर् (master), हैट् (hat), यार्ड (yard)।

१३९ अनुरूपता के उदाहरण कलट्टर् (collector), विपर्यय के डिकस् (desk), व्यजनलोप के बास्कट् (waist-coat) तथा व्यजनागम के उदाहरण मोटर् (motor) आदि प्रचुरता से मिलते है।

कुछ स्थलो पर स्ववर्गीय ध्वनियो मे घोष तथा अघोष ध्वनियो का पारस्परिक परिवर्त्तन देखा जाता है डिगरी (decree), लाट् (lord)।

न् के ल् मे परिवर्त्तित होने के उदाहरण भी मिलते है : लम्बर (number), लमलेट् (lemonade)।

अँग्रेज़ी मे जहाँ र् का लोप भी हो जाता है, उद्धृत शब्दों मे उसका उच्चारण साधारणतया किया जाता है : कालर् (collar), पार्टी (party)।

संज्ञा

लिंग

१४०. प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे प्रत्यक सज्ञा या तो पुल्लिग होती है अथवा स्त्रीलिग। प्राणहीन वस्तुओं की द्योतक सज्ञाएँ भी या तो पुल्लिग अथवा स्त्रीलिग होती है : ***माट*** पु० (सूर० म० ५), ***चोटी*** स्त्री० (लल्लू० २-१७)।

१४१ विदेशी शब्दो की लिंगहीन सज्ञाएँ अनिवार्य रूप से इन्ही दो लिगों मे से किसी एक के अन्तर्गत रख ली जाती है। ***जिहाज*** पु० (गोकुल० १५-७), ***फते*** स्त्री० (भूषण० २०२)। विदेशी शब्दो के लिग निर्धारण मे कोई निश्चित सिद्धान्त नही होता है। साधारणतया विदेशी शब्द से निकटतम अर्थ देने वाले घरेलू शब्द का लिग नवागत शब्द के लिग-निर्धारण मे अपना प्रभाव डालता है : ***रेल्*** (अँग्रे० railway) स्त्रीलिग है क्योकि ***गाड़ी*** स्त्रीलिग है। कुछ स्थलों पर किसी लिग विशेष मे किन्ही परिचित रूपो मे अन्त होने वाले शब्दो से विदेशी शब्दों के अन्त के रूपो का आकस्मिक ध्वन्यात्मक साम्य होने के कारण उद्धृत शब्द को भी उसी लिंग मे रख लिया जाता है कदाचित् इ-अन्त होने के कारण ही ***काफी*** (अँग्रे० coffee) स्त्रीलिग है, अन्यथा अनेक पेय पदार्थो के द्योतक शब्द पुल्लिग है। तथापि ऐसे विदेशी शब्द बडी संख्या मे है जिनके लिग-निर्धारण का कोई तर्कपूर्ण कारण बता सकना कठिन है। इसके अतिरिक्त किसी एक प्रादेशिक बोली के विभिन्न भागों मे ही कभी कभी किसी शब्द विशेष के लिग के सबध मे किचित् विरोध देखा जाता है। ***टेसन्*** (station) प्रायः पुल्लिग माना जाता है, किन्तु धुर पूर्व मे यह कभी कभी स्त्रीलिग की भाँति भी व्यवहृत होता है।

१४२ छोटे जानवरो, पक्षियो अथवा पतिगों के नाम या तो पुल्लिग अथवा केवल स्त्रीलिग होते है। इनके सबध मे लिग-भावना कभी भी स्पष्टता से नही प्रतीत होती है : ***कछुआ, मूसो*** पुल्लिग है, ***मछरी*** स्त्रीलिग है।

प्राणियों की द्योतक पुल्लिग सज्ञाओ मे प्रत्यय लगा कर सहगामी स्त्रीलिग रूप बनाए जाते है :

(क) प्राचीन ब्रज मे अकारान्त सज्ञाओ मे ***–अ*** के स्थान पर ***–इनि*** अथवा ***–इनी*** लगाया जाता था ***ग्वाल, ग्वालिनि*** अथवा ***ग्वालिनी*** (सूर० म० ३, १३ तथा पृष्ठ ३३७-१)।

(ख) आधुनिक ब्रज मे सहगामी व्यजनान्त सज्ञाओ मे ***–इन्*** अथवा ***–इनी*** लगता है . ***गरीब् गरीबिन्*** अथवा ***गरीबिनी***।

(ग) आकारान्त सज्ञाओ मे ***–आ*** के स्थान पर ***–ई*** मिलती है ***सखा : सखी*** (सूर० म० १-२), ***लरिका : लरिकी*** (सूर० म० १५)।

(घ) ईकारान्त सज्ञाओ मे ***–ई*** के स्थान पर ***–इनि*** (आधुनिक ब्रज मे ***–इन् या –इनी***) पाई जाती है ***माली: मालिन्, हाथी : हथिनी***।

(ङ) ओकारान्त अथवा औकारान्त सज्ञाओ मे ***–ओ*** अथवा ***–औ*** के स्थान पर

–ई लगती है। विशेषणों में इस प्रकार के रूप बहुत अधिक देखे जाते हैं (§ १५५)। अन्य स्वरों और व्यंजनों मे अन्त होने वाले विशेषणों के रूपो मे लिग संबंधी विकार नही होता है : ***भारी, पाल्तू, गोल्।***

(च) उकारान्त अथवा ऊकारान्त सज्ञाओ मे अन्त्य स्वर यदि दीर्घ हो तो उसे ह्रस्व कर के ***–नि*** जोड देते है : ***साधू : साधुनी***

विशेष—कुछ प्राणहीन वस्तुओ की द्योतक पुल्लिग संज्ञाओ मे प्रत्यय लगा कर स्त्रीलिंग रूप बनाए जाते हैं। ऐसे स्थलो पर स्त्रीलिग रूप अनिवार्य रूप से किसी छोटी वस्तु का भाव प्रकट करता है।

१४३. संज्ञा के लिंग का बोध निम्नांकित रीति से होता है :

(क) विशेषण के रूप से : ***बड़ो माट*** (सूर० म० ५), ***साँकरी खोरि*** (सूर० म० १४)।

(ख) क्रियाओं के कुछ कृदन्ती रूपो मे पुल्लिग अथवा स्त्रीलिंग रूप से, जिसे भी वह ग्रहण करता है : ***पाक् सिद्ध भयो*** पु० (गोकुल० २-१२), ***नवधा भक्ति सिद्ध भई*** स्त्री० (गोकुल० ४-१२)।

(ग) प्राणियो की द्योतक संज्ञाओ के संबंध मे, प्राणियों के लिग के अनुरूप ही संज्ञाओं का लिंग निर्धारित होता है : ***राजा*** पु०, ***गाय*** स्त्री०।

वचन

१४४. प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे दो वचन होते है—एकवचन और बहुवचन। बहुवचन के चिह्न कारक-चिह्नो से पृथक् नही किए जा सकते अतएव इनका विवेचन उन्ही के साथ किया गया है (§ १४८, १५०)।

१४५. प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे भी आदरार्थ मे विशेषण या क्रिया के बहुवचन के रूप एकवचन की सज्ञा के साथ तथा सर्वनाम के एकवचन के रूपो के स्थान पर बहुवचन के रूप स्वतत्रतापूर्वक व्यवहृत होते है। आधुनिक ब्रज मे, विशेष रूप से पूर्वी प्रदेश मे, यह प्रवृत्ति बल पा रही है और एकवचन के रूपो का प्रयोग बच्चो अथवा समाज के निम्न स्तर के लोगो तक ही सीमित रहता है : ***तू कहाँ जात् है*** या ***परसादी कहाँ जात् है*** का प्रयोग किसी बडी अवस्था वाले पुरुष अथवा समाज के किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के सबंध मे नहीं किया जा सकता है। इनके लिए ***तुम् कहाँ जात् हौ*** या ***परसादी कहाँ जात् हैं*** साधारण प्रयोग हो गए है। तथापि पश्चिम और दक्षिण मे एकवचन के रूपों का प्रचार अधिक होता है। पजाबी की भाँति खडीबोली मे बडी अवस्था के व्यक्तियो अथवा प्रतिष्ठित पुरुषो के लिए भी एकवचन के रूपो का प्रयोग पूर्णतया व्याकरण के अनुशासन के अनुसार किया जाना है।

रूपरचना

१४६. प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज में सज्ञा के दो रूप होते हैं—मूलरूप तथा विकृतरूप। कुछ संज्ञाओं मे मूलरूप के बहुवचन का रूप एकवचन के रूप से भिन्न होता है। साथ ही कुछ अन्य संज्ञाओं में विकृतरूप एकवचन में भिन्न रूप होता है। तथापि

अधिकांश स्थलों पर मूलरूप तथा विकृत रूप बहुवचन, केवल ये ही दो रूप होते है।

१४७ मूलरूप एकवचन : आधुनिक ब्रज मे सज्ञा का यह रूप स्वरान्त अथवा व्यंजनान्त होता है : **चेला, साँप्**। शब्द के अन्त मे प्रयुक्त हो सकने वाले कोई भी स्वर तथा व्यंजन (§ १०१) संज्ञाओ के अन्त्य स्वर तथा व्यंजन हो सकते है। कभी कभी व्यंजनान्त शब्दों का उच्चारण इस प्रकार किया जाता है कि स्त्रीलिंग सज्ञाओं के अन्त में **-अ** या **-इ** और पुल्लिग मे **-उ** जोड दिया जाता है . **छप्पर, घरु , आगि**। अवधी मे इस प्रकार का अन्त्य **-अ** उदासीनस्वर तथा **-इ -उ-** फुसफुसाहट वाले स्वर (§८९, ९१) सिद्ध कर दिए गए है। ब्रज क्षेत्र मे इन स्वरो का उच्चारण उसके पूर्वी पडोसी बोली के उच्चारण से भिन्न नही प्रतीत होता है। आधुनिक ब्रज के व्यंजनान्त मूलशब्द अधिकांश मे प्राचीन अकारान्त संज्ञाओं से विकसित हुए हैं। आधुनिक प्रवृत्ति यह है कि यदि अन्त्य **-अ** के पहले कोई संयुक्त व्यंजन (§ ८९) नही है तो उसका लोप कर दिया जाता है। इस प्रवृत्ति के कारण ही आधुनिक बोली मे बहुत से व्यजनान्त मूलशब्द पाए जाते है।

प्राचीन ब्रज में संज्ञाएँ केवल स्वरो मे अन्त होती है और वे निम्नाकित हैं—

-अ *भीर* (नन्द० १-११४),
-आ *बगुला* (लल्लू० ६-७),
-इ *सौति* (मति० १२),
-ई *झोपरी* (नरो० ८८),
-उ *बेनु* (हित० १५),
-ऊ *बीछ्रू* (भूषण० ९९),
-ओ *तिनको* (सूर० म० ७),
-औ *माथौ* (गोकुल० २१-१७)।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है रत्नाकर द्वारा संपादित बिहारी के संस्करण मे अकारान्त संज्ञाओं को उकारान्त कर दिया गया है · *पापु* (बिहारी० २६६)। यह प्रवृत्ति कभी कभी अन्य लेखको मे भी देखी जाती है।

खडीबोली हिन्दी की आकारान्त संज्ञाओं के स्थान पर (विशेषणों, संबंधवाचक सर्वनामों और परसर्गों, क्रियार्थक सज्ञाओं और भूतकालिक कृदन्तो की भाँति ही) ओकारान्त सज्ञाएँ ब्रज की एक प्रमुख विशेषता है। आधुनिक भाषाओ मे हिन्दी की बुँदेली बोली तथा राजस्थानी, गुजराती और पहाडी भाषाओ तक इस प्रवृत्ति का प्रसार पाया जाता है। आधुनिक ब्रज में **ऍ** और **ऑ** अन्त्य वाले मूलशब्द उन्ही प्रदेशों तक सीमित है जहाँ पर **ए ऐ** अथवा **ओ औ** के स्थान पर इस उच्चारण का चलन है (§ ९३)। प्राचीन ब्रज मे **-औ** अन्त्य वाला रूप बहुत कर के साधारणतया प्रयुक्त **-ओ** अन्त्य वाले रूप के स्थान पर मिलता है। थोडे से शुद्ध **-ओ** अन्त्य वाले रूप भी है : **जो** (पद्मा० १२)।

१४८ मूलरूप बहुवचन : **ओ**, या **-औ** अंत्य वाली संज्ञाओं को छोड कर संज्ञा के शुद्ध तथा अविकारी मूलशब्द का प्रयोग इस कारक के लिए भी होता है। **-ओ** या **-औ** अंत्य

की सज्ञाओं मे इन ध्वनियों के स्थान पर **–ए** हो जाता है : ***जनो : जने, काँटे*** (गोकुल० ७२-१८) ।

आधुनिक ब्रज मे विकृत रूप बहुवचन मे सज्ञाओ के अन्त्य **-आ** तथा **-ई** कभी कभी अनुनासिक हो जाते है · ***पिढ़िया : पिढ़ियाँ, रोटी : रोटीं, अँखियाँ*** (रस० १३)।

ऊ अन्त्य वाली स्त्रीलिग सज्ञाओ मे अन्त्य स्वर को ह्रस्व करने के पश्चात् **-ऐं** जोड़ा जाता है। इस रूप का प्रयोग भी यदा कदा होता है : ***बहू : बहुऐं।***

पूर्वी प्रदेश मे व्यंजनान्त स्त्रीलिंग सज्ञाओ मे **-ऐं** जोडा जाता है : ***ईंट् ईंटैं।*** इसी प्रकार प्राचीन ब्रज मे **–अ** अन्त्य वाली स्त्रीलिग सज्ञाओ मे **–ऐं** अन्त्य वाले रूपो का प्रयोग अधिकता से होता है ***लटैं*** (तुलसी० क० १-५)।

१४९ विकृत रूप एकवचन · **–ओ** या **–औ** अंत्य वाली पुल्लिग संज्ञाओ (तथा विशेषणो, सबधवाचक सर्वनामो और परसर्गों, क्रियार्थक संज्ञाओ और भूतकालिक कृदन्तो) को छोड कर विकृत रूप एकवचन बनाने मे सज्ञा के मूलशब्द मे कोई प्रत्यय नही लगाया जाता है। **–ओ** या **–औ** अन्त्यवाली सज्ञाओ मे इनके स्थान पर **–ए** कर दिया जाता है जैसा कि मूलरूप बहुवचन मे होता है ***जनो : जने, बारे ते*** (सूर० म० १५)।

१५० विकृत रूप बहुवचन . आधुनिक ब्रज के संपूर्ण क्षेत्र मे व्यंजनान्त संज्ञाओ मे **–अन्** जोड कर विकृत रूप बहुवचन बनाया जाता है ***आम् : आमन् ईंट् : ईंटन्;*** केवल अलीगढ, एटा, तथा बदायूं मे **–अनु** जोडा जाता है (§ ९१)। **–आ-, –ई, –ऊ** अंत्य वाली सज्ञाओ मे पूर्वी प्रदेश मे अंत्य स्वर को ह्रस्व कर के तथा पश्चिमी और दक्षिणी प्रदेश मे बिना ह्रस्व किए ही **–न्** जोडा जाता है .

घोड़ा : घोड़न् (ब०), ***घोड़ान्*** (ज० पू०)
रोटी : रोटिन् (ब०) ***रोटीन्*** (बु०)
बहू : बहुन् (ब०), ***बहून्*** (क०)

पूर्वी प्रदेश मे **–ऊ** अंत्य वाली सज्ञाओ मे अंत्य स्वर ह्रस्व करने के बाद कभी कभी **-अन्** जोडा जाता है ***बहू : बहुअन्।*** एकारान्त तथा ओकारान्त सज्ञाओ मे **–ए** तथा **–ओ** के स्थान पर पूर्व मे **–इन्** और पश्चिम तथा दक्षिण मे **–एन्** लगाया जाता है। ***जनो जनिन्*** (ब०), ***जनेन्*** (क०)।

प्राचीन ब्रज मे ***न*** जोड कर विकृत रूप बहुवचन बनाया जाता है और साधारणतया पूर्व का स्वर दीर्घ होने पर ह्रस्व तथा कभी कभी ह्रस्व होने पर दीर्घ हो जाता है . ***छबिलिन*** (नन्द० ४-१४), ***तुरकान*** (भूषण० २४)। **–इ** या **–ई** अंत्य वाले मूलशब्दो मे प्रत्यय लगाने के पूर्व प्रायः **-य** -जोडा जाता है : ***सखियान्*** (नरो० १००)। कभी कभी **–न** के स्थान प **–नि** या **–नु** प्रत्यय भी देखे जाते है : ***कटाछनि*** (सेना० १)। ***आँखिनु*** (भूषग० ४१)। पूर्वी लेखको मे कभी कभी अवधी का **–न्ह** प्रत्यय मिलता है ***बीथिन्ह*** (तुलसी० गी० १-१)।

१५१. ओकारान्त संज्ञाओ (खडीबोली आकारान्त) के मूलरूप एकवचन के

विशेष रूप और विकृत रूप एकवचन के **-ए** अन्त्य वाले रूप का व्यवहार हिंदी की अन्य बोलियों के अतिरिक्त लहन्दा, पंजाबी, मराठी तथा जौनसारी मे होता है। राजस्थानी तथा गुजराती मे ऐसी सज्ञाओ के करण कारक के रूप **-ए** अथवा **-ऐ** लगा कर बनाए जाते हैं।

विकृतरूप बहुवचन के **-अन्** रूप का प्रचार हिन्दी की बोलियों तक सीमित है, केवल खडी बोली मे **-ओं** अन्त वाले रूप मिलते हैं। हिन्दी क्षेत्र के बाहर यह प्रवृत्ति कुमाउँनी मे मिलती है : सिन्धी **अने** से, जिसका प्रयोग करण कारक में भी होता है, इसका मिलान किया जा सकता है।

रूपों का प्रयोग

१५२ परसर्ग के बिना मूलरूप का प्रयोग निम्नांकित मे होता है :

(क) कर्त्ता की भाँति : ***बिब है अधर*** (सेना० २५), ***ईटैं हुआँ हैं*** (ब०)।

(ख) कर्म की भाँति : ***फोरे सब बासन घर के*** (सूर० म० ५), ***तुम् ईटैं लाबौ*** (ब०)।

(ग) सबोधन एकवचन की भाँति : ***राजकुमार हमैं नृप दीजै*** (केशव० २-१५)। यह द्रष्टव्य है कि संबोधन बहुवचन का रूप इससे भिन्न होता है और कुछ सज्ञाओ के मूलरूप बहुवचन के विशेष रूपो का प्रयोग संबोधन की भाँति नही होता है।

१५३ विकृतरूप का प्रयोग परसर्ग के साथ अथवा बिना परसर्ग के होता है :

(क) परसर्ग सहित : एकवचन · ***देखौ महरि आपने सुत को*** (सूर० म० २), ***जगत में*** (लल्लू० ३-५)।

बहुवचन : ***जोगिन को जो दुर्लभ*** (नन्द० १-७९), ***अपने सेवकन सों कह्यौ*** (गोकुल० १५-६)।

(ख) परसर्ग रहित :

एकवचन : ***मृतक गऊ (को) जीवाय*** (नाभा० ४३), ***जाति अबलाई*** (सेना० ९), ***कुछ भाभी हम कौं दियो*** (नरो० ५०), ***अपने मुख चाँदने चलत*** (नद० २-२३), ***पढ़े एक चटसार*** (नरो० २२)।

बहुवचन : ***सब सखियन लै सङ्ग*** (नरो० १००), ***साँटिन मारि*** (सूर० म० १७), ***बिप्रन काढ़ि दियो तुम को*** (नरो० ६१), ***परे आँगुरीन जप झाला*** (सेना० २७), ***भूखन मर् गओ*** (ब०)।

विशेष संयोगात्मक रूप तथा उनका प्रयोग

१५४ निम्नांकित विशेष सयोगात्मक रूप ब्रज में पाए जाते हैं :

सबोधन बहुवचन : प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे व्यजनान्त सज्ञाओ मे **-औ** जोड कर संबोधन बहुवचन का रूप बनाया जाता है : **बाम्हनौं**। स्वरो मे अन्त होने वाली सज्ञाओ मे **-औ** जोडने के पूर्व **-ई, -ऊ** को ह्रस्व कर दिया जाता है : **बेटौ, बहुऔ**।

–आ, –ए या *–ओ* मे अंत होने वाली संज्ञाओ मे अंत्य स्वर के स्थान पर *–औ* जोड़ दिया जाता है : *भइऔ, बेटौ*।

'को' 'के लिए' अर्थ का द्योतक एक संयोगात्मक रूप कभी कभी समस्त ब्रज प्रदेश मे मिलता है। वह मूलशब्द में *–ऐ* प्रत्यय लगा कर बनाया जाता है और ऐसा करने के पूर्व अन्त्य स्वर यदि दीर्घ हो तो ह्रस्व कर लिया जाता है : *घासिऐ दै देऔ* (ब०), *ब्यारिऐ मान्नो पर्‌यो* (म०)।

प्राचीन ब्रज मे भी 'को' या 'मे' अर्थ देने वाले इसी प्रकार के संयोगात्मक रूप मिलते हैं, किन्तु उनमे निम्नलिखित कई प्रकार के प्रत्यय लगाए जाते है :

–हिं　*पूतहिं* (सूर० म० ८)
–हि　*मनहि* (हित० ८)
　जियहि जिवाय (घना० ५)
–ऐं　*सपनैं* (स्वप्न मे)(बिहारी० ११६)
–ऐ　*घरै* (रस० ४१)
–ए　*हिये* (नगे० ४)
　द्वारे (नगे० २४)
–इ　*जगति* (नाभा० ३३)।

आधुनिक ब्रज मे अन्य संयोगात्मक रूपो के उदाहरण मिलते है, किंतु बहुत कम *हाती बँदो तौ द्वारे* (फ०), *सोने के थारन भुजूना परोसे* (मै०), *अन्दर् कोठरी हम् कहा जानैं का बात कर् रहे हौ* (बदा०) , *लगी अँगुरिया फाँस* (मै०), *नजीके कोई तलाब् बताइ* दे।

कुछ उदाहरणो मे 'से' का भाव प्रकट करने के लिए कोई परसर्ग नही लगाया जाता है : *जे तौ पूँछे मालूम् होए* (बदा०)। बदायूँ के एक उदाहरण मे सयुक्त परसर्ग *के ताँई* (के लिए) का प्रयोग 'से' के अर्थ मे हुआ है : *गद्‌लेड़ा कैसे बचैं खान् के ताँई* (मै गधे का मल खाने से कैसे बचाया जा सकता हूँ)।

विशेषणमूलक रूप

१५५ ओकारान्त विशेषणो का *–ए* प्रत्ययान्त परिवर्तित रूप गुण-विस्तार के रूप मे सज्ञा के साथ मूलरूप बहुवचन, विकृतरूप एकवचन तथा विकृतरूप बहुवचन मे व्यवहृत होता है *कारो आद्‌मी जात् है, कारे आद्‌मी जात हैं, कारे आद्‌मिन् सैं कैह् देओ*।

कर्म के सदृश प्रयुक्त ऐसे विशेषणो मे उपर्युक्त परिवर्तित रूप का व्यवहार केवल मूलरूप बहुवचन सज्ञा के साथ होता है *बो आद्‌मी कारो है, बे आद्‌मी कारे हैं,* किन्तु *बा आद्‌मीं कौ कारो बताउत् हैं, उन् आद्‌मिन् कौ कारो बताउत् हैं*।

व्यजनो अथवा अन्य स्वरो मे अंत होने वाले विशेषणों के कोई परिवर्तित रूप नही होते है, उनके साधारण रूप ही सर्वत्र व्यवहृत होते है : *जा लाल् ईंट् है, जे लाल् ईंटैं हैं, लाल् ईंट् कौ टुकड़ा, लाल् ईंटन् के टुकड़ा*।

विशषणो का सज्ञा के सदृश प्रयोग अधिकता से होता है। ऐसे स्थलों पर पहले आई हुई संज्ञा अन्तर्हित मानी जाती है : *कौन् लर्किनी ससुरार् गई, का छोटी हुआँ गई हैं ?*

ऐसे स्थलो पर विशेषण संज्ञा के सदृश माना जाता है और संज्ञाओं के समान ही उसके कारक-भेद होते हैं : *बड़े बच्चा हिआँ बैठें, छोटिनू से कैह् देओ कि खेलैं।*

परिमाणसूचक विशषणों के कोई परिवर्त्तित रूप नही होते है।

७. सर्वनाम

उत्तमपुरुष सर्वनाम

१५६. ब्रज में उत्तमपुरुष सर्वनाम के लिए निम्नलिखित मुख्य रूप होते है :

		आधुनिक ब्रज	प्राचीन ब्रज
मूलरूप	एक०	*मैं, में ;*	*मैं, में ;*
		हौं, हों, हूँ	*हौं, हों, हूँ*
	बहु०	*हम्*	*हम*
विकृतरूप	एक०	*मो, मोहि*	*मो*
	बहु०	*हम्*	*हम*

१५७. ब्रज में मूलरूप एकवचन के रूपो का प्रयोग एकवचन की क्रिया के कर्त्ता की भाँति होता है। पूर्व में तथा पश्चिम और दक्षिण के कुछ जिलो में (ब० बदा० इ० फ० पी०; म० बु०; भ० कभी कभी आ० अ० क० मै०) *मैं* साधारण रूप है : *मैं जात् हौं*। पूर्वी सीमान्त भाग के जिलों में (शा० ह० क०), इसका उच्चारण *मइं* (§ ९७) होता है और दक्षिण के कुछ प्रदेशों में (ज० पू० ग्वा० प० और ए० मे भी) बुंदेली की भाँति *में* (§ ९३) होता है। पश्चिम और दक्षिण के कुछ प्रदेशों मे (अ० क० धौ०) *हूँ* या *हुँ* साधारण रूप है। आगरा मे इसका उच्चारण *हौं* है : *हौं गयो*। दक्षिण मे *हों* (क०), और *हउँ* रूप भी प्राप्त हुए हैं (इनके ध्वन्यात्मक रूपान्तर के लिए दे० § ९३)। सपूर्ण क्षेत्र मे जहाँ *-ह* वाले रूप मिलते है वहाँ साथ-साथ *मैं* भी व्यवहृत होता है।

प्राचीन ब्रज मे भी *मैं* का प्रयोग बराबर पाया जाता है, जैसे *औरनि जानि जान मैं दीन्हे* (सू० म० २)।

सेनापति मे कुछ स्थलों पर *मै* मिलता है (सेना० २-३२) जो कदाचित् लिपिकार अथवा प्रूफ़ पढ़ने वाले की असावधानी के कारण निरनुनासिक रह गया है। *में* केवल गोकुलनाथ मे अन्य साधारण रूपों के साथ साथ प्रयुक्त हुआ है।

प्राचीन ब्रज के सभी लेखकों में *हौं* लगभग समान रूप से प्रचलित मिलता है : *हौं रीझी* (बिहारी० ८)। इसका अन्य रूप *हौं* साधारणतया निश्चय बोधक *हूँ* ('भी') के साथ प्रयुक्त मिलता है और बहुत संभव है कि अनुनासिकता की आवृत्ति से बचने के लिए इस सर्वनाम मे परिवर्त्तन कर लिया गया हो: *हौ हूं...कब...तासु मद फेटिहौं*

(घना० १२)। सूरदास में *हौं* बहुत कम मिलता है, किंतु गोकुलनाथ में *हूँ* के साथ-साथ यह बराबर प्रयुक्त हुआ है।

प्राचीन लेखकों मे प्राचीन मूलरूप एकवचन *हौं* का बहुत अधिकता से प्रयुक्त होना स्वाभाविक है। ब्रज के राजनैतिक तथा धार्मिक केन्द्र मथुरा और आगरा की बोली के प्रभाव के कारण भी *हौं* अधिकता से प्रचलित हो सकता है। बाद में प्राचीन लेखकों की भाषा के आदर्श पर यह ठेठ ब्रज का रूप माना गया। राजस्थान के दरबारों से संबद्ध कवियों की कृतियों मे *हौं* को *मैं* से अधिक प्रश्रय देने का कारण यह हो सकता है कि राजस्थानी में इससे मिलते जुलते रूप विद्यमान थे और इसका अधिक प्रचार होना उनके प्रभाव से भी सभव है।

लगभग समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के समान ब्रज में भी उत्तम पुरुष-वाची सर्वनाम मूलरूप एकवचन मे *म*– वाला रूप पाया जाता है, किंतु पूर्वी भाषाओ में बहुवचन का रूप प्राय: एकवचन के रूप का स्थानापन्न हो गया है—केवल गुजराती, मारवाडी, मालवी, जौनसारी तथा गुर्जरी मे ऐसा नही होता है। इनमे *म*- रूप वाले सर्व-नामो के साथ साथ *ह*- रूप के सर्वनाम प्रयुक्त होते है, दे० सिधी *आऊँ, आ* तथा जौनसारी वैकल्पिक रूप *अउँ*। *ह*- रूप पंजाबी मे लुप्त हो गया है और हाल ही मे *म*- रूप ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है (लि० स० इ० ९, भाग १)। ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे धीरे करणकारक का *म*– रूप अधिक प्राचीन *ह*– रूप का स्थानापन्न बन रहा है। कुछ भाषाओं मे अभी भी दोनो साथ साथ व्यवहृत होते हैं। ब्रजभाषा इस प्रकार की भाषाओं की एक उदाहरण है।

१५८. परसर्गों के साथ विकृत रूप एकवचन के रूप कर्त्ताकारक को छोड़ कर अन्य कारको को व्यक्त करते हैं। आधुनिक ब्रज मे *मो* संपूर्ण क्षेत्र मे व्यवहृत होता है : *मो कौ देखो*। केवल पूर्वी सीमान्त जिलो मे (शा० ह० का० तथा फ० में भी) *मोहि* (मि० अव *महि*) अधिक प्रचलित है। *मोहि सै चलो नाइँ जात* (शा०)।

प्राचीन ब्रज मे भी सभी लेखकों मे *मो* साधारणतया प्रयुक्त होता है : *सुनि मइया याके गुन मो सों* (सूर० म० ८)। कभी कभी *मो* किसी परसर्ग के बिना कर्म की भाँति व्यवहृत होता है : *मो देखत सब हँसत परस्पर* (सूर० वि० २८ तथा नंद ४-२९, नरो० २३)। *मौ* केवल गोकुलनाथ मे मिलता है (३२-१२)।

मो का प्रयोग परवर्त्ती संज्ञा के लिंग के विचार के बिना ही संबंधवाचक सर्वनाम के समान भी होता है। इस प्रकार प्रयुक्त होने पर मूलरूप और विकृतरूप में उसके भिन्न रूप नही होते हैं। *मो* का इस प्रकार का प्रयोग अधिकता से होता है : *मो माया सोहत है* (नन्द ४-२९), *मों मन हरत* (सेना० ३४)। *मों* रूप कतिपय स्थलो पर मिला है (सूर० य० २५)। यह रूप सस्कृत *मम* के अधिक निकट है।

खडीबोली तथा बाँगरू को छोड कर हिन्दी की अन्य सभी बोलियों मे विकृतरूप एकवचन *मों* प्रयुक्त होता है। खडीबोली तथा बाँगरू मे *मुज्*, *मुझ्*, या *मझ्* तथा *मज्* विशेष रूप है जो इन्ही बोलियों में मिलते है। भोजपुरी तथा उडिया मे *मों* केवल निम्न स्तर के व्यक्तियों के लिए व्यवहृत होता है, दे० मैथिली अप्रयुक्त रूप, *मोहि*, सिंधी,

मेवाती, पश्चिमी पहाडी **मूँ** तथा लहन्दा, गुजराती, राजस्थानी और नेपाली **म** या **म्ह**। अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं मे या तो मूलरूप एकवचन अथवा बहुवचन का रूप किंचित् परिवर्त्तन के साथ अथवा उसी रूप में विकृत रूप एकवचन के समान प्रयुक्त होता है।

१५९. मूलरूप बहुवचन के रूप का प्रयोग बहुवचन मे प्रयुक्त क्रिया के कर्त्ता के सदृश होता है। आधुनिक ब्रज मे **हम्** संपूर्ण क्षेत्र मे व्यवहृत होता है: **हम् जात् हैं**। अवधी के समीपस्थ कुछ पूर्वी जिलो मे (ह० का०) इसका प्रचलित उच्चारण **हमु** (§९१) है। प्राचीन ब्रज मे भी **हम** के कोई रूपांतर नही होते हैं। एकवचन के स्थान पर इसका प्रयोग प्राचीन ब्रज मे आधुनिक बोली की भाँति उतनी अधिकता से नही होता है।

विकृत रूप बहुवचन का प्रयोग परसर्गों के साथ विभिन्न प्रकार के सबंधो को व्यक्त करने के लिए होता है। आधुनिक ब्रज मे **हम्** के कोई रूपातर नही होते है और वह मूल-रूप बहुवचन के समान ही रहता है. **हमको देखो**। कुछ प्रदेशों मे (बु० क० ग्वा० प०) **नैं** परसर्ग के पहले **हम्** के **हमन्** होने के उदाहरण मिले हे: **हमन् नैं देखी तेरी आरसी** (बु०), **हमन् नैं बचाए** (ग्वा० प०)।

प्राचीन ब्रज मे भी **हम्** विकृतरूप बहुवचन में प्रयुक्त होता है और उसके कोई रूपांतर नही होते हे: **हम पै उमड़े हौ** (देव० ३-५८)। मूलरूप तथा विकृतरूप बहु-वचन के दोनों रूप प्रायः एकवचन के स्थान पर प्रयुक्त होते है, किंतु आधुनिक ब्रज मे यह प्रवृत्ति विशेष बल पा गई है।

मूलरूप बहुवचन तथा विकृतरूप बहुवचन **हम्** का प्रयोग साधारण ध्वनि संबंधी रूपान्तरों के पश्चात् हिंदी की अन्य समस्त बोलियो तथा मेवाती, पहाड़ी और गुजराती मे भी होता है। तीन उत्तर पश्चिमी भाषाएँ **अस्-** रूप पर आधारित भिन्न रूप रखती है। अन्य समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं मे **हम्** रूप का किंचित् परिवर्त्तित रूप व्यवहृत होता है। उसका परिवर्त्तित होना या तो **ह्** और **म्** के स्थानान्तरित होने के कारण होता है, जैसा कि अधिकाश राजस्थानी बोलियों में देखा जाता है, अथवा शब्द के आदि के हकार के लोप हो जाने के कारण होता है।

१६० 'मुझको' अथवा 'हमको' का अर्थ देने वाले कुछ संयोगात्मक रूप परसर्गो के बिना अन्य रूपो के साथ साथ ब्रज मे अधिकता से व्यवहृत होते है। इनमे से बहुत अधि-कता से प्रयुक्त होने वाले रूप निम्नांकित है:

विकृत, वैकल्पिक	आधु० ब्र०	प्रा० ब्र०
'मेरे लिए'	**मोय्, मोएँ**	**मोहिं, मोहि**
'हमारे लिए'	**हमैं**	**हमैं हमहि**

आधुनिक व्रज में एकवचन का साधारण रूप ***मोय्*** है, ***मोय् देश्रो*** (आ०)। ***मोएँ*** रूप कुछ प्रदेशो में मिलता है (ब० बदा०, कभी कभी म० में)।

प्राचीन व्रज में एकवचन में बहुत अधिकता से प्रयुक्त होने वाला रूप ***मोहिं*** है, यद्यपि ***मोहि*** भी साथ साथ मिलता है, ***मोहिं परतीति न तिहारी*** (सेना० १९)। छद की आवश्यकता के कारण अथवा यमक के लिए ***मोहिं*** के निम्नलिखित किंचित् परिवर्तित रूपान्तर बहुधा प्राचीन व्रज के लेखको मे मिलते है, ***म्वहि*** (सूर० म० १२), ***मोहि,*** (सेना० १८), ***मोहीं*** (बिहारी० ४७), ***मुहिं*** (दास० १५-६७)।

समानार्थी बहुवचन रूप ***हमैं*** सपूर्ण क्षेत्र मे नियमित रूप मे मिलता है : ***हमैं देश्रो*** प्राचीन व्रज मे ***हमैं*** अधिकता से पाया जाता है, किंतु कभी कभी इसका अधिक प्राचीन रूप ***हमहिं*** प्रयुक्त हुआ है : ***काल्हि हमहि कैसे निदरति ही*** (सूर० य० १५), ***हमैं जानि परी*** (दास० ३०-३१)। अनुनासिकता के सबध मे सशय होने के कारण कभी कभी, यद्यपि बहुत कम, निम्नांकित रूपांतर मिल जाते है : ***हँमैं*** (पद्मा० ६-२८), ***हमै*** (पद्मा० २४-१०४); ***हमें*** (मति० ४१) (दे० खडीबोली ***हमें***)।

सूर० य० २१ मे ***हमहिं*** का प्रयोग बिना परसर्ग के अपादान कारक मे हुआ है : ***की पुनि हमहिं दुराव करोगी।***

वैकल्पिक रूप से विकृत रूप तथा परसर्गो के साथ उपर्युक्त सर्वनाम मूलक संयोगात्मक रूप का प्रयोग केवल व्रज तथा बुंदेली तक सीमित है। खडी बोली तथा साहित्यिक हिंदी मे ***मझ् मुझ*** से बने हुए ***मझे मुझे*** आदि मिलते जुलते रूप से इसका मिलान किया जा सकता है। सयोगात्मक वैकल्पिक बहुवचन रूप का व्यवहार व्रज तथा खडीबोली (***हमें***) तक सीमित है।

१६१. उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाममूलक सबधवाची विशेषणो मे से निम्नलिखित मुख्य रूप है :

पुल्लि०	मूल०	एक०	***मेरो, मेरौ***
,,	,,	बहु०	***हमारो, हमारौ***
पुल्लि०	विकृत	एक०	***मेरे***
,,	,,	बहु०	***हमारे***
स्त्री०	मूल०	एक०	***मेरी***
,,	,,	बहु०	***हमारी***

पुल्लि० मूल० एक० ***मेरो,*** बहु० ***हमारो*** सपूर्ण क्षेत्र मे बोले जाते है : ***मेरो बाप आश्रो, हमारो सिन्दूक् कहाँ है।*** दक्षिण और पश्चिम के कुछ भागो मे (भ० ज० पू० क० ग्वा० प०; आ० अ०) ***मेरौ*** तथा ***हमरौ*** अधिक प्रचलित उच्चारण है (§ ९३)। पूर्व कानपुर मे कभी कभी ***मोरो, हमरो*** बोले जाते हैं (देखिए अव०, ***मोर्***, बु० ***मोरो***)।

बदायूँ के एक नमूने में *मेरे तौंई* का प्रयोग *मेरो* के अर्थ में हुआ है : *छठे महीना मेरे तौंई जनम् हुइ जाएगो* (छठवे मास में मेरा जन्म हो जायगा)।

ब्रज साहित्य में भी *मेरो* तथा *हमारो* रूप बहुत अधिकता से प्रयुक्त होते हैं। *मेरौ* तथा *हमारौ* कभी कभी मिलते हैं : घना० १३, लल्लू० १५-६। अवधी रूप *मोर* बहुत कम मिलता है। सूर० य० ७ मे यह व्यवहृत हुआ है, किंतु वहाँ छंद की आवश्यकता के कारण यह आया है : *कान्ह जीवन-धन मोर*।

सबधवाचक विशेषण पुल्लिग विकृत रूप एकवचन *मेरे*, बहुवचन *हमारे* तथा स्त्रीलिंग मूलरूप विकृतरूप एकवचन *मेरी* बहुवचन *हमारी* का प्रयोग बिना किन्ही रूपान्तरो के आधुनिक तथा प्राचीन ब्रज मे होता है : *मेरे बाप् को घर है, हमारे पुरखन की जाएदात् है : मेरी रोटी कहां है, हमारी जमीन जा है।* कभी कभी, कितु बहुत कम, कुछ पूर्वी लेखकों मे हमे *मेरे* के स्थान पर *मोरे* मिलता है · तुलसी० क० २-२६। स्पष्ट ही यह प्रयोग अवधी *मोरू* के प्रभाव के कारण हुआ है।

विशेष—सबधवाची विशेषण पुल्लिग स्त्रीलिग मूलरूप विकृतरूप की भाँति प्रयुक्त *मो मों, मम* के प्रयोग के लिए दे० § १५८।

ब्रज सबधवाची पुल्लिग एकवचन रूप *मेरो* का प्रयोग मेवा० बुं० पहा० तथा गुर्जरी तक होता है, मिलाइए गुज० तथा राज० *मारो* या *म्हारो* और लह० प० बाग० खडी० *मेरा*। पूर्वी हिन्दी की बोलियाँ, अन्य पूर्वी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ की भाँति *मोर्* रूप का प्रयोग करती है। सबधवाची बहुवचन पुल्लिग रूप *हमारो*, ब्रज के अतिरिक्त, बुं० नी० तथा गढ० मे प्रयुक्त होता है; मिलाइए कुमा० *हमरो*, जौनसा० *अमारो* नेपा० *हामरो*, मेवा० तथा गुर्ज० *म्हारो*, गुज० *आमारो*, मारवा० *म्हाँरो*, जैपु० माल० *म्हाँको* या *म्हाणो*। खडी० तथा बाग० मे *हमारा* या *म्हारा* होता है। हिन्दी की पूर्वी बोलियाँ, अन्य पूर्वी आधुनिक आर्य भाषाओ की भाँति *हमार्* रूप के विभिन्न रूपान्तरो का प्रयोग करती है, कितु सि० लह० प० *अस्* रूप से बने हुए रूपो का व्यवहार करती है। पुल्लिग विकृत रूप *मेरे, हमारे* और स्त्रीलिग रूप *मेरी, हमारी* का प्रचार ऊपर दिए हुए उन समस्त क्षेत्रों मे होता है जहाँ *–ओ* या *–आ* अन्त्य वाले मूलरूपों का चलन पाया जाता है।

मध्यम पुरुष सर्वनाम

१६२. ब्रज मे मध्यम पुरुष सर्वनाम के लिए निम्नलिखित मुख्य रूप होते है :

		आधुनिक ब्रज	प्राचीन ब्रज
मूल०	एक०	*तू, तूँ, तैं*	*तू, तूँ, तैं, तें*
	बहु०	*तुम्*	*तुम*
विकृत, नियमित	एक०	*तो*	*तो*
	बहु०	*तुम्*	*तुम*

१६३. विकृत एक० *तू* सभी क्षेत्रों मे मिलता है : *तू काको लौंड़ा है*। कुछ पूर्वी जिलो (मै० बदा०) कुछ मे *तूं* भी मिलता है और कुछ पश्चिम-दक्षिणी प्रदेशों (म० ज०

पू० धौ०) में केवल **नैं** परसर्ग के साथ **तैं** का प्रयोग अधिकता से होता है : ***तैं नैं सच् कह्यो*** (म०)। किंतु ग्वालियर पूर्व मे अर्थात् बुँदेली क्षेत्र के आसपास यह **नैं** के बिना भी ***तू*** के स्थान पर नियमित रूप से व्यवहृत होता है : ***तैं अपओं रुज्गार् सीख्***। हरदोई पूर्व मे अवधी के सदृश ***तुइ*** रूप मिलता है।

प्राचीन ब्रज के लेखको में भी मूल० एक० ***तू*** बहुत अधिकता से प्रयुक्त होता है, यद्यपि १८ वी शताब्दी के लेखको मे ***तूँ*** बहुत प्रचलित है। निश्चय बोधक ***ही*** के साथ ***तू*** बहुधा ***तु*** हो जाता है : ***तु ही एक् ईठ*** (सेना० २०)। ***तैं*** साधारणतया करण कारक मे प्रयुक्त होता है और १६ वी तथा १७ वी शताब्दी के लेखको मे अधिक मिलता है ***तैं बहुतै निधि पाई*** (सूर० म० ११)। ***तै*** कदाचित प्रतिलिपिकार अथवा प्रूफ संशोधक की असावधानी के कारण, बहुत थोड़े से स्थलो पर ***तैं*** के स्थान पर देखा जाता है : मति० ११। ***तें*** करण तथा कर्त्ता कारक मे बहुत प्रचलित है क्यो राखी... ते (नन्द० ३-४), ***मेरे तें ही सरवसु है*** (सेना० १८)। गोकुलनाथ मे ***ते ने*** परसर्ग के साथ करण कारक मे प्रयुक्त हुआ है (मिलाइए आधु० ब्रज ***तैं नैं***) ***ते ने श्री गुसाईं जी को अपराध कियो है।***

मूल० एक० के ***तू*** रूप का प्रचार खड़ी० मेवा० नीमा० जय० तथा पहाड़ी बोलियो तक मिलता है (मिलाइए बंग० अप्रचलित ***तुइ***)। लगभग अन्य सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं मे अनुनासिक रूप ***तूं*** या ***तुं*** व्यवहृत होता है। केवल तीन पूर्वी भाषाएं, जिनमें बहुवचन के रूप ***तुमि*** या ***तुम्भे*** ने एकवचन का स्थान ग्रहण कर लिया है, इस कथन के अपवाद है। करण कारक का ***तैं*** राज० प० जौन० गुर्ज० तथा अन्य पश्चिमी हिंदी की बोलियो मे समान रूप से मिलता है। पूर्वी हिन्दी की बोलियो मे ***तूं*** तथा ***तैं*** मे भेद नही किया जाता है।

१६४ विकृत० एक० ***तो*** परसर्गों के साथ आधुनिक तथा प्राचीन ब्रज मे भी विभिन्न प्रकार के सबंधो को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है : ***तो पै इत्तोऊ काम् नाएँ होत्***। बुलदशहर मे खड़ी० हिन्दी रूप ***तुझ*** भी साथ साथ मिलता है। तुलसी० क० २-२५ मे अवधी रूप ***तोहि*** प्रयुक्त हुआ है : ***केहि भाँति कहौं सयानी तोहि सों।***

तो रूप का प्रयोग बुं० पूर्वी हिन्दी की बोलियो, सि० भोज० उड़ि० तक सीमित है। अन्तिम दो भाषाओं मे इसका प्रयोग केवल छोटो के लिए होता है; मिलाइए राज० ***त*** या ***थ***, लह० ***त***, मेवा० ***तूँ***, प० ***तइ***।

१६५ मूल० बहु० ***तुम्*** सपूर्ण क्षेत्र मे व्यवहृत होता है : ***तुम् कहाँ जात् हौ***। कुछ स्थानों (अ० धौ० मै० ए०) मे ***तुम*** उच्चारण सुना जाता है (§ ८९)। दक्षिण मे (ज० पू० क० तथा बु० मे भी) कभी कभी ***तम्*** मिलता है। कानपुर पूर्व मे अवधी उच्चारण ***तुम्ह*** मिलने लगता है। प्राचीन ब्रज में ***तुम*** का कोई भी रूपान्तर नही मिलता है।

विकृत० बहु० ***तुम्***, प्राचीन ब्रज ***तुम***, मूल० बहु० के सदृश ही है और उसके कोई रूपान्तर नही होते है : ***तुम् सै कैत् हौं*** (तुमसे कहता हूँ), ***तुम तें कछु लेतु नाहीं***

(लल्लू० ७-६)। *नें* के पहले प्रयुक्त होने पर *तुम्* के *तुमन्* हो जाने के उदाहरण करौली में मिले हैं।

मूल० बहु० *तुम्* हिंदी की सभी बोलियों मे, तथा प० और पू० पहा० (विकृत० *तुमूँ* अथवा *तुमन्*), मेवा० और नीम० मे भी मिलता है; मिलाइए गुज० गुर्ज० *तम्*, मारवा० *तमे, थें* (विकृत० *थाँ, तमाँ*), नेपा० *तिमि*, बिहा० *तोह* ।

१६६. 'तेरे लिए' आदि के अर्थ के द्योतक निम्नलिखित संयोगात्मक वैकल्पिक रूप बहुत प्रचलित हैं :

	आधुनिक ब्रज	प्राचीन ब्रज
एक०	*तोए, तोय*	*तोहिं तोहि*
बहु०	*तुमैं*	*तुम्हैं, तुमहिं*

आधुनिक ब्रज में एक० रूप *तोए* पूर्वी क्षेत्र तक सीमित है, पश्चिम तथा दक्षिण में इसका साधारण उच्चारण *तोय* है : *तोए रोटी दै देऔ*। कुछ पूर्व के सीमान्त जिलों में (का० ह०) *तोहि* रूप भी मिलता है।

प्राचीन ब्रज मे *तोहिं तोहि* के बराबर ही प्रचलित है : *सपन सुनावत तोहिं* (भूषण० १३)। बिहारी० ३६ मे *तोहिं* निश्चय बोधक अर्थ के द्योतक के रूप मे प्रयुक्त हुआ है : *तोहिं निर्मोही लग्यौ मो ही* ।

विकृत रूप वैकल्पिक बहुवचन *तुमैं* (तुम्हारे लिए) आधुनिक ब्रज में साधारण रूप है : *तुमैं काम कर्नो चइऐ*। बुलदशहर मे *तमैं* और फ़र्रुखाबाद में *तुम्हैं* साधारण उच्चारण है। इस अर्थ को व्यक्त करने के लिए परसर्ग के सहित सबंधसूचक विकृत रूप का प्रयोग अधिक होता है : *तेरे ताँईं, तुम्हारे ताँईं* इ०।

प्राचीन ब्रज मे *तुम्हैं* साधारण रूप है : *तुमहिं* कभी कभी और *तुम्है* बहुत कम मिलता है : *तुम्हैं न हठौती* (नरो० १३)। आधुनिक रूप *तुमै* (नन्द० १-९२) तथा हिन्दी *तुम्हें* (घना० १३) बहुत कम मिलते हैं।

विकृत रूप वैकल्पिक *तोय* आदि रूप ब्रज की एक मुख्य विशेषता है और केवल बुंदेली मे मिलते हैं।

१६७. मध्यम पुरुष सर्वनाममूलक संबंधवाची विशेषणो के निम्नलिखित रूप ब्रज में अधिकता से प्रयुक्त होते है।

			आधुनिक ब्रज	प्राचीन ब्रज
पुंल्लि०	मूल०	एक०	*तेरो, तेरौ*	*तेरो, तेरौ*
,,	,,	बहु०	*तुम्हारो, तुमारौ, तिहारो* (बु०)	*तुम्हारो, तिहारो*
,,	विकृत०	एक०	*तेरे*	*तेरे*
,,	,,	बहु०	*तुम्हारे, तुमारे, तिहारे,* (बु०)	*तुम्हारे, तिहारे*
स्त्री०	मूल० विकृ०	एक०	*तेरी*	*तेरी*
,,	,, ,,	बहु०	*तुम्हारी, तुमारी, तिहारी* (बु०)	*तुम्हारी, तिहारी*

पुल्लि० मूल० एक० *तेरो* का प्रयोग संपूर्ण क्षेत्र मे होता है : *तेरौ बाप् आए गओ।* केवल पश्चिम और दक्षिण (आ० अ० बु० ज० पू० क०) में *तेरौ* साधारण रूप है। पुल्लि० विकृत० *तेरे* और स्त्री० विकृत० *तेरी* के कोई रूपान्तर नही होते है : *तेरे खेत् मैं पानी भरो है, तेरी लौंड़िआ कौं ब्याही है ?*

प्राचीन ब्रज मे *तेरो* अधिक प्रचलित रूप है, किंतु *तेरौ* कभी कभी मिलता है : बिहारी० ६०। *तेरे* तथा *तेरी* के भी कोई रूपान्तर नही होते है। सेना० २९ मे निश्चयबोधक *ये* के साथ पूर्वी रूप *तोरि-* मिलता है : *तोरि-ये सुवास और वासु मै वसाति है।*

सं० *तव* रूप पर आधारित कतिपय संबंधसूचक एक० रूपो का प्रचुरता से प्रयोग होता है। लिंग अथवा कारक के लिए इन रूपों मे कोई विकार नही होता है। स्वयं *तव* बहुत कम मिलता है (भूषण० ४८) किंतु *तुव* और *तो* का प्रयोग अधिक होता है. *तुव ध्यानहि में हिलिहिलि* (दास० २९-२६), *मो मन तो मन साथ* (बिहारी० ५७)।

तेरो आदि रूपो का प्रचार बु० मेवा० पहा० तथा गुर्ज० तक मिलता है। मिलाइए राज० *थारो*, लह० प० बाँग० और खड़ी० *तेरा*। पूर्वी भाषाओ मे *तोर्* रूप मिलता है।

संबंधसूचक विशेषण के बहुवचन के *तुम्हारो, तुम्हारे, तुम्हारी* रूपो का प्रचार पूर्वी क्षेत्र तक सीमित है : *जौ तुम्हारो घर् है, तुम्हारे चचा गाँओ गए, तुम्हारी चाची आए गई।* पश्चिम मे इन रूपो का उच्चारण *तुमारो, तुमारे, तुमारी* होता है अर्थात् उनके महाप्राणत्व का लोप हो जाता है। बुलदशहर मे *तिहारो, तिहारे, तिहारी* रूप प्रयुक्त होते है और धौलपुर मे *त्यारो, त्यारे, त्यारी* रूप मिलते है।

करौली के कुछ नमूनो मे *तुमरौ तुमारौ* और *तियारौ* रूप पुल्लि० मूल० बहु० मे मिलते है। ग्वालियर पश्चिम मे धौलपुर के *त्यारो* तथा पूर्वी प्रदेश के *तुम्हारो* के साथ साथ *तिहारो* मिलता है।

प्राचीन ब्रज मे *तुम्हारो, तुम्हारे, तुम्हारी* और *तिहारो, तिहारे, तिहारी* के दोहरे रूप लगभग समानता से साथ साथ प्रयुक्त होते है। आधुनिक रूप *तुमारौ* गोकुलनाथ (३९-११) तथा *तिहारौ* बिहारी (११४) तक सीमित है। छद की आवश्यकता के कारण *तुम्हरो, तुमरे, तुमरी* आदि लघु रूप मिलते है और बहुत कर के नन्ददास तक सीमित है : *अरु तुम्हरो यह रूप* ....(नन्द० १-१००), *अरु तुमरे कर कमल*... (नन्द० १-१०३), *कहाँ तुमरी निठुराई* (नन्द० ३-९)।

तुम कभी कभी संबधवाचक पुल्लि० विकृत० बहु० के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है : *वे तुम कारन आवैं* (सूर० य० १७; देखिए नन्द० ३-१०, २२)।

तुम्हारो या *तुमारो* रूपों का प्रचार बुंदे० नीम० और म० तथा प० पहाडी बोलियों तक प्रचलित मिलता है। मिलाइए गुज० *तुमारो*, नेपा० *तिमरो* खड़ी० *तुमारा*, पूर्वी बोलियों का *तुम्हार्* या *तोमार्*। *तिहारो* आदि रूप किसी अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषा मे नही मिलते है किंतु इनसे संबद्ध रूप अधिकता से व्यवहृत होते है;

मिलाइए जौन० *तुहारो*, पूर्वी बोलियों के *तोहार*, *तुहार्* या *तोहर्*, मेवा० गुर्ज० *थारो* तथा राज० *थाँरो* इ०।

दूरवर्ती निश्चयवाचक

१६८ दूरवर्ती निश्चयवाचक रूपो का प्रयोग अन्य पुरुष सर्वनाम तथा निश्चय बोधक विशेषण के लिए भी स्वतत्रतापूर्वक होता है। इन सर्वनामो के सबध मे एकवचन तथा बहुवचन का भेद कडाई के साथ किया जाता है। आधुनिक ब्रज मे इसका प्रयोग नित्य सबधी के रूप में भी होता है। केवल आधुनिक ब्रज मे मूल० एक० के अतिरिक्त पुल्लि० तथा स्त्री० के लिए कोई पृथक् रूप नही होते है।

निम्नलिखित मुख्य रूप ब्रज मे प्रयुक्त होते हैं :

		आधुनिक ब्रज	प्राचीन ब्रज
मूल० एक०	पु०	*बौ, बु, बो ;*	
		वौ वो ;	*वह*
		गु	
	स्त्री०	*बा; वा ; ग्वा*	
बहु०		*बे, बै; वे, वै;*	*वे, वै*
		ग्वे	
विकृत० एक०		*बा, वा, ग्वा*	*वा* (व्यक्ति० सर्व०
बहु०		*उन्; बिन्, विन्; ग्वनु*	*उन* (व्यक्ति० नित्य०), *विन* (बाद के गद्य मे)

१६९ मूल० पुल्लि० एक० *बौ* कुछ पूर्वी प्रदेशो मे सामान्यत तथा कभी कभी पश्चिम के एक बडे भाग मे और दक्षिण मे भी प्रयुक्त होता है (ब० बदा० पी० में नियमित रूप से, कभी कभी मै० ए० इ० मे, भ० ज० पू० धौ० ग्वा० प० मे, बु० में भी)। *बौ जात् है*। शाहजहॉपुर मे इस रूप का साधारण उच्चारण *बउ* है। प्रायः पश्चिम और दक्षिण के कई प्रदेशो मे (आ० ग्वा० प० धौ० मै० ए०, कभी कभी बदा० इ० मे) *बु* नियमित रूप से मिलता है। दक्षिण मे (भ० क० धौ० ब० इ० मे भी) *बो* भी मिलता है। *वौ* मथुरा तक सीमित है और *वो* दक्षिण मे (भ० ज० पू० क०) प्रयुक्त होता है। कुछ पूर्व के सीमान्त जिलो मे अव० रूप *उओ* (फ़०), *ऊ* (ह०), *वहु, वउ* (का०) व्यवहृत होते है। अलीगढ मे एक असाधारण रूप *गु* है *गु जातु अए*।

मूल० स्त्री० एक० *बा* सपूर्ण क्षेत्र मे प्रयुक्त होता है· *बा जात् है*। केवल मथुरा, हरदोई मे *वा* तथा अलीगढ मे *ग्वा*० मिलता है।

प्राचीन ब्रज मे *वह* बहुत अधिक प्रयुक्त हुआ है, विशेष रूप से अन्य पुरुष सर्वनाम तथा दूरवर्ती निश्चयवाचक के लिए। यह रूप पुल्लिग तथा स्त्रीलिग दोनों के लिए ही प्रयुक्त होता है : *कहा वह जाने रस* (नन्द० ५-७५), *वह कौन नबेली* (रस० १०)

निश्चयवाचक सर्वनाम मूल० एक० **वह, वो, बो** कभी कभी **ओह, उह** अथवा **ओ ऊ** में भी परिवर्तित हो कर समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में मिलता है। केवल गुजराती तथा तीन पूर्वी भाषाओ मे, जिनमें **स-** अथवा **त-** रूप मिलते है, ऐसा नही होता है। अलीगढ तक सीमित **गु** तथा **ग्व** रूप असाधारण है। किसी भी आधुनिक भारतीय आर्यभाषा मे ऐसे रूप नही पाए जाते है।

१७० मूल० बहु० **बे** अथवा **बै** सामान्यतः पूर्व और दक्षिण मे (ब० बदा० पी० इ० मै० ए०, भ० ज० पू० धौ० ग्वा० प०, आगरा मे भी; कभी कभी म० बु० फ़० मे) प्रयुक्त होता है **बे जात् हैं, बे जाति हैं**। पूर्व तथा पश्चिम के कुछ क्षेत्रों में (म० क० का०, कभी कभी बु० ज० पू० मे) **वे** अधिक प्रचलित है। बुलंदशहर मे **वै** व्यवहृत होता है जो कभी कभी आगरा मे भी मिलता है। कुछ पूर्व के सीमान्त जिलो मे अवधी रूप अथवा अवधी से प्रभावित रूप मिलते है **वइ** (शा०), **उइ** (ह० का०), **उए** (फ०) अलीगढ मे **ग्वे** प्रचलित है।

प्राचीन ब्रज मे **वे** अत्यधिक प्रचलित है। इसकी तुलना मे **वै** का प्रयोग बहुत कम मिलता है।

बहु० रूप **बे, वे** अथवा **वै** का प्रचार पश्चिमी हिन्दी बोलियो और राज० गढ० तथा गुर्ज० तक मे मिलता है। अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे **ओ-स-** या **त-** रूप मिलता है। परसर्गों के साथ विकृतरूप के रूपो का प्रयोग विभिन्न सबधो को प्रकट करने के लिए होता है।

१७१ आधुनिक ब्रज मे विकृत० एक० ***बा*** का प्रचार सामान्यत पूर्व तथा दक्षिण मे (आ० में भी नियमित रूप से तथा बु० में कभी कभी) होता है ***बा पै चलो नाएँ जात्***। कुछ पश्चिमी तथा दक्षिणी क्षेत्रो मे (म० बु० क०, कभी कभी ज० पू०) इसका उच्चारण ***वा*** होना है। पूर्व के सीमान्त जिलो मे अवधी रूप मिलते है। ***ओहि*** (फ़०), ***उइ*** (ह०), ***वहि उहिं, उइ*** (का०), अलीगढ मे ***ग्वा*** का प्रचार है।

प्राचीन ब्रज में ***वा*** अन्य पुरुष सर्वनाम की भाँति प्रचुरता से प्रयुक्त होता है। ***सो वा ने कह्यौ*** (गो० ४६-८)।

विकृत० एक० ***बा, वा*** अथवा ***वा*** का प्रचार हिंदी तथा कुमा० गढ० तक सीमित है। पूर्वी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे ***त्***–रूप प्रचलित है।

१७२ विकृत० बहु० ***उन्*** साधारणतया प्रायः पूर्व मे तथा दक्षिण और पश्चिम के कुछ क्षेत्रो मे और बुलदशहर मे भी प्रचलित है: ***उन् सै कै देओ***। यह कभी कभी म० भ० क० मै० ए० बदा० मे भी मिलता है। ***बिन्*** रूप पश्चिम और दक्षिण तथा पूर्व के कुछ क्षेत्रो में भी प्रचलित है (म० आ० भ० धौ० मै० ए० बदा०; कभी कभी ज० पू० मे)। ***विन्*** करौली मे नियमित रूप से किंतु कभी कभी आ० ए० मे व्यवहृत होता है। अ० मे ***ग्वनु*** तथा एक वैकल्पिक रूप ***उनु*** का चलन है। बुलदशहर के कुछ उदाहरणों मे खडीबोली के कारणकारक बहुवचन रूप ***उन्हों*** का प्रयोग ***का*** परसर्ग के साथ हुआ है: ***उन्हों का, उन्हों के***। एक रूप ***उनन् को*** भी मिलता है। भरतपूर

की बोली में **बेइन् नै बिन् नै** के लिए मिलता है। बोलने वालो के भ्रम के कारण ऐसे रूपों का उद्भव हो सकता है।

प्राचीन ब्रज में **उन** का अन्यपुरुष सर्वनाम के रूप मे व्यवहार प्रचलित है, किंतु यह नित्यसंबंधी के रूप में भी मिलता है : **भोजन करत तुष्टि घर उन के** (सूर० वि० ११)। **बिन्** का चलन बाद के गद्य लेखकों तक सीमित है : लल्लू० १२-१३, अष्ट० ९४-१।

विकृत० बहु० **उन** या **बिन** रूपों का प्रयोग धुर पूर्व की भाषाओं को छोड़ कर, लगभग सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे होता है।

१७३ निम्नलिखित अत्यधिक महत्वपूर्ण सयोगात्मक वैकल्पिक रूप है

		आधुनिक ब्रज	प्राचीन ब्रज
'उस'(पुरुष अथवा स्त्री) के लिए	एक०	**बाए, वाए, ग्वाए**	**वाहि**
'उन' के लिए	बहु०	**उनैं, बिनैं, ग्वनैं**	

सयोगात्मक बहुवचन रूपो का व्यवहार नियमित रूप से निश्चयवाचक विशेषण की भाँति नही होता है। केवल एकवचन रूप कभी कभी, किंतु बहुत कम, इस प्रकार की वाक्य रचनाओ मे विशेषण की भाँति प्रयुक्त होता है : **बाए आद्मिऐ दै देओ**।

विकृत रूप वैकल्पिक एक० **बाए** ('उसके लिए') बिना किसी परसर्ग के सपूर्ण क्षेत्र मे मिलता है **बाए आम् दै देओ** . किंतु अपवादस्वरूप बुलदशहर करौली मे **वाए**, पूर्वी सीमान्त जिलो (शा० का० ह०) मे **उसइ** तथा अलीगढ मे **ग्वाए** मिलता है। फरुखाबाद में सयोगात्मक रूप नही मिलता है, किंतु अवधी की भांति **ओहिका** प्रयुक्त होता है।

प्राचीन ब्रज मे **वाहि** प्रचलित है (**वाहि लखै** बिहा० १०९)। छंद की आवश्यकता के कारण यह कभी कभी **उहि** (बिहा० ७७) या **उहिं** (देव० ३, ८२) हो जाता है। इन रूपो पर अवधी का प्रभाव स्पष्ट है। सयोगात्मक वैकल्पिक रूप बहु० **उनैं** का प्रयोग विभिन्न क्षेत्रो मे होता है, विशेष रूप से पूर्व मे (ब० पी० शा० इ० बु० ज० पू०) : **उनै रोटी दै देओ**। जयपुर पूर्व मे कभी कभी **उन्नैं** रूप मिलता है। **बिनैं** रूप मुख्यतया पश्चिम और दक्षिण (आ० धौ० ए० बदा०) मे बोला जाता है, भरतपुर मे **बिनैं** तथा पूर्वी जिलो मे अवधी **उन्हैं** प्रचलित है (ह० का० फ०)। अलीगढ मे **ग्वनैं** रूप का चलन है।

सयोगात्मक वैकल्पिक रूपो का प्रयोग मथुरा, करौली, ग्वालियर पश्चिम मे कम होता है।

सयोगात्मक वैकल्पिक रूप ब्रज की प्रमुख विशेषता है और केवल बुंदेली मे मिलते है : मिलाइए खडीबोली **उसे, उन्हें**।

निकटवर्ती निश्चयवाचक

१७४. ब्रज मे निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए निम्नांकित मुख्य रूप होते है :

		आधुनिक ब्रज	प्राचीन ब्रज
	एक०	***यु, यो, यि, ये,***	
		जु, जौ, जि, जे	***यह***
स्त्री०		***या, जा, गि, गु***	
	बहु०	***ये, जे, गे***	***ये, ए***
विकृत०	एक०	***या, जा, ग्या***	***या***
	बहु०	***इन्, जिन्***	***इन***

निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के मूल० तथा विकृत० रूपो का प्रयोग स्वतन्त्रता-पूर्वक विशेषण की भाँति भी होता है, पृथक् स्त्रीलिंग रूप केवल मूल० एक० मे होते हैं और वह भी आधुनिक ब्रज मे ही।

१७५. मूल० पु० एक० ***जौ*** ('यह') कुछ पूर्वी प्रदेशो तक सीमित है (ब० पी०, कभी कभी म० मे) ***जौ कहा है***। कुछ पूर्व के सीमान्त जिलो मे (शा० ह०) इसका उच्चारण ***जउ*** होता है। ***ये*** दक्षिण तथा पश्चिम के कुछ क्षेत्रो मे मिलता है (म० ज० पू० क०, कभी कभी भ०), किन्तु उसी क्षेत्र के अन्य प्रदेशो मे ***जि*** अधिक प्रचलित रूप है (आ० अ० ग्वा० प० मै० भी, कभी कभी धौ०)। धौलपुर तथा इटावा मे ***जे*** नियमित रूप से प्रयुक्त होता है। ***जु*** मैनपुरी बदायूँ तक सीमित है। ***यु*** बुलदशहर मे प्रचलित है। यह कभी कभी जयपुर पूर्व मे भी मिलता है और वहाँ ***यो*** भी व्यवहृत होता है। अलीगढ मे ***गि*** का, जो कभी कभी बुलदशहर भरतपुर मे भी मिलता है, चलन है। कुछ पूर्वी सीमान्त जिलो मे अवधी रूप मिलते हैं ***इश्रो*** (फ०), ***ई*** (का०), ***यहु यउ*** (ह०, कभी कभी का० मे)।

मूल० स्त्री० एक० ***जा*** का प्रचार अधिकाश ब्रज क्षेत्र मे होता है, विशेष रूप से पूर्व मे . ***जा काकी अम्मा है***। पश्चिम और दक्षिण के कुछ स्थलो मे (म० बु० भ० ज० पू०) ***या*** नियमित रूप है। फर्रुखाबाद मे अवधी रूप ***इश्रा*** तथा पीलीभीत मे ***जह्*** अधिक प्रचलित रूप है। बुलदशहर मे ***गु*** वैकल्पिक स्त्री० रूप होता है। हरदोई तथा कानपुर मे पृथक् स्त्री० रूप नही प्रचलित है।

प्राचीन ब्रज के सभी लेखको मे ***यह*** नियमित रूप से दोनो लिगो मे मूल० एक० की भाँति व्यवहृत हुआ है। ***देखन को यह आई*** (सूर० म० ११), ***यह तौ भगवदीय है*** (गोकुल०९-१६)। ***यही*** कभी कभी निश्चयबोधक रूप मे व्यवहृत होता है · ***इक आइ के आली सुनाई यही*** (देव० २-१४)।

निकटवर्ती निश्चयवाचक का ***य-*** रूप सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे मिलता है। राजस्थानी और पहाडी बोलियो मे ***य*** अपरिवर्तित रहता है, दक्षिण पश्चिम मे ***य-*** के साथ साथ ***उ*** अथवा ***ओ*** के आगम की प्रवृत्ति देखी जाती है और अन्त मे गुजराती मे समस्त रूपो मे ***आ*** हो जाता है। पूर्वी तथा उत्तर पश्चिमी बोलियो मे ***य-*** के साथ ***इ*** अथवा ***ए*** के आगम की प्रवृत्ति है और इस कारण इनमे से कुछ भाषाओ मे अन्त मे शुद्ध ***इ*** या

ए हो जाते है। **य-** का **ज-** मे परिवर्त्तन केवल बुंदेली के साथ साथ ब्रज की एक प्रमुख विशेषता है।

१७६. मूल० बहु० **जे** पूर्व मे अधिक प्रचलित है, किंतु यह पश्चिम तथा दक्षिण के भी कुछ प्रदेशो मे प्रचलित है (ब० बदा० पी० मै० ए० इ०, म०, धौ०, ग्वा० प० कभी कभी भ० का० मे), **जे गाँओं जात् हैं, जे काँ सै आई हैं**। शाहजहाँपुर मे यह **जइ** की भाँति बोला जाता है। पश्चिम तथा दक्षिण मे (म बु० भ० क० ज० पू० का भी) **ये** अधिक प्रचलित है। पूर्व के सीमान्त जिलो मे अवधी रूप अथवा उसका प्रभाव देखा जाता है · **ई** (ह०), **इए** (फ०)। भरतपुर मे वैकल्पिक रूप **गे** होता है।

प्राचीन ब्रज मे मूल० बहु० रूपो का प्रचुर प्रयोग आदरार्थ मे एकवचन के लिए होता है। उसमे **ये** अत्यधिक प्रचलित रूप है . **नन्दहु ते ये बड़े कहैहैं** (सूर० म० ६)। **ए** भी साथ साथ मिलता है, विशेष रूप से बिहारी मे (दे० ६३-६७), किंतु **ऐ** बहुत कम मिलता है (लाल १५-१)।

१७७. विकृत० एक० **जा** अधिकाश ब्रज क्षेत्र मे प्रयुक्त होता है, विशेष रूप से पूर्व मे **जापै चलो नाए जात्**। पश्चिम तथा दक्षिण के कुछ प्रदेशो मे **या** अधिक प्रचलित है (म० बु० कभी कभी क० ज० पू० मे)। अलीगढ मे एक वैकल्पिक रूप **ग्या** होता है। पूर्वी सीमान्त जिलो मे अवधी रूप मिलते है। **एहि** (फ० ह०), **ई** (का०), कानपुर मे वैकल्पिक रूप से प्रयुक्त **जहि ज्यहि** मे अन्तिम **'हि'** अवधी की है।

प्राचीन ब्रज मे **या** का प्रयोग, विभिन्न सबधो को व्यक्त करने मे, अनिवार्य रूप से परसर्ग के साथ होता है : **या में संदेह नाहीं** (लाल ९-२४)।

विकृत० एक० **य-** रूप केवल बुंदेली, पूर्वी हिन्दी की बोलियो तथा मेवाती तक होता है। अन्य भाषाओ मे प्राय: **-ह** से युक्त अथवा बिना **-ह** के **इ-** अथवा **ए-** के आधार पर बने हुए रूप विकसित हुए है। कुछ भाषाओ **-ह -स** के रूप मे मिलता है, मि० खडी० **इस्**।

१७८. विकृत० बहु० **इन्** सपूर्ण ब्रज क्षेत्र मे प्रचलित रूप है **इन् के कै लौंड़ा हैं** अलीगढ मे इसका उच्चारण **इनु** होता है तथा **जिनि** (आ०) और **जिन्** (ग्वा० प० कभी कभी धौ० मे) भी पश्चिम तथा दक्षिण मे मिलते है। फर्रुखाबाद के एक उदाहरण मे **नैं** परसर्ग के साथ **इनन्** प्रयुक्त मिलता है।

प्राचीन ब्रज मे **इन** नियमित रूप है और परसर्गो के साथ विभिन्न सबधो को व्यक्त करने मे प्रयुक्त होता है **इन सों मैं करि गोप तबै** (सू० य० १०)। अवधी रूप **इन्ह** केवल तुलसी मे मिलता है कवि० गी० ४। **इन** कभी कभी बिना परसर्ग के प्रयुक्त होता है, विशेष रूप से बिहारी मे **इन सौंपी मुसकाए** (बिहा० १२८, दे० देव० ३-८२)।

विकृत० बहु० **इन्-** रूप अत्यन्त प्रचलित है और धुर पूर्वी भाषाओ को छोड कर लगभग सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे मिलता है। कुछ भाषाओ मे **-न-** केवल अनुनासिकता के रूप मे विद्यमान है, गढ़० **यूँ**, स्त्री० **एऊँ**।

१७९. निम्नलिखित सयोगात्मक वैकल्पिक रूप सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है :

'इसके लिए'	एक०	***याए, जाए, ज्याय,***	***याहि***
	बहु०	***इनैं, जिनैं***	***इन्हैं***

विकृतरूप वैकल्पिक एक० ***जाए*** (इस पुरुष अथवा स्त्री के लिए) लगभग सभी प्रदेशो मे, विशेष रूप से पूर्व मे, प्रयुक्त होता है : ***जाए आम् दै देओ*** । पश्चिम और दक्षिण के कुछ स्थलो मे (बु० ज० पू० क०, कभी कभी म० ग्वा० प० मे) ***याए*** अधिक प्रचलित रूप है। अलीगढ मे ***ज्याय*** होता है। कुछ पूर्वी जिलों में (शा० ह० का०) खडीबोली रूप ***इसै*** बहुत प्रचलित है। फर्रुखाबाद मे कोई पृथक् सयोगात्मक रूप नही है और वहाँ अवधी रूप ***एहिका*** व्यवहृत होता है। सयोगात्मक एक० ***याहि*** प्राचीन व्रज मे वहुत कम प्रयुक्त होता है : ***जूँठे दोस लगावति याहि*** (सूर० म० ३) । अवधी रूप ***इहिं*** विहारी मे मिलता है ***इहि पाएँ हीं बौराए*** (बिहारी० १९२) । ***इहि*** तथा ***इहिं*** विहारी मे निश्चयवाचक विशेषण के समान भी प्रयुक्त हुए है : ***तजन प्रान इहि बार*** (१५) । सयोगात्मक वैक० बहु० ***इनै*** सभी रूपो मे से अत्यधिक प्रचलित है (ब० पी० इ० मै०, अ० बु०; भ० ज० पू०), ***इनै रोटी दै देओ*** । कुछ पूर्वी जिलो मे इसके उच्चारण मे अवधी रूप का प्रभाव लक्षित होता है . ***इनइँ*** (शा०), ***इन्हैं*** (फ० ह० का०) । एटा मे ***इनें*** रूप है। पश्चिमी रूप ***जिनें*** आगरा, धौलपुर तक सीमित है तथा कभी कभी अलीगढ मे मिलता है। मथुरा, करौली तथा ग्वालियर पश्चिम मे यह बहुत कम मिलता है।

प्राचीन व्रज मे ***इन्हैं*** आदर्श रूप माना जा सकता है ***तू जिन इन्हैं पत्याइ*** (बिहारी० ६६) । लिपि सबधी गडवडी के कारण इसके साथ साथ कई अन्य रूप भी मिलते है : ***इन्हें*** (सूर० य० १८), ***इन्हहिं*** (तुलसी० कवि० गी० ४), जो कदाचित् अवधी ***इन्ह-*** से प्रभावित है, ***इन्हइ*** (लाल० २६-१६), ***इन्हहिं*** (पद्मा० ७-३१) तथा अधिक आधुनिक रूप ***इनें*** (नन्द० २-१३) ।

संयोगात्मक वैकल्पिक रूप व्रज की प्रमुख विशेषता है, मिलाइए खडीबोली के इस प्रकार के रूप ***इसे, इन्हें***।

सम्बन्ध वाचक और नित्यसम्बन्धी सर्वनाम

१८०. इन सर्वनामो के निम्नलिखित मुख्य रूप व्रज मे व्यवहृत होते है :

सम्बन्धवाचक

		आधुनिक	प्राचीन
मूल०	एक०	***जो, जौ***	***जो***
	बहु०	***जो, जे***	***जे***
विकृत०	एक०	***जा***	***जा, जेहि*** इ०
	बहु०	***जिन्***	***जिन***

नित्यसम्बन्धी

मूल०	एक०	*सो, सौ*	*सो*
	बहु०	*सो, ते*	*ते से*
विकृत०	एक०	*ता*	*ता*
	बहु०	*तिन्*	*तिन*

१८१ सबंधवाचक तथा नित्यसबधी सर्वनामों के विभिन्न रूप नियमित रूप से लगभग संपूर्ण ब्रज क्षेत्र में व्यवहृत होते हैं : ***जो गओ हो सो आए गओ, जो जाङ्गे सो आए जाङ्गे, जा सै काम लेओ ता कौ पैसा देओ, जिन् पै पैसा है तिन् पै अकल् नाएँ है।***

किंतु मथुरा मे *जो, सो, जौ, सौ* की भाँति बोले जाते है। मूल० बहु० रूप *ते* नित्यसबधी की भाँति ग्वालियर पश्चिम मे प्रयुक्त होता है। पूर्व के कुछ सीमान्त जिलो मे (ह० का० फ०), अवधी रूप मूल० एक० *जौन् तौन्,* विकृत० एक० *जेहि तेहि* तथा हिन्दी सयोगात्मक वैकल्पिक *जिसै, तिसै; जिन्हैं, तिन्हैं* अधिकता से प्रयुक्त होते है।

दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के भिन्न भिन्न रूपो का प्रयोग सपूर्ण ब्रज प्रदेश के विभिन्न भागो मे होता है *जो गओ हो बो आए गओ* अन्य पुरुष सर्वनाम के रूप साधारणतया सबधवाचक तथा नित्य सबधी दोनो की ही भाँति केवल मूल० बहु० मे कुछ भागो (म०, क० धौ०, मै० ए० बदा०) मे प्रयुक्त होते है : ***बे गए हे बे आए गए।***

इन सर्वनामो के सयोगात्मक वैकल्पिक रूप कुछ भागो मे (म०; क० धौ० मै० ए० ग्वा० प०) बहुत कम प्रयुक्त होते है।

प्राचीन ब्रज मे सबधवाचक सर्वनाम के नियमित रूप मूल० एक० *जो,* मूल० बहु० *जे,* विकृत० एक० *जा,* विकृत० बहु० *जिन* होते है। किन्तु आधुनिक ब्रज के विपरीत प्राचीन ब्रज मे सबधवाचक सर्वनामो मे मूल० एक० तथा बहु० रूपो का अन्तर कड़ाई के साथ व्यवहार मे लाया जाता है · ***जो आवे सो कहै*** (गोकुल १५-१०) ***जे संसार अँध्यार अगर में मगन भये वर*** (नन्द० १-१७)। ***जासु, तासु*** रूप कभी कभी 'जिसके,' 'उसके' अर्थ मे प्रयुक्त हुए पाए गए है।

जो कभी कभी छद की आवश्यकता के कारण *जु* मे परिवर्त्तित कर लिया जाता है ***भ्रू विलसत जु विभूति*** (१-२७, दे० बिहारी० ८३, दास २-८)। अवधी रूप ***जेहि जिहि*** या ***जिहिं*** कभी कभी प्रयुक्त होता है ***जिहि के बस अनिमिष अनेक गए*** (तुलसी० क० २-५; दे० सूर० वि० १३, नन्द० १-९)। करण कारक मे ***ने*** के बिना ***जिन*** बहुधा प्रयुक्त होता है · ***कह्यो तिय को जिन कान कियो है*** (तुलसी० क० २-२०, दे० [illegible] रस० १२)। ***जिननि*** ('जिनरों') लल्लूलाल मे मिलता है · ***जिननि बड़े तीरथनि में अति कठिन तप व्रत किये हैं*** (५-४)। अवधी रूप ***जिन्ह*** बहुत कम मिलता है और उसका प्रयोग प्राय तुलसी तक सीमित है · ***जिन्ह के गुमान सदा सालिम सङ्ग्राम को*** (क०

१-९)। *जासु* तथा *तासु* रूपो का प्रयोग केशवदास मे अधिकता से 'जिस का', 'उसका' के अर्थ मे हुआ है : दे० ३, ३१।

१८२ ***सो*** नियमित रूप से नित्यसबधी की भाँति प्रयुक्त होता है ***सो कैसे कहि आवै जो ब्रज देविन गायो*** (नन्द० ५-२८)। छन्द की आवश्यकता के कारण ***सो*** कभी कभी ***सु*** के रूप मे मिलता है ***दई दई सु कबूल्*** (बिहारी० ५१, दे० सेना० २५)। बहुवचन रूप *ते* बहुत प्रचलित है *ते-ऊ उमगि तजत मर्जादा* (हित० ८) सेनापति ९ मे *ते* एकवचन की भाँति प्रयुक्त हुआ है ***अङ्गलता जे तुम लगाई ते-ई विरह लगाई है***। ***से*** केवल तुलसी मे अधिकता से प्रयुक्त है : ***जे न ठगे धिक से*** (तुलसी० क० १-१)। विकृत रूप एकवचन *ता*, बहुबचन *तिन*, अधिकता से प्रचलित है (सू० म० ११, नन्द० २, ३)। अवधी रूप *तिन्ह* तुलसी मे अधिक प्रयुक्त हुआ है (तुलसी० गी० ३-५; दे० दास १०-४१)।

१८३ कुछ सयोगात्मक वैकल्पिक रूपो का व्यवहार स्वतत्रता से होता है। ये बिना परसर्गो के प्रयुक्त होते है। इनके मुख्य रूप निम्नलिखित है

संबंधवाचक

		आधुनिक	प्राचीन
विकृत रूप	एक०	*जाए*	*जाहि जिहि*
	बहु०	*जिनै*	*जिन्हैं*

नित्यसंबंधी

विकृत रूप	एक०	*ताए*	*ताहि*
	बहु०	*तिनै*	*तिन्हैं*

आधुनिक ब्रज मे *जाए जिनै; ताए तिनै* का बहुत व्यवहार होता है *जाए (जिनै) काम देओ ताए (तिनैं) पैसो देओ*। कुछ पूर्वी सीमान्त जिलो मे (ह० का० फ०) निम्नलिखित खडीबोली के रूप वैकल्पिक ढग से प्राय मिलते है . *जिसै, तिसै; जिन्हैं, तिन्हैं।*

प्राचीन ब्रज मे *जाहि, जिहिं* का प्रयोग समस्त कारको मे बिना परसर्ग के होता है· ***जगत जनायौ जिहिं सकलु*** (बि० ४१), *जिहि निरखत नासें* (नद० १, ८)। बहुवचन मे साधारणतया *जिन्हैं* (दास० १०, ४१), किंतु कभी कभी *जिन्हें* (केशव १, ३, नद० ५, ७४) तथा *जिनहिं* भी मिलता है। साधारणतया नित्यसबधी रूप *ताहि, तिन्हैं* है। छद की आवश्यकता के कारण निम्नलिखित रूप भी व्यवहृत हुए है : *त्यहि* (सूर० वि० १४), *तेहि* (नरो० १५), *तिहि* (दास ४, ५), *तिहि* (नद० ?, ३७), *तिन तिनै* (नद० १, ६२; सूर० य० १, मति० ४४)।

१८४ प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे सबधवाचक तथा नित्यसबधी सर्वनामो के रूप विशेषण के समान भी प्रयुक्त होते है ***जो आदमी गओ हो सो आदमी***

आए गओ इत्यादि; *महावीर ता बंस मैं भयो एक अवनीस्* (भूषण ५), *ए जिहिं रति* इत्यादि।

१८५. सबधवाचक सर्वनाम *जो* या *जु* के रूप लगभग समस्त आधुनिक आर्य-भाषाओं में पाए जाते हैं। पूर्वी आर्यभाषाओं, नेपाली तथा पूर्वी हिंदी की बोलियो मे *जो जे* के साथ *जौन* आदि रूप भी मिलते हैं। विकृत रूप एकवचन *जा* ब्रज तथा बुंदेली की विशेषता है। अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं मे *जे जिस* या *जेहि* रूप मिलते हैं। विकृत रूप बहुवचन *जिन* अत्यन्त व्यापक है और पश्चिमी हिंदी बोलियो के अतिरिक्त मालवी, मेवाती और लहंदा मे मिलता है। दे० पूर्वी रूप *जिन्ह*, पं० *जिन्हाँ* और प० राज० *ज्याँ जाँ*। सयोगात्मक वैकल्पिक विकृत रूप ब्रज तथा बुंदेली की विशेषता है। दे० खडीबोली *जिसे जिन्हें*।

नित्य सबधी *-स* तथा *-त* रूप अन्य पुरुष सर्वनाम तथा विशेषण के समान लगभग समस्त आधुनिक भाषाओ मे, विशषतया पूर्वी भाषाओ तथा गुजराती मे, प्रयुक्त होते हैं। जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है सयोगात्मक वैकल्पिक रूप केवल ब्रज तथा बुंदेली मे ही पाए जाते हैं।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

प्राणिवाचक

१८६. इस सर्वनाम के ब्रज के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं :

		आधुनिक	प्राचीन
मूल०	एक० बहु०	*को, कौन्, कोन्*	*को, कौन, कोन*
विकृत०	एक०	*का, कौन्, कोन्*	*का, कौन*
	बहु०	*किन्, कौन्*	*का, कौन*

मूल० एक० बहु० *कौन्* सामान्यत पूर्व मे प्रयुक्त होता है (ब० बदा० पी० ए०), किन्तु कभी कभी पश्चिम तथा दक्षिण मे मिल जाता है (म० भ० क० ज० पू० धौ०) · *कौन् जात् है, कौन् जात् हैं*। पश्चिम मे (म० आ० अ०) *को* सामान्य रूप है, किन्तु यदा कदा अन्य क्षेत्रो मे भी व्यवहृत होता है (क० धौ० मै० ए० इ०)। दक्षिण मे (भ० ज० पू० क० ग्वा० प०, मै० इ० मे भी) *कोन्* नियमित रूप है। *कून्* बु० तक सीमित है, किन्तु पूर्व के सीमान्त जिलो मे (फ० शा० ह० का०) *कौनु* प्रचलित उच्चारण है।

कौन् तथा *कोन्* परसर्गों के साथ विकृत रूपो की भाँति भी प्रयुक्त होते हैं (दे० § १८७)।

प्राचीन ब्रज मे भी *कौन्* तथा *को* सर्वाधिक प्रचलित रूप हैं और लगभग समस्त लेखको द्वारा साथ साथ प्रयुक्त हुए हैं। पहले का प्रयोग स्वतत्रतापूर्वक विकृत रूप की भाँति भी होता है (दे० § १८७)। अवधी *कौनु* (सेना० १५) तथा *कवन* (नन्द० ४-२२) बहुत कम मिलते हैं। *कोन* तथा *कोंन* भी बहुत कम प्रयुक्त होते हैं और प्रायः गोकुलनाथ तक सीमित हैं : २०-१४, २४-२।

१८७. विकृत० एक० *का* पूर्व में अधिक प्रचलित है (ब० बदा० कभी कभी मैं० मे तथा आ० मे), किन्तु *कौन्* पश्चिम तथा दक्षिण मे नियमित रूप है : *कौन् को छोरा है, रुपइया का पै है*। *कोन्* कुछ क्षेत्रों मे मिलता है (इ० मैं०; कभी कभी धौ० क० मे)। हिन्दी *किस्* पी० मे तथा *कस्* बु० मे मिलता है। कुछ पूर्वी सीमान्त जिलो में (फ० ह० का०) अवधी *केहि* व्यवहृत होता है। कभी कभी यह फ० में *कस्* की भाँति बोला जाता है।

विकृत० बहु० *किन्* साधारणतया पूर्व मे प्रयुक्त होता है, किन्तु दक्षिण तथा पश्चिम के कुछ क्षेत्रो मे भी यह पाया जाता है : *जे किन् के मकान् हैं*। मूल० एक० बहु० तथा विकृत० एक० के रूप मे *कौन्* साधारणतया पश्चिम तथा दक्षिण मे प्रयुक्त होता है (म० आ० अ० भ० ज० पू० क०)।

प्राचीन ब्रज में परसर्गों सहित एक ही रूप विकृत रूप एक० तथा बहु० में प्रयुक्त होते हैं। विशेष विकृत० बहु० रूप *किन्* का प्राय: सर्वथा अभाव है। *का, कौन* विकृत रूपों में सब से अधिक प्रचलित रूप हैं; *कहौं कौन सों* (सूर० वि० ११), *का सौं कहौ* (बिहारी० ६३)। अवधी रूप *केहि* (तुलसी० क० २-६; नरो० ५०) तथा *किहि* (पद्मा० ७-३०) बहुत कम मिलते हैं।

१८८. संयोगात्मक वैकल्पिक रूप निम्नलिखित हैं :

	आधुनिक	प्राचीन
एक०	*कौनै काए*	*काहि, कौने* (करण कारक)
बहु०	*किनैं, कौनैं*	

ये वैकल्पिक रूप अधिकाश ब्रज प्रदेश में मिलते हैं। एक० *काए* पूर्व में प्रचलित है (ब० बदा० ए०, कभी कभी अली० मे) तथा पश्चिम मे *कौनैं* (म० आ० अ० भ० भी) *काए* अथवा *कौनैं दै रहे हौ*। हिन्दी *किसे* रूप के नई रूपान्तर विभिन्न ज़िलों मे मिलते हैं : *किसै* (मैं० पी०) *कसै* (ब०) *किसइ* (शा० इ० का०)। दक्षिण मे (इ० तथा फ० मे भी) ये वैकल्पिक रूप नही मिलते हैं।

बहु० *किनैं* पूर्व मे मिलता है (ब० बदा० पी० इ० मैं०, बु० भी) : *किनै दए रहे हौ*। कुछ जिलो मे यह *किनें* (ए०), *किनइँ* (शा०) तथा *किन्हइ* (फ० ह० का०) की भाँति बोला जाता है। एक० मे भी आने वाला रूप *कौनैं* पश्चिम (बु० को छोड़ कर) और भ० मे प्रयुक्त होता है, जब कि दक्षिण मे इस प्रकार के पृथक् सयोगात्मक बहुवचन रूप नही पाये जाते हैं।

प्राचीन ब्रज में ये वैकल्पिक रूप अधिक प्रचलित नही हैं। *काहि* का प्रयोग अनेक लेखको द्वारा हुआ है, जैसे *रावरे सुजस सम आज काहि गिनिए* (भू० ५०, देखिए दे० ३-५, दास ७-२५)।

कौने करण कारक के अर्थ मे कही कही मिलता है, जैसे *कहि कौने सचुपायो* (हित० १)।

१८९. प्रश्नवाचक सर्वनाम *क-* के रूप समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे पाए जाते हैं। *को* मूलरूप ब्रज, बुंदेली तथा पहाड़ी भाषाओ मे ही मिलते हैं। पहाड़ी मे भी

जौनसरी मे *कूँण* रूप व्यवहृत होता है। *कौन* के भिन्न भिन्न रूप शेष अन्य आधुनिक भाषाओं मे है। पूर्वी भाषाओं में अवश्य *के* रूप विकसित हो गया है। *के* वैकल्पिक रूप से पूर्वी हिंदी बोलियो मे भी मिलता है। उन बोलियो मे पुराना रूप *कवन* भी सुरक्षित है। विकृत रूप एकवचन *का* ब्रज की विशेषता है। मि० मध्य पहाडी *के*। अन्य आधुनिक भाषाएँ या तो मूल रूप का प्रयोग करती है या *किस्* और *केहि* सदृश रूपो का प्रयोग करती है। बहुवचन का रूप *किन्* मेवाती और खडी बोली मे मिलता है; दे० बिहारी *किन्ह*, अवधी *केन्ह*, नैपाली *कुन*। संयोगात्मक वैकल्पिक रूप ब्रज की विशेषता है।

अप्राणिवाचक

१९० प्रश्नवाचक अप्राणिवाचक सर्वनाम के निम्नांकित मुख्य रूप है .

	आधुनिक	प्राचीन
मूल० एक० बहु०	*का कहा*	*का कहा*
विकृत० एक० बहु०	*काहे काए*	*काहे*

मूल रूप *कहा* नियमित रूप से पश्चिम मे तथा पूर्व (ब०, ए०) और दक्षिण (भ०, पू० ज०) के कुछ ज़िलो मे पाया जाता है, जैसे *जो कहा है* ? दक्षिण मे (क०, धौल० प०, ग्वा०) मे *का* अधिक प्रचलित है किन्तु यह पूर्व (इ०, फ०, शा०, पी०, ह०) मे भी पाया जाता है। *कआ* उच्चारण मै० ब० मे पाया जाता है, जब कि *काहा* का० मे पाया जाता है (दे० अवधी *काह*)

प्राचीन ब्रज मे *कहा* का प्रयोग सब से अधिक पाया जाता है, जैसे *मुख करि कहा कहौं* ? (सूर० ५, २६) छन्द की आवश्यकता के कारण *कह* रूप है (जैसे नन्द० ३-८)। *का* का प्रयोग न्यून है (पद्मा० १८-६२)। अवधी रूप *काह* भी बहुत कम पाया जाता है (पद्मा० ७-३०)।

विकृत रूप *काहे* पश्चिम और दक्षिण तथा पूर्वी क्षेत्र के कुछ भागो मे (ब०, ह०, का०, ए०) सामान्य रूप से प्रयुक्त होता है, जैसे *टोपी काहे पै टँगी है* ? पूर्वी क्षेत्र के शेष भाग मे *ह* विहीन रूप *काए* प्रयुक्त होता है। (§ ११४)।

प्राचीन ब्रज मे भी *काहे* सर्वाधिक प्रचलित रूप है जैसे *माधव मोहिं काहे की लाज* (सूर० ५-३२)। गोकुलनाथ मे यह साधारणत *काहै* लिखा गया है (वार्त्ता० ४७-२)।

मूल रूप *का* हिंदी की पूर्वी बोलियो तथा भोजपुरी, मगही और जौनसरी मे पाया जाता है, दे० मराठी *काय*, हिन्दी *क्या*। *कहा* ब्रज तक ही सीमित है; दे० अवधी *काह*। विकृत रूप *काहे* हिंदी की पूर्वी बोलियो तथा विहारी मे भी पाया जाता है, दे० पहाडी *कै* अथवा *के*।

प्रश्नवाचक सर्वनाम के भिन्न भिन्न रूप सम्पूर्ण क्षेत्र मे सर्वनाम मूलक विशेषण की भाँति भी प्रयुक्त होते है।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

१९१. चेतन अथवा अचेतन वस्तुओ के लिए प्रयुक्त होने के अनुसार अनिश्चय-

वाचक सर्वनाम के भी दो प्रकार के रूप पाए जाते है। ब्रज में चेतन पदार्थों के लिए प्रयुक्त मुख्य रूप निम्नलिखित है :

	आधुनिक	प्राचीन
मूल० एक० बहु०	*कोऊ कोई*	*कोऊ कोई*
विकृत० एक०	*काऊ*	*काहू*
विकृत० बहु०	*किनऊँ*	×

मूल० एक० बहु० रूप *कोई* मुख्य रूप से पूरब और दक्षिण तथा पश्चिम के कुछ जिलों (अ०, बु०, क०, कभी कभी म०, भ०, पू० ज०) मे प्रयुक्त होता है, जैसे *कोई जात है।* *कोऊ* पश्चिम और दक्षिण (म०, आ०; भी०, पू०, ज०, धौ०, प०, ग्वा०) दोनो ही भागो मे प्रचलित है।

प्राचीन ब्रज मे *कोऊ* (हित० ७) रूप सर्वाधिक प्रचलित है। *कोई* (नन्द० ३-१९) उतना अधिक प्रचलित नही है। *कोउ* (रास० ४) *कौउ* (सूर० १५) और *कोइ* रूपान्तर छन्द की आवश्यकता के कारण कही कही कर दिए जाते है।

१९२ विकृतरूप एकवचन *काऊ* ब्रज क्षेत्र के बहुत बडे भाग मे प्रयुक्त होता है, जैसे *काऊ पे एक आम है*। मथुरा मे एक वैकल्पिक रूप *केऊ* पाया जाता है। बुलन्दशहर मे *काई* है। फर्रुखाबाद मे अवधी *केहू* मिलता है। अधिकांश पूर्वी सीमा के जिलो (शा०, पी०, ह०, का०) मे खडीबोली हिंदी का सशोधित रूप *किसऊ* प्रचलित है।

विकृत रूप *काहू* परसर्गों सहित प्राचीन ब्रज मे प्रयुक्त होता है, जैसे *काहू के कुल नाहिं विचारत* (सूर० वि० ११)। कभी कभी बिना किसी परसर्ग के भी इस सर्वनाम का प्रयोग होता है, जैसे *अरु काहू चढ़ायो ना* (केशव ३-३४)। *काहू* रूप छन्द की आवश्यकता के कारण हो जाता है, जैसे हित० २३।

विकृत बहु० *किनऊँ* रूप लगभग समस्त ब्रज क्षेत्र मे पाया जाता है, जैसे *किनऊँ पै आम हैं*। खडीबोली हिन्दी का परिवर्तित रूप *किन्हऊ* (शा०) और अवधी *कौनौ* (पू० का०) सीमान्त जिलों तक ही सीमित है।

प्राचीन ब्रज मे कोई पृथक् विकृत बहुबचन का रूप नही पाया जाता।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम *कोई* उत्तरी, पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी भाषाओ मे पाया जाता है। *कोऊ* रूप ब्रज और बुन्देली तक सीमित है। पूर्वी भाषाओ मे प्राय *केऊ* रूप मिलता है।

१९३ अचेतन पदार्थों के लिए प्रयुक्त अनिश्चय वाचकसर्वनाम *कछु* अथवा *कछू* रूप लगभग समस्त क्षेत्र मे प्रयुक्त होता है, जैसे *कछु* (*कछू*) *लै आवौ*। महाप्राणत्व के लोप होने के कारण मैनपुरी मे *कछु* का बहुधा *कचु* की भाँति उच्चारण किया जाता है, करौली मे *कछुक* हो जाता है। खडीबोली और अवधी रूप *कुछ* के अनेक रूपान्तर सीमान्त जिलों में प्रयुक्त होते हैं, जैसे *कछ* (बु०), *कुछू* (फ०), *कुछु* (ह०, का०)। सीधे *कुछ* रूप का प्रयोग विशेष रूप से बदायूँ, बरेली तथा पीलीभीत मे मिलता है।

प्राचीन ब्रज मे ***कछू*** सर्वाधिक प्रचलित रूप है (नन्द० १-३१), ***कछु*** रूप छन्द की आवश्यकता के कारण है (दास २०-३५)। ***कछुक*** बहुत कम पाया जाता है, जैसे ***हित हरिवंश कछुक जसु गावै*** (हित० १७)।

कछु अथवा ***कछू*** रूप बुदेली और भोजपुरी मे पाये जाते है। ***कुछ*** रूप खडीबोली हिंदी की पूर्वी बोलियो, मगही, पजाबी, और लहँदा मे पाया जाता है। दूसरी अधिकांश आधुनिक भाषाओं मे ***किछु*** रूप मिलता है। राजस्थानी मे एक विभिन्न रूप ***काईं*** पाया जाता है।

१९४ निम्नलिखित कुछ शब्द ब्रज मे अनिश्चयवाचक सर्वनाम की भाँति प्रयुक्त होते है :

	आधुनिक	प्राचीन
मूल० एक० बहु०	***और सब सबरे सगरे सिगरे***	***एक और सब***
,, ,, ,, स्त्री०	***सबरी सगरी सिगरी***	
विकृत० बहु०	***औरन सबन सबरिन***	***एकन औरन***
	सगरिन सिगरिन	***सबन***

और तथा विकृत रूप बहु० ***औरन*** का प्रयोग सम्पूर्ण क्षेत्र मे होता है, जैसे ***एक आम हिंयाँ है और कहाँ गओ*** अथवा ***और कहाँ गए।***

सब विकृत रूप बहु० ***सबन*** का प्रयोग साधारणतया पूर्व मे होता है। जैसे, ***सब गए, सबन की जा राए है।***

पश्चिम और दक्षिण मे मूल रूप पु० ***सबरे, सगरे,*** स्त्री० ***सबरी, सगरी*** तथा विकृत ***सबरिन, सगरिन*** साधारणतः प्रयुक्त होते है। पूर्वी सीमान्त प्रदेशो मे ***सगर, सगरिन*** का उच्चारण प्राय ***सिगरे, सिगरिन*** होता है।

एक तथा ***और*** के अनेक रूप अनिश्चयवाचक सर्वनाम की भाँति प्राचीन ब्रज मे पाए जाते है, जैसे ***एक कहैं अवतार मनोज को*** (शिव० ७१)। ***यक*** (नाभा० ३४) रूप छन्द की आवश्यकता के कारण है, जब कि ***एकै*** (दास २-१०) रूप बल देने के लिए है। ***एकनि*** विकृत रूप बहुवचन है, जैसे ***एकनि कौं जस ही सों प्रयोजन*** (दास० २-१०)। ***और*** का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है, जैसे ***जीभ कछू जिय और*** (पद्मा० १३-५७)। ***और*** का विकृत रूप बहुवचन ***औरन*** है, जैसे ***औरन को कलु गो*** (कविता० ४-१)। प्राचीन ब्रज मे ***सब*** रूप बहुत मिलता है जैसे ***कान्ह मोहत सब को मन*** (नन्द० १-४४)। ***सबु*** रूप कुछ ही स्थलों मे मिलता है (वि० ४१)। ***सब*** का विकृत रूप बहुवचन ***सबन*** है। कुछ स्थलों पर ***सबनि*** रूप करण कारक मे परसर्ग के बिना प्रयुक्त होता है, जैसे ***सबनि अपनपौ पायो*** (सू० वि० १७)। ***सबै*** (सूर० य० १०) और ***सबहिन*** (नन्द० १-५९) रूप बल देने मे प्रयुक्त होते है।

१९५ अनिश्चयवाचक सर्वनाम के भिन्न भिन्न रूप विशेषण के समान भी प्रयुक्त होते है : ***कोई आदमी आओ; कछु तरकारी मो कौ दै देओ; सब जने जांगे।***

निजवाचक तथा आदरवाचक सर्वनाम

१९६. आधुनिक ब्रज में ***आप अपना*** रूप निजवाचक सर्वनाम के समान सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र मे प्रयुक्त होते है, जैसे ***आप*** अथवा ***अपना तौ चल नायँ पाउत।***

आप का बहुवचन की क्रिया के साथ आदरवाचक प्रयोग बहुत ही कम होता है। यह प्राय: नगर की शिष्ट जनता तक ही सीमित है।

इस सर्वनाम से निम्नलिखित संबधवाचक विशेषण बने है : पु० एक० ***अपनो***, पु० बहु० ***अपने***, स्त्री० ***अपनी : अपनो काम आप करनो चइयै; अपने बैल कौं हैं ? अपनी रोटी कौं हैं ?***

प्राचीन ब्रज मे निजवाचक सर्वनाम तथा विशेषण के समान नीचे लिखे रूप प्रयुक्त होते है :

सर्वनाम : ***आप आपु***

विशेषण : ***आपनो आपने आपनी; अपनो अपने, अपनी***

इनमे से कुछ के उदाहरण नीचे दिए जाते है

आप, जैसे ***आप खाय तो सहिये*** (सूर० म० ८)

आपु, जैसे ***आपु भई बेपाइ*** (बिहारी ४४)

आपने, जैसे ***देखौ महरि आपने सुत कौ*** (सूर० म० २)

आपने मन में बिचारे (गोकुल० ७-१)

आपनी, जैसे ***जहाँ बसे पति नहीं आपनी*** (सूर० म० ९)

अपनो, जैसे ***अपनो गाँव लेहु नँदरानी*** (सूर० म० ८)

गोकुलनाथ मे ***अपनों*** तथा ***अपनौ*** रूप भी पाया जाता है (गो० १०,१४; २२,१५)

अपने, जैसे ***अपने घर को जाउ*** (नन्द १-९२) ***अपने सेवक सों कह्यउ*** (बिहा० २);

अपनी जैसे ***तजी जाति अपनी*** (सूर० वि० १६, दे० नन्द० ५-३२, गोकुल १०५)

अवधी ***आपन*** रूप केवल तुलसी द्वारा ही प्रयुक्त हुआ है, जैसे ***फल लोचन आपन तौ लहिहैं*** (तु० क० २-२३)

अपनो आप जैसे ***अपनो आप कर लेउँगो*** (गोकुल ३२-१५)

निज जैसे ***जो लक्ष्मी निज रूप रहत चरनन सेवत नित*** (नन्द १-२७)

परस्पर जैसे ***मंद परस्पर हँसी*** (नन्द १-९१)

प्राचीन ब्रज मे ***आप*** तथा ***आपु*** के अतिरिक्त आदरवाचक सर्वनामूलक विशेषण ***रावरो, रावरे, राउरे, रावरी,*** जिनकी उत्पत्ति भोजपुरी से है (दे० भोज० ***रउवाँ, रउरा***), बाद के लेखकों द्वारा प्रयुक्त पाए जाते है। सम्भवत. यह रूप ब्रज मे अवधी से तुलसीदास जैसे लेखको द्वारा आए।

इनमे से कुछ मुख्य रूपो के उदाहरण नीचे दिए जाते है

आप, जैसे ***आप....मति बोलौ*** (गोकुल० २२, १५)

आपु जैसे *आपु लगावात भौर* (सूर० म० ९, दे० तुलसी क० १-१९, सेना० १९)

अवधी *आपुन* का व्यवहार कम पाया जाता है, जैसे *धनि सु जु आपुन लहिये* (केशव २-१४)

रावरो जैसे *रावरो सुभाव* (तु० क० २-४; दे० देव० ३-२५, घन० १)

रावरे जैसे *रावरे सों साँची कहौं* (तु० क० २-८; दे० क० २१-१, सेना० ३०, १६, बिहारी १८५, भू० ५०, घना० ११)

रावरी, जैसे *रावरी पिनाक मैं सरीकता कहाँ रही* (तु० क० १-१९; दे० मति० १०३; घना० १६)

मैं उमिरि दराज राज रावरी चहत हौं (पद्मा० २-६)

राउरे, जैसे *राउरे रंग रंगी अँखियान में* (पद्मा० १३-५६)

भोजपुरी तथा उत्तरी पश्चिमी भाषाओ को छोडकर निजवाचक तथा आदरवाचक सर्वनाम का *आप* रूप आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे प्रचलित है। भोजपुरी मे आदरवाचक के लिए *रउरा* रूप प्रयुक्त होता है। उत्तरी पश्चिमी बोलियो मे या तो आदरवाचक रूप प्रयुक्त ही नही होते अथवा भिन्न रूपो मे प्रयुक्त होते है।

संयुक्त सर्वनाम

आधुनिक ब्रज मे सयुक्त सर्वनाम बहुत अधिक प्रचलित है। सबधवाचक सर्वनाम के विभिन्न रूप *कोई* तथा *कोऊ* के अनेक रूपो से सयुक्त कर के प्रयुक्त होते है जैसे, *जो कोई काम करै वौ आए जाए* अथवा *जिन किनउँ पै पैसा होयँ बे लाबैं।*

सब रूप *कोई* तथा *कोऊ* के विभिन्न रूपो के साथ सयुक्त हो कर प्रयुक्त होता है, जैसे *सब कोई खेलन कौं जात हैं; सब काऊ पै तौ पैसा है नायँ; मेरे पास सब कछु है।*

सब पुरुषवाचक सर्वनामो के साथ भी सयुक्त होता है, जैसे *तुम सब काँ गए हे ?*

और रूप *कोई* तथा *कोऊ* रूपो अथवा *सब* रूप के साथ सयुक्त होता है, जैसे *और कोई आओ, और कछु है, और सबन कौं* दै देओ।

प्राचीन ब्रज मे सबंधवाचक तथा अनिश्चयवाचक सर्वनामों के संयुक्त रूप व्यवहृत हुए है। संयुक्त सर्वनामो का व्यवहार प्राचीन ब्रजभाषा में बहुत कम मिलता है। उदाहरण *जेते कछु अपराध* (सूर० वि० ७), *सब किनहूँ* (नन्द० १-५८)।

सर्वनाममूलक विशेषण

१९८. दूरवर्त्ती तथा निकटवर्त्ती निश्चयवाचक, संबंधवाचक, नित्यसंबंधी तथा प्रश्नवाचक सर्वनामों के आधार पर विशेषण भी बनाये जाते हैं। ये प्रकारवाचक, परिमाणवाचक तथा संख्यावाचक होते है। सर्वनाममूलक विशेषणो के कुछ उदाहरणों के लिए देखिए §§ १६१, १६७, १६८, १७४, १८३; १८६-१९१, १९५, १९६।

प्रकारवाचक विशेषण

आधुनिक ब्रज मे निम्नलिखित रूप प्रचलित है:

ऐसो, वैसो, जैसो......तैसो, कैसो

पश्चिमी क्षेत्र मे समस्त रूपों मे अन्तिम ओ औ हो जाता है (§ ९३)। पूर्वी जिलो में *वैसो* के लिए कभी कभी *उइसो* भी प्रयुक्त होता है।

प्राचीन ब्रज मे अधिक प्रचलित रूप नीचे दिए जाते है: *ऐसे हाल मेरे घर में कीन्हें* (सूर० म० ५), *ऐसी सभा* (भू० १५), *ऐसो ऊँचो* (भू० ५९) *ऐसे कृपा पात्र* (गो० ५-१६), *ऐसो पण्डित* (लल्लू० ६-९), *तैसो फल* (लल्लू० १४-१६), *कैसे चरित्र किये हरी अबहीं* (सूर म० ३), *कैसो धर्म* (नन्द १-१०२),

परिमाणवाचक विशेषण

आधुनिक : *इत्तो, उत्तो, जित्तो-तित्तो, कित्तो*

पश्चिमी क्षेत्र मे *एतो, ओतो, जेतो-तेतो, केतो* रूप साधारणतः प्रयुक्त होते है।

प्राचीन ब्रज मे परिमाण वाचक विशेषण बहुत कम प्रयुक्त होते है,

इती चतुराई (सू० म० ११), *इती छबि* (भू० ८०)

बिथा केती-यो (सेना० २-९)।

संख्यावाचक विशेषण

आधुनिक : *इत्ते, उत्ते; जित्ते, तित्ते; कित्ते*

पश्चिमी क्षेत्र में *एते, ओते* अथवा *वेते, जेते-तेते, कैते* रूप साधारणत. प्रचलित है।

आगरा तथा उसके आसपास के क्षेत्रो मे *इतेक, बितेक, जितेक, उतेक* (भ०), *कितेक* (क०) रूप पाए जाते है।

प्राचीन : *एते कोटि* (सू० वि० ७), *एते हाथी* (भू० १०), *एती बातै* (सेना० २-२१), *एते परपंच* (सेना० २-३०); *विरुधी तन जेते* (नन्द० १-२४); *जेतिक द्रुम जात* (नन्द० १-३१); *जेते* (भू० १०); *जितेक बातैं* (लल्लू०) *तेते* (नन्द० १-२४), *कैउक वचन कहै नरम* (नन्द० १-८९); *केउक* (भू० ५०); *केती बातें* (भू० ५०)।

*

८. परसर्ग

१९९. कर्त्ता को छोड कर अन्य कारको के अर्थो को संज्ञा तथा सज्ञा, सज्ञा तथा विशेषण और सज्ञा तथा क्रिया के बीच परसर्ग की सहायता के द्वारा प्रकट किया जाता है। संज्ञा अथवा सर्वनाम के विकृत रूपो अथवा विकृत रूप न होने पर उनके मूल रूपो मे सयुक्त किए जाने पर परसर्ग इन अनेक सम्बन्धो के द्योतक होते है।

ब्रजभाषा मे निम्नलिखित मुख्य परसर्ग प्रयुक्त होते है

आधुनिक	प्राचीन
कौ, कौं; कूँ कू	*को, कों; कौ, कौ; कूँ, कुँ*
मैं	*में, मैं*
पै	*पै पर*
नैं	*ने, नै, नें*
सै, सैं, से, सूँ	*सों, सौ*
तै, तैं, ते	*तें, ते*

२०० आधुनिक ब्रज मे कौ रूप साधारणत पूर्वी जिलो ब०, बदा०, इ०, फर्रु०, पी० मे अधिक तथा मै०, ए० मे कुछ कम तथा पश्चिमी जिलो (म०, आ०, बु०) मे कम प्रयुक्त होता है, जैसे ***बौ गाँव कौ जात है, बौ लौंड़ा कौ आम देत है।*** शाहजहाँपुर मे ***कौ*** के स्थान पर ***कउ*** उच्चारण होता है (§ ९७)। ***कौं***, जिसे प्रधान रूप माना जा सकता है, पश्चिम (म०, आ०, प०, ग्वा०, मै०) मे प्रयुक्त होता है। ***कूँ*** साधारणतया दक्षिण (भ०, पू० ज०, क०, धौ०, अ०) मे तथा कभी कभी पश्चिम (म०, आ० बु०) मे प्रयुक्त होता है (दे० पजाबी, ल०, सम्प्रदान ***नूँ***, राजस्थानी अपादान ***सूँ***) हिन्दी ***को*** के सादृश्य पर ही सम्भवत निरनुनासिक ***कू*** रूप है, जिसका प्रयोग उत्तरी सीमा के ज़िले बुलन्दशहर तक ही सीमित है, किन्तु कभी कभी पश्चिम तथा दक्षिण (क०, म०, आ०) मे भी पाया जाता है।

अवधी रूप ***का*** पूर्वी सीमा के कुछ जिलो (ह०, का०) तक सीमित है। कभी कभी पू० शाहजहाँपुर मे एक दूसरा अवधी रूप ***कइहाँ*** पाया जाता है।

दक्षिण के कुछ जिलो मे कुछ अन्य रूप प्रचलित है, जैसे ***काए*** (धौ०), दे० अवधी ***का कइहाँ***, ***केनी*** (पू० ज०), दे० राज० ***कनइ*** सि० काव्य ***कने***, कुमा० ***कणि***, गढ० मनि। ***नै*** रूप भी मिलता है जो वास्तव मे राजस्थानी है। ***लूँ*** (भ०) रूप केवल पुरुष-वाचक सर्वनामों के साथ पाया जाता है, जैसे ***हम लूँ, तो लूँ***। यह रूप ***न*** रूप ही मालूम पडता है जिसमे ***न-ल-*** मे परिवर्तित हो गया है (§ १०६), दे० बुदेली ***लाने***, मराठी ***ला***, नेपाली ***लाइ***। बुलन्दशहर से लिए गए एक गूजर की बोली के नमूने मे ***नें*** पाया

जाना है, जैसे *लत्तान नें देही तै अलग करतो रयो*। यह कोई असाधारण बात नही है, क्योंकि *नइ* पड़ोस की मेवाती, तथा गूजरो से बसे हुए बॉगरू क्षेत्र मे प्रयुक्त होता है, और गुर्जरी मे *न* के रूप मे अब तक पाया जाता है। -*एं*, अनुनासिकता हिन्दी के करण कारक के रूप *नें* के प्रभाव के कारण हो सकती है।

प्राचीन ब्रज मे *को* सर्वाधिक प्रचलित रूप है, जब कि *कौं* रूप भी कम प्रचलित नही है, जैसे *मुख निरखत शशि गयो अंबर को* (सू० य० ६), *भजौ ब्रजनाथ कौ* (हित० ६) यह ध्यान देने योग्य है कि ब्रज क्षेत्र मे आजकल *को* और *कौं* रूप प्रधान रूप से प्रचलित नही है।

लल्लू लाल ने अपनी ब्रजभाषा की रचनाओ मे बराबर *कौं* का प्रयोग किया है। साधारण पश्च अर्द्ध-विवृत स्वर जिसका उच्चारण ब्रज मे होता है (§ ९३) देवनागरी लिपि मे नही पाया जाता। अत· यह या तो *ओ* अथवा *औ* लिपि चिह्न के द्वारा प्रकट किया जाता है। इसलिए लेखको का पहले मूल स्वर *ओ* का चुनना अधिक स्वाभाविक है। दूसरा रूप *औ* स्पष्ट सयुक्त स्वर है। सम्भव है *ओ* रूप के चुनाव पर खडी बोली के *को* का कुछ प्रभाव हो। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से *कौ* तथा *को* मे बाद वाला रूप प्राचीन नही कहा जा सकता।

कौ (लल्लू० १०-८) और *कौं* (लल्लू० ३-२) रूप प्राचीन ब्रज मे अधिक प्रचलित नही है। जैसा कि ऊपर कहा गया है ये रूप आधुनिक ब्रज मे साधारणतया प्रयुक्त होते है। *कूँ* और *कुँ* (गोकुल ५१-८) प्राचीन ब्रज मे बहुत कम प्रचलित है। *कूँ* २५२ वार्ता मे सर्वत्र पाया जाता है, किंतु यह ग्रथ गोकुलनाथ की रचना नही जान पडती (§ ४६)। अवधी रूप *कहँ* कुछ लेखकों की कृतियो मे कही कही पाया जाता है, जैसे *फल पतितन कँह ऊरध फलन्त* (केशव० १-२६; दे०, भूषण० २)।

हिन्दी की अधिकाश बोलियो के समान ही ब्रजभाषा मे भी परसर्ग *क*– पाया जाता है। बॉगरू मे *न*- रूप पाया जाता है, जो पजाबी, राजस्थानी के समान है। नेपाली को छोड कर, जिसमे *ल* रूप है, शेष समस्त पहाडी बोलियो मे तथा पूर्वी भाषाओ मे भी *क*- रूप है। पूर्वी, राजस्थानी और सिधी मे यह एक वैकल्पिक रूप की भॉति प्रचलित है।

२०१ आधुनिक ब्रज मे *मैं* तथा *पै* बिना किसी रूपान्तर के समस्त ब्रज क्षेत्र मे प्रयुक्त होते है, जैसे, *सिन्दूक मैं कपड़ा धरे हैं, सिन्दूक पै लोटा धरो है।* पूर्वी सीमान्त जिलों (शा०, ह०, का०) मे अवधी रूप *माँ* तथा *मा* साधारण रूप मे प्रचलित है, जैसे *अम्मा का खेत माँ बैठार आए।*

प्राचीन ब्रज मे सयोगात्मक रूप (§ १५४) स्वतन्त्रता से प्रयुक्त होते है, किन्तु उनके साथ ही साथ परसर्गो का प्रयोग भी पर्याप्त प्रचलित है। ऐसे रूपो मे खडीबोली हिन्दी का *में* रूप सर्वाधिक प्रचलित है। इससे कुछ ही कम *मैं* रूप प्रचलित है, जैसे *ब्रज में* (सू० म० १), *सरित मैं* (भूषण १)। *मे* (दे० २-९) और *मै* (सेना० ५) रूप बहुत कम पाए जाते है। ये रूप पोथी लेखक अथवा प्रूफ देखने वाले की असावधानी के कारण हो सकते है। प्राचीनता के द्योतक निम्नलिखित रूप कभी कभी प्रयुक्त हुए है, *माहिँ*

(मति० ३८), ***माहि*** (भू० ९), ***माँहिं*** (लल्लू० १-१६), ***माहीं*** (नन्द० ३-१७)। अन्तिम रूप छन्द की आवश्यकता के कारण है। निम्नलिखित रूपों में हम अवधी (अवधी ***महँ, मों***; दे० भोज० ***मों***) का प्रभाव पाते हैं ***माँह*** (बिहारी १०२), ***माह*** (दे० १-१४), ***मँह*** (केशव १-७), ***मों*** (नरो० ९, तुलसी० क० १-२), ***माँझ*** (नन्द० १-८३), मति० ७२), ***मँझारन*** (रस० १, दे० प्राचीन अवधी ***मँझिआरा***) तत्सम अथवा अर्द्ध तत्सम रूप ***मधि*** (भू० १५) और ***मध्य*** (लल्लू० २-१) कही कही पाए जाते हैं।

पै तथा ***पर*** रूपो का प्रयोग भी पर्याप्त मिलता है, जैसे ***आनन पै*** (नाभा० ५०), ***रूप पर*** (सूर० य० ९)। ***पैं*** (घना० ९) तथा ***ऊपर*** (हित० ७) रूपान्तर बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं। ***पैं*** रूप की अनुनासिकता कदाचित् ***मैं*** तथा अन्य परसर्गों के रूपो के सादृश्य पर है। ***पें*** का प्रयोग २५२ वार्ता (अष्टछाप ९४, १४) तक ही सीमित है।

परसर्गों के ***म-*** तथा ***प-*** रूप पूर्वी भाषाओ (बगा०, आसा०, उडि०) को छोडकर, जिनमे सयोगात्मक रूपो का प्रयोग होता है, प्राय· समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे पाए जाते है। उत्तरी-पश्चिमी भाषाओ (पजा०, लह०) मे एक विभिन्न प्रकार का परसर्ग (***विच, इच***) प्रयुक्त होता है, दे० हिंदी ***बीच***।

२०२ परसर्ग ***नैं*** केवल भूतकाल मे सकर्मक धातु के कर्त्ता के पश्चात् ही प्रयुक्त होता है। ***नैं*** रूप सम्पूर्ण क्षेत्र मे प्रयुक्त होता है, जैसे ***बा नैं रोटी खाई।*** बुलन्दशहर मे स्वर की अनुनासिकता स्पष्ट न होने के कारण ***नै*** रूप है (§ ७०)। खडीबोली ***ने*** का उच्चारण भी विशेषतया कुछ पूर्वी जिलो (फ०, शाह०) मे सुना जाता है।

पडोस की अवधी बोली की भाँति, यह परसर्ग पूर्वी सीमा के कुछ ज़िलो (हर०, कान०) मे बहुत कम प्रयुक्त होता है, जैसे ***कुत्ता टाँग नोचि लई*** (हर०)।

ऐसे उदाहरण जिनमें सामान्यतः इस परसर्ग का प्रयोग होना चाहिए था किन्तु किया नही गया, कही कही दूसरे क्षेत्रो मे भी देखे गए है, जैसे ***बिन आदमिन कही*** (धौ०), ***गौर उतै से और दबदबा दओ*** (फ०) ***न्योरा कई*** (इ०) ***मुंसी दस रुपया दै दिए*** (बु०) ***हम कई औ तू न मानी*** (धौ०)।

दूसरी ओर, विशेषतया कुछ पूर्वी जिलो (मै०, इ०, ए०) के कतिपय उदाहरणो मे। साधारण प्रयोग के विपरीत ***नैं*** का प्रयोग मिलता है, जैसे ***हंस औ हंसिनी नैं उड़ दओ*** (मै०), ***किसान नैं हर ठाड़ो करि कै भजो*** (ए०), ***सो उननैं चल दओ*** (इ०), ***न्यौरा नै गधइया पै बैठ लओ*** (इ०)। उपर्युक्त गडबडी परसर्ग महित तथा परसर्ग रहित दोनो प्रकार की रचनाओ का एक दूसरे पर प्रभाव लक्षित करती है।

प्राचीन ब्रज मे करण कारक का भाव सज्ञा अथवा सर्वनाम के मूल अथवा विकृत रूप के साथ बिना किसी परसर्ग के प्रयोग द्वारा व्यक्त किया जाता था (§ १५३)। ***ने*** के अनेक रूपो का प्रयोग प्राचीनतम कृतियो (१६ वी शती) तक मे पाया जाता है, यद्यपि यह अधिक प्रचलित नही रहा।

ऐसे रूपो मे हिन्दी रूप ***ने*** सर्वाधिक प्रचलित रूप है, जैसे ***महाप्रभून ने*** (गोकुल० २-१२)। ***नै*** रूप कही कही प्रयुक्त हुआ है, जैसे ***तिनके घर बास दरिद्र नै कीनो*** (न०

१५)। कदाचित् ***में*** आदि जैसे अन्य रूपों के सादृश्य के कारण अनुनासिक रूप ***नें*** भी साथ ही साथ बराबर पाया जाता है, जैसे ***राजा नें कह्यौ*** (लल्लू० ६-८)। ***नें*** ब्रज का विशुद्ध रूप माना जा सकता है।

हिन्दी की समस्त पश्चिमी बोलियो मे पाया जाने वाला यह परसर्ग ब्रज मे भी मिलता है। यह मराठी, गढ़वाली, गुर्जरी तथा पंजाबी मे भी पाया जाता है। पजाबी मे अब बहुधा इसका प्रयोग कम किया जाने लगा है। वैकल्पिक रूप मे इस परसर्ग का प्रयोग राजस्थानी की मेवाडी तथा मालवी बोलियो मे होता है, जिनमे इसका अर्थ 'लिए' के समान भी होता है। पूर्वी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे इस परसर्ग का प्रयोग बिल्कुल ही नही होता। नैपाली और कुमॉयुनी बोलिया ***ल-*** रूपो का प्रयोग 'द्वारा' तथा 'लिए' अर्थों मे करती है।

२०३ परसर्गों के अनेक रूप 'द्वारा', 'साथ' अथवा 'से' आदि का भाव प्रकट करने के लिए निम्नलिखित प्रकार से प्रयुक्त होते हैं। ***सै*** साधारणतया पूर्वी क्षेत्र मे (ब०, ए०, ब०, पी०, इ०, कभी कभी मैं०, फ०, तथा भर० मे भी) प्रयुक्त होता है, जैसे ***बौ चक्कू सै आम काटत है, बौ छत्त सै गिर पड़ो*** । आगरा और पूर्वी जयपुर मे कभी कभी अनुनासिक रूप ***सैं*** (§ ९५) पाया जाता है। खड़ीबोली हिन्दी की भाँति अवधी उच्चारण ***से*** पूर्वी सीमा के ज़िलो (फ०, शा०, ह०, का०) तक ही सीमित है। राजस्थानी रूप ***सूँ*** साधारणतया करौली मे तथा कभी कभी कुछ पश्चिमी जिलो (म०, आ०, बु०) मे प्रयुक्त होता है। निरनुनासिक उच्चारण ***सू*** बुलन्दशहर मे ही पाया जाता है।

तै (तुलनार्थ पजा० ***ते***) रूप पश्चिमी क्षेत्र (म०, आ०, भ०; मैं० भी) मे साधारणतया प्रचलित है। इसका प्रयोग कभी कभी पू० ज०, धौ०, बु० तथा बदा० मे भी होता है। इसका उच्चारण ***तैं*** (बु०, धौ०, बदा०) और ***ते*** (साधारण रूप से अ०, पू० जय०, धौ०, ग्वा० मे तथा कभी कभी आ०, भ०, बु०, इ०, ह०) की भाँति भी होता है। धौलपुर से लिए गए एक उदाहरण मे ***तनैं*** (तुलनार्थ अव० ***सेनी***) पाया गया है, जैसे ***पीछे तनैं जबाब दयो है।*** अवधी रूप ***सेती*** तथा ***सन*** कभी कभी पूर्वी सीमा के जिलो (का०, पू० ह०) मे पाए जाते है।

प्राचीन ब्रज मे इस प्रकार के अनेक उदाहरण पाए जाते है जिनमे 'द्वारा', 'साथ' अथवा 'से' का भाव व्यक्त करने के लिए सयोगात्मक रूपो का प्रयोग हुआ है (§ १५४), फिर भी परसर्गों का प्रयोग अधिक पाया जाता है। सब से अधिक पाया जाने वाला रूप ***सों*** है, ***सौं*** रूप कम पाया जाता है, जैसे ***सोवत लरिकन छिरकि मही सों*** (सू० म०), ***सब सौं हित*** (हित० १२)। यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजस्थानी ***सूँ*** से मेल रखते हुए भी ये रूप आधुनिक ब्रज क्षेत्र मे प्रयुक्त नही होते। ब्रज क्षेत्र मे ***सै*** का प्रयोग आधुनिक काल मे अधिक बढ रहा है, यह कदाचित् विशुद्ध हिन्दी रूप ***से*** के प्रभाव के कारण है। निम्नलिखित ***स-*** रूप बहुत कम पाए जाते है . ***सौ*** (रस० ९), ***सो*** (सेना० १८), छद की आवश्यकता के कारण ह्रस्व रूप ***सुँ*** (नन्द० १-३०), ***से*** (नन्द० १-९४), ***सें*** (देव १-३३)।

दूसरे अत्यधिक प्रचलित रूप ***तें*** तथा ***ते*** है, जैसे ***तातें*** (हित० ५) ***दिन द्वैक ते*** (पद्मा० ८-३५)। ***तैं*** (बिहा० ३, मति० २६) तथा ***तै*** रूप कम प्रचलित है।

स- परसर्ग के रूप पश्चिमी खड़ीबोली को छोड़ कर हिन्दी की समस्त बोलियो मे तथा राजस्थानी और बिहारी मे प्रचलित है। ***त-*** रूप पश्चिमी खड़ी बोली, पंजा०, लहँ०, गढ० तथा गुर्ज० मे पाए जाते है। इस प्रकार ब्रज की स्थिति अन्तर्वर्त्ती है, जिसमे दोनो रूपो का प्रयोग बराबर होता है। दोनो ही प्रकार के रूपों का साथ साथ प्रयोग सिंधी, मेवा० तथा भोजपुरी और हिंदी की पूर्वी बोलियो मे (जो साधारणतया दोनो के प्रभाव मे आई है) मिलता है। यह असाधारण है कि ***त-*** रूप खड़ीबोली क्षेत्र मे प्रचलित नहीं हुआ।

२०४ ब्रज मे परसर्ग ***को*** संज्ञा तथा सर्वनाम के साथ, जिसके बाद ही यह प्रयुक्त होता है, विशेषण हो जाता है तथा विशेषता प्रकट करने वाली संज्ञा के अनुसार ही उसमे लिंग तथा कारक बदल जाते है। अतएव पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग के लिए उसमें विभिन्न रूप है। दोनो लिंगो के लिए एक उभय विकृत रूप भी है। इसके निम्न-लिखित मुख्य रूपान्तर है

पुल्लि० मूलरूप एक० ***को, कौ; कों*** (अन्तिम रूप केवल प्राचीन ब्रज मे)
पुल्लि० मूल० बहु० तथा
विकृत० एक० बहु० ***के, कै; कैं*** (अंतिम रूप केवल प्राचीन ब्रज मे)
स्त्री० मूल० विकृत एक० बहु० ***की***

आधुनिक ब्रज मे पुल्लिंग मूल० रूप एक० ***को*** साधारण रूप से पूर्व तथा दक्षिण मे प्रयुक्त होता है तथा पश्चिम (म० बु०) मे कम प्रयुक्त होता है, जैसे ***जा बैअरबानी को दूलौ कौं है।*** पश्चिम मे साधारण रूप ***कौ*** है, (§ ९३) जो कभी कभी दक्षिण (क० प० ग्वा०) के कुछ भागों मे पाया जाता है। अत यह विशुद्ध ब्रज रूप कहा जा सकता है। पूर्वी सीमा के कुछ जिलो (इ० का०) मे अवधी रूप ***का क*** भी ***को*** के साथ ही साथ प्रयुक्त होते है।

पुल्लि० मूलरूप बहु० तथा विकृत रूप एक० बहु० ***के*** प्राय सम्पूर्ण क्षेत्र मे प्रयुक्त होता है। पश्चिमी जिलो मे इसका उच्चारण ***कै*** (§ ९३) के समान होता है। जैसे ***इन पेड़न के फल कैसे होत हैं, अन्नू के बेटा सै रैहलू लै आबो, जा बाग के पेड़न पै फूल आये हैं।***

स्त्री०, मूल०, विकृत० एक०, बहु० ***की*** के सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र मे कोई रूपान्तर नही होते, जैसे ***चमेली की अम्मा कौं गई ? उनकी सब लौंड़ियन को ब्याह हुइ गओ।***

सामान्य रूप से प्रयुक्त होते हुए भी कुछ उदाहरणो में इस परसर्ग का प्रयोग नही होता, जैसे ***ठगन नगरिया पड़ैगी*** (बा०) ***समुन्दर बा पार जादू नईँ चल्त है*** (धौ०)।

प्राचीन ब्रज मे भी मूलरूप एक०, पुल्लि० के लिए ***को*** तथा कभी कभी ***कौ*** पाया जाता है, जैसे ***सत्य भजन भगवान को*** (नगो० ८), ***भूप नाह कौ बंश*** (लाल० २-११)।

कों रूप अपेक्षाकृत कम व्यवहृत होता है (गोकुल ६-३, देव० १-३)। ***का*** भी दो एक स्थलो पर मिलता है (लल्लू० १-४) किन्तु यह स्पष्टतया खडी बोली के प्रभाव के कारण है।

के समस्त रूपो मे सर्वाधिक प्रचलित रूप है। इससे कुछ ही कम प्रयुक्त होने वाला ***कै*** है, किन्तु ***कें*** (मति० ४४) तथा ***कैं*** (बिहा० २५) बहुत कम पाए जाते है, जैसे ***बासन घर के*** (सू० म० ५); ***ता कै भयो*** (लाल० ३-२)।

की के कोई रूपान्तर नही होते, जैसे ***बात कहौं तेरे ढोटा की*** (सूर० म० ४)। छन्द की आवश्यकता के कारण कभी कभी ***की कि*** मे परिवर्तित हो जाता है। (हित० ०३, भूषण २५ मे ***की*** मिलता है किन्तु यह छन्द के कारण उच्चारण मे ह्रस्व है)।

यह उल्लेखनीय है कि लल्लूलाल ने अपने ब्रजभाषा व्याकरण मे इस परसर्ग के ***कौ, के*** तथा ***की*** रूप दिए है।

विशेषण का अर्थ देने वाले परसर्ग ***क-*** के रूप हिन्दी की समस्त बोलियो मे पाए जाते है साथ ही बिहारी, पू० राजस्थानी, पहाडी तथा गुर्जरी मे भी मिलते है।

संयुक्त परसर्ग

२०५ ***मै*** तथा ***पै*** का ***सै*** रूप से सयोग सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र मे सामान्य रूप से प्रचलित है, जैसे ***बौ सिन्दूक मै सै रुपइआ निकारत है; बौ घोड़ा पै सै गिर पड़ो***। ***कै*** तथा ***नै*** का सयोग कम मिलता है, जैसे ***बनिए कै नै कई*** (आ०)।

'लिए' का भाव व्यक्त करने के लिए ***को*** का विकृत रूप ***के*** भी ***लए, लएँ, काज, काजै, ताँईं*** आदि रूपो के साथ मिल कर सम्पूर्ण क्षेत्र मे प्रयुक्त होता है, विशेषतया यह प्रयोग पूर्वी जिलो मे अधिक है, जैसे ***बौ रामदास के ताँईं आम लाओ***। मथुरा से लिए गए एक पद्य मे ***काजैँ*** रूप ***के काजै*** के लिए प्रयुक्त हुआ है, जैसे ***जोग काजै रुद्र।***

प्राचीन ब्रज मे के सयुक्त रूपो मे विशेषण परसर्ग ***के, की*** सर्वाधिक प्रचलित है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते है

के	***अर्थ,***	जैसे	***विद्या-साधन के अर्थ***	(लल्लू० ५-२०)
के	***कर्म,***	जैसे	***माखन के कर्म***	(सूर० म० ७)
के	***पाछें,***	जैसे	***तियन के पाछें***	(नन्द० ५-१७)
के	***संग,***	जैसे	***तिन के संग***	(नन्द० १-३३)
के	***साथ,***	जैसे	***जार के साथ***	(लल्लू० ६२-१६)
की	***नाईँ,***	जैसे	***उनमत की नाईँ***	(नन्द० २-२४)।

के लये, के लयै, के काज, के निमित्त, के अर्थ इत्यादि जैसे रूप लल्लूलाल द्वारा प्रयुक्त हुए है।

प्राचीन ब्रज मे पाए जाने वाले कुछ अन्य संयुक्त परसर्गो के उदाहरण आगे दिए जाते है

मैं कौ, जैसे *पानी मैं कौ लौनु* (बिहा० १८)
में ते, जैसे *उन रुपइयान में ते* (गोकु० ४०-५)
में तें जैसे *राज सभा में तें* (लल्लू० ५-१२)

परसर्गों के समान प्रयुक्त अन्य शब्द

नीचे ऐसे शब्दो की सूची दी जाती है जो परसर्गों के समान प्रयुक्त होते है। तत्सम शब्दो को छोड कर, जो केवल प्राचीन ब्रज मे पाए जाते है, दूसरे शब्द प्राचीन ब्रज तथा आधुनिक ब्रज दोनो मे ही प्रयुक्त होते है। आधुनिक ब्रज मे साधारणतया ये **के** अथवा ***की*** के बाद प्रयुक्त होते है :

आगे, जैसे *या आगे* (नन्द० १-१००)
तीन तुक के आगे (गोकुल० २९-१०)
बिन, बिना, जैसे *पिय बिन* (नन्द० १-४)
भर, जैसे *जीवतु भर* (लल्लू० ३३-८)
बीच, जैसे *बन बीच* (नन्द० १-७२)
ढिंग, जैसे *मुख ढिंग* (नन्द० २-४८)
हित, जैसे *भुव हित* (लल्लू० ६-१६)
कर अथवा *करि,* जैसे *विद्या करि तिन* (लल्लू० ३१-११)
निज तरंग करि (नन्द० १-१२३)
लगि, जैसे, *त्यँहि लगि* (नन्द० ३-१६)
लौ, लौं अथवा *लों,* जैसे *कान लौ* (सेना० १, दे० नरो० २०, दास० ३-१६)
निकट, जैसे *जमुन निकट* (नन्द० २-१८)
प्रति, जैसे *तुम प्रति* (नन्द० ४-२८)
प्रयंत, जैसे *ग्रीवा प्रयंत* (सूर० य० २)
सँग, जैसे *सखियन सँग* (सूर० य० १)
सहित, जैसे *रति सहित* (नन्द० १-६८)
से अथवा *सी,* जैसे *तीर से* (सेना० ४, दे० नन्द० १-६८)
सम, जैसे *हरि सम* (नन्द० २-२७)
समेत, जैसे *बधू समेत* (तुलसी क० २-२४)
ताई, ताईं अथवा *तौंहि* जैसे *मोह ताई* (गो० ४०-९, दे० ११-१५, २९-१०)
तन, जैसे *हरि तन* (सूर० य० १५)
तर अथवा *तरु,* जैसे *चरन तर* (नन्द० १-११४, दे० १-३६)

आधुनिक ब्रज मे कुछ नए परसर्गयुक्त शब्द पाए जाते है, जैसे ***हमारी ओरी; बाके कने; बा घाईं; बा भौंईं*** इत्यादि।

६. क्रिया

२०७. क्रिया के रूप की दृष्टि से ब्रजभाषा की मूल त्रिया मे कोई विशेषता नही पाई जाती है। अर्थ की दृष्टि से मूल रूप या भाव वाच्य होता है या कर्मवाच्य ***पेड़ कटत है, बौ पेड़ काटत है***। कर्मवाच्य मूल रूप सदा अकर्मक होते है तथा भाववाच्य सकर्मक तथा अकर्मक दोनो प्रकार के होते है। क्रिया के मूल रूप साधारण तथा प्रेरणार्थक दो प्रकार के पाए जाते है।

प्रेरणार्थक

२०८ ब्रज मे दो प्रकार के प्रेरणार्थक प्रत्यय है. ***–आ–*** और ***–ब–***। अकर्मक धातुओं मे ***–आ–*** लगाने से धातु सकर्मक मात्र हो कर रह जाती है अत ऐसी धातुओ के प्रेरणार्थक रूप ***–ब–*** लगा कर बनते है, जैसे ***भात पकत है, बौ भात पकाउत है, बौ नौकर सै भात पकबाउत है***। सकर्मक धातुओ मे पहला रूप प्रेरणार्थक है तथा दूसरा रूप दोहरा प्रेरणार्थक है, जैसे ***बौ चल्त है, बौ बच्चा कौ चलाउत है, बौ बच्चा कौ नौकर सै चलबाउत है।***

आधुनिक ब्रज मे व्यजन मे अन्त होने वाली धातुओ मे निम्नलिखित चिह्न लगा कर प्रेरणार्थक बनता है

(१) ***–अ–*** भविष्य आज्ञार्थ मे (***चलइओ***)

(२) ***–आ–*** पूर्वकालिक कृदन्त (***चलाइ***), भूतकालिक कृदन्त (***चलाओ***) ह भविष्य (***चलाइहै***) और ***ग*** भविष्य प्रथम पुरुष एकवचन मे (***चलाउँगो***)

(३) ***–आउ–*** क्रियार्थक सज्ञा (***चलाउनो***), कर्त्तृवाचक सज्ञा (***चलाउन बारो***), वर्तमान कालिक कृदन्त (***चलाउत***) और (४) ***–आब–*** प्रथम निश्चयार्थ (***चलाबै***) और उत्तम पुरुष एकवचन को छोड कर ***ग*** भविष्य (***चलाबैगो***) मे।

व्यजनान्त धातुओ मे प्रेरणार्थक प्रत्यय के पहले ***–ब–*** लगाकर दुहरा प्रेरणार्थक बनता है : ***चल्बाइ, चल्बाओ, चल्बाउंगो*** इत्यादि ***बौ लड़का कौ नौकर सै चल्बाउत है।***

स्वरान्त धातुओ के प्रेरणार्थक तथा दुहरे प्रेरणार्थक रूप व्यजनान्त धातुओ मे बने दोहरे प्रेरणार्थक के समान ही होते है, केवल अन्तिम स्वर मे निम्नलिखित परिवर्तन हो जाते है ·

(क) ***–आ– –ई– –ऊ–*** ह्रस्व कर दिए जाते है, जैसे ***खानो, खबाउनो; पीनो, पिबाउनो, चूनो, चुबाउनो***।

(ख) ***–ए*** तथा ***–ओ*** क्रमश ***–इ*** तथा ***–उ*** में बदल जाते है, जैसे ***लेनो, लिबाउनो; खोनो खुबाउनो***।

कुछ अकर्मक क्रियाएं धातु के स्वर अथवा स्वर और व्यजन दोनों को ही परिवर्तित कर के दूसरा रूप बना लेते हैं। किन्तु यह परिवर्तन क्रिया को सकर्मक में बदल देता है तथा प्रेरणार्थक का भाव नही देता ·

(क) स्वर को दीर्घ करके, जैसे ***निकर- निकार***; ***उखड़- उखाड़***; इसी प्रकार ***काट-, बाँध-, मार-*** इत्यादि।

(ख) ***इ*** का ***ए*** मे तथा ***उ*** का ***ओ*** मे परिवर्तन करके, जैसे ***फिर- फेर-***; ***खुल- खोल-*** इत्यादि।

(ग) स्वर तथा व्यजन दोनो मे विकार लाते हुए, उदाहरण के लिए :

(१) ***ट*** का ***ड़*** मे परिवर्तन करके, जैसे ***फट- फाड़-***,

(२) ***क*** का ***च*** मे परिवर्तन करके, जैसे ***बिक- बेच-***

(३) ***ह*** का ***ख*** मे परिवर्तन करके, जैसे ***रह- राख-***

प्राचीन ब्रज मे व्यजनान्त धातुओ मे निम्नलिखित प्रत्यय लगा कर प्रेरणार्थक बनता है

(क) पूर्वकालिक कृदन्त, भूत निश्चयार्थ तथा वर्त्तमान और भविष्य निश्चयार्थ उत्तम पुरुष एकवचन के रूपो मे

-आ-, ***सिखाई*** (मति० ११)
करायो (सूर० वि० १४)
समुझाऊँ (नर० १७)

(ख) क्रियार्थक सज्ञा मे, कर्तृवाचक सज्ञा तथा भूत सभावनार्थ मे

-औ-, जैसे ***हठौती*** (नरो० १३)

(ग) उत्तमपुरुष एकवचन को छोड़कर वर्त्तमान तथा भविष्य निश्चयार्थ के अन्य रूपो मे ·

-आव- जैसे ***कहावे*** (केशव १-३५)

व्यजनान्त धातुएँ प्रेरणार्थक रूपो मे अथवा धातुओ मे प्रेरणार्थक का चिह्न लगाने के पूर्व ***-ब-*** जोड कर (लिखित रूप मे ***-व-*** जोडकर) दोहरे प्रेरणार्थक बनाती है, जैसे ***बढ़ावत*** (केशव १-३१) ***छुवायो*** (मति० १९)।

स्वरान्त धातुओ के प्रेरणार्थक अथवा दोहरे प्रेरणार्थक रूप व्यजनान्त धातुओं के दोहरे प्रेरणार्थक रूपो की भाँति ही होते है। अन्तिम स्वर मे निम्नलिखित परिवर्तन हो जाते है :

(क) ***-आ, -ई, -ऊ*** ह्रस्व हो जाते है, जैसे ***जिवाय*** (नाभा ४३), ***खवाइवे को*** (पद्मा० ९-४०)

(ख) ***-ए*** और ***-ओ*** क्रमश ***-इ*** तथा ***-उ*** मे बदल जाते है, जैसे ***दिवायो*** (सूर० वि०१४)

प्रेरणार्थक की रचना का सिद्धान्त अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे भी ब्रज की ही भाँति है, अर्थात् मूलशब्द मे ***-आ-*** अथवा ***-ब-*** जोडकर।

वाच्य -

२०९. प्राचीन ब्रजभाषा मे *-य-* लगा कर बने हुए सयोगात्मक कर्मवाच्य रूपों का प्रयोग वियोगात्मक शैली के कर्मवाच्य के साथ साथ पर्याप्त मिलता है, जैसे *आप खाय तौ सहिये* (सू० म० ८), *मान जानियत* (मति० ४७), *ऐरावत गज सो तो इन्द्रलोक सुनियै* (भूषण ५०)।

प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ही ब्रज मे प्रधान क्रिया मे *जानो* क्रिया जोडकर साधारणतया कर्मवाच्य बनता है, जैसे *करो गओ* (बरे०) *ना बखानी काहू पै गई।* इस प्रकार यह संयुक्त क्रिया है (§ २३८)

ब्रज की भाँति अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे भी कर्मवाच्य के ये दोनो रूप साथ साथ प्रयुक्त होते हैं।

मूलकाल

२१० अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के समान ब्रजभाषा मे क्रिया की काल रचना मे दो प्रकार के रूप पाए जाते हैं, पहला जिनमे पुरुष का अर्थ क्रिया के रूप मे सन्निहित रहता है अर्थात् मूलकाल और दूसरा जिनमे पुरुष का भाव क्रिया के रूप मे सन्निहित नही रहता है अर्थात् कृदन्ती काल।

ब्रजभाषा मे मूलकाल तीन है, १, वर्त्तमान निश्चयार्थ, २ भविष्य निश्चयार्थ और ३ आज्ञार्थ। कृदन्ती रूप, जो काल रचना मे प्रयुक्त होते हैं, निम्नलिखित हैं: १ वर्त्तमान कालिक कृदन्त, २ भूतकालिक कृदन्त और ३ भूत सभावनार्थ। ये कृदन्ती रूप विशेषण के समान भी प्रयुक्त होते हैं। इनके अतिरिक्त क्रियार्थक सज्ञा और पूर्वकालिक कृदन्त के पृथक् रूप होते हैं।

क्रिया के भिन्न भिन्न भावो को प्रकट करना उपर्युक्त रूपो को आपस मे मिला कर अथवा सहायक क्रिया के रूपो से मिला कर होता है। कर्मवाच्य का प्रचलित रूप इसी प्रकार का सयुक्त क्रिया का एक रूप है।

वर्ग १
(वर्त्तमान निश्चयार्थ)

२११. आधुनिक ब्रज मे मूलकाल के प्रथम वर्ग के रूपो मे धातु मे निम्नलिखित प्रत्यय लगाए जाते हैं:

	एक०			बहु०
१.	-औं	(चलौं)	-ऐं	(चलैं)
२.	-ऐ	(चलै)	-औ	(चलौ)
३.	-ऐ	(चलै)	-ऐं	(चलैं)

दक्षिण तथा कुछ पश्चिमी भागो मे (अ० बु०) उत्तम पुरुष एकवचन मे -ऊँ (चलूँ) लगता है।

प्राचीन ब्रज मे निम्नलिखित प्रत्यय लगाए जाते है :

१.	*–औं –ऊँ –औं*	*–ऐं –एँ –हि*
२.	*–अहि*	*–औ –ओ*
३.	*–ऐ –य –इ*	*–ऐं*

उत्तम पुरुष : एकवचन *–औं* व्यजनात धातुओ मे लगता है, *कहौं* (सूर० म० १७); *–ऊँ* साधारणतया स्वरान्त धातुओ मे लगता है *पाऊँ* (घन० २), यद्यपि कभी कभी व्यजनात धातुओ मे भी पाया जाता है . *चलूँ* (गोकुल० ११-१२), *–औं* बहुत कम प्रयुक्त हुआ है : *जानौं* (गोकुल० २८-२३)। बहुवचन मे साधारणतया *–ऐं –एं* का प्रयोग हुआ है, *–हि* बहुत कम पाया जाता है, *करें* (गोकुल० २३-३), *जाहिं* (बिहा० १२६)।

मध्यम पुरुष · एकवचन रूप–*अहि* कम मिलता है *सकहि* (हित० ४)। बहुवचन –औ के पर्याप्त उदाहरण मिलते है *आवौ* (नद० ३-२३), *–ओ* का प्रयोग कम है · *करो* (मति० ३८)। बहुवचन के रूप सदा बहुवचन का अर्थ नही देते है।

अन्य पुरुष : एकवचन मे *–ऐ* रूप सब से अधिक पाए जाते है : *सुनै* (घना० १९)। *–ए* रूप बहुत कम मिलता है . *मिले* (गोकुल० ८-९), *–य* तथा *–इ* रूप स्वरान्त धातुओ मे ही मिलते है : *खाय* (सूर० म० १४), *होइ* (बिहा० १२१)। बहुवचन मे *–ऐं* साधारण रूप है : *रहैं* (नरो० ७), *–एँ* कभी कभी मिल जाता है *गावें* (नद० ७६)।

उपर्युक्त प्रत्यय कुछ परिवर्त्तनो के साथ समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे व्यवहृत होते है।

२१२ आधुनिक ब्रज मे प्रथम वर्ग के रूप निम्नलिखित अर्थों मे प्रयुक्त होते है ·

(क) गीत तथा कविता मे प्राय वर्तमान काल के अर्थ मे · *सूरत देखै अपने लाल की* (बु०);

(ख) गद्य मे नकारात्मक अर्थ मे वर्त्तमान काल के अर्थ मे प्रयोग प्राय· मिल जाता है अन्यथा बहुत ही कम होता है *गाम के कहैं* (धौ०) *मै ना करूँ हाँसी* (ज० पू०),

(ग) कहानियो मे ऐतिहासिक वर्त्तमान काल के अर्थ मे *तौ देखौं तौ हौंई धरी* (म०),

(घ) प्रश्नवाचक वाक्यो मे निकट भविष्य के अर्थ मे *पान लगाऊँ ?*,

(ङ) वर्त्तमान सभावनार्थ मे *जो* आदि सभावना द्योतक शब्दो के साथ · *जो बो चलै तौ वाय आप दै दीजिओ*,

(च) केवल मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप आज्ञार्थ मे *तुम चलौ।*

प्राचीन ब्रज मे उपर्युक्त प्रयोगो के अतिरिक्त भविष्य काल के अर्थ मे भी इनका प्रयोग होता है : *साँटिन मारि करौ पहुनाई* (सूर० म० १७), *पाप पुरातन भागै* (केशव० १-२०)

विशेष—केवल मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप आज्ञार्थ मे भी प्रयुक्त होता है : (§ २१५) *तुम चलौ।*

२१३. भविष्य काल उपर्युक्त प्रथम वर्ग अर्थात् वर्त्तमान निश्चयार्थ के रूपों में विशेषण का रूप लगा कर बनता है। पूर्व तथा दक्षिण अनेक भागों में (बरे०, ए०, ब०, पू० जय०, धौ०, प० ग्वा०) में निम्नलिखित प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। प्रत्यय के कारण मूल रूप के अन्त्यांश में कभी कभी विकार आ जाता है :

आधुनिक ब्रज

पुल्लिङ्ग

उत्तम पुरुष	–ऊं –गो,	(चलूंगो)	–अं –गे	(चलंगे)
मध्यम पुरुष	–ऐ –गो,	(चलैगो)	–औ –गे	(चलौगे)
अन्य पुरुष	–ऐ –गो,	(चलैगो)	–अं –गे	(चलंगे)

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	–उं –गी	(चलुंगी)	–अं –गीं	(चलंगीं)
मध्यम पुरुष	–ऐ –गी	(चलैगी)	–औ –गी	(चलौगी)
अन्य पुरुष	–ऐ –गी	(चलैगी)	–अं –गीं	(चलंगी)

–आ तथा *–ए* अन्तवाली धातुओं में प्रथम प्रत्यय का *–अ–* उसमें सम्मिलित कर लिया जाता है, जैसे *खांगे, जांगे, लेंगे, देंगे।*

ले तथा *दे* धातुएं प्रथम पुरुष एक वचन, बहुवचन में तथा अन्य पुरुष बहुवचन में निम्नलिखित वैकल्पिक रूप ग्रहण करती हैं

	ए० व०	बहु० व०
उ० पु० पु०	*लुंगो दुंगो*	*लिंगे दिंगे*
स्त्री०	*लुंगी दुंगी*	*लिंगी दिंगी*
उ० पु० पु०		*लिंगे दिंगे*
स्त्री०		*लिंगी दिंगी*

ये रूप समस्त ब्रज क्षेत्र में कभी कभी पाए जाते हैं।

पश्चिम तथा दक्षिण के कुछ जिलों में (भ० क०) जहाँ कहीं भी—*औ*—पाया जाता है उसका उच्चारण *–औ* (§ ९३) की भांति होता है, जैसे प्रथमपुरुष एकवचन *चलूँगौ।*

प्राचीन ब्रज

पुल्लिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	*–औं –गौ, –ऊँ –गौ*	
	–उँ –गौ (दीर्घ स्वरान्त धातु के बाद)	*–एँ –गे*
मध्यम पुरुष	*–ऐ –गौ*	*–औ –गे, –ओ –गे*
	*–य –गौ**	*–हु –गे**
प्रथम पुरुष	*–ऐ –गौ, –ए –गौ, –ए –गौ,*	*–एँ –गे, –ऐं –गे, –हिँ –गे*
	–य–गौ	*–य–गे*

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	*–औं –गी,* *–वों –गी**	*–आहगी*
मध्यम पुरुष	*–ऐ –गी*	*–अहु –गी, –औ –गी, –ओ –गी*
प्रथम पुरुष	*–अहि –गी, –ऐ –गी* *–य –गी**	*–अहिं –गी*

सूचना—ऊपर के रूपो मे * चिह्न युक्त रूप प्राय· दीर्घ स्वरान्त धातुओ के बाद प्रयुक्त होते है।

प्राचीन ब्रज मे **ग** तथा **ह** लगा कर बनाए हुए भविष्य निश्चयार्थ के रूपों का प्रयोग साथ साथ स्वतत्रंता पूर्वक मिलता है, जैसे *टूट्यौ सो न जुड़ैगो सरासन* (तुलसी० क० १-१९)।

अन्य आधुनिक भाषाओ मे, **ग** भविष्य, मालवी, मेवाती, गुर्जरी, खडीवोली तथा पंजाबी मे पाया जाता है। वैकल्पिक रूप मे यह बुदेली, मारवाडी तथा मैथिली मे भी पाया जाता है।

वर्ग २

२१४ दूसरा मुख्य नयोगात्मक रूप **ह** भविष्य है, जो साधारण रूप से पूर्वी ब्रज क्षेत्र (मै०, इ०, फ०, शा०, पी०, ह०, का०) मे पाया जाता है। इस क्षेत्र में **ग** भविष्य के रूप भी कही कहीं पाए जाते है।

प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ब्रजो मे भविष्य निश्चयार्थ के **ह** लगा कर बनाए हुए रूपो मे निम्नलिखित प्रत्यय लगते है। लिग के कारण इनमे भेद नही होता है :

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	*–इहौं,* (**चलिहौं**)	*–इहैं* (**चलिहैं**)
मध्यम पुरुष	*–इहै* (**चलिहै**)	*–इहौ* (**चलिहौ**)
प्रथम पुरुष	*–इहै* (**चलिहै**)	*–इहैं* (**चलिहैं**)

दीर्घ स्वरान्त आकारान्त धातुओ मे प्रत्यय लगाने के पूर्व अन्तिम स्वर ह्रस्व हो जाता है, जैसे **खैहौ, जैहौ**। **ह** के लोप की प्रवृत्ति सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र मे पायी जाती है : नाह० मे अन्तिम अश **-ऐ** तथा **-औ** क्रमशः **-अइ** तथा **-अउ** मे बदल जाते है। (§ ९७)

प्राचीन ब्रज मे एकारान्त धातुओ मे प्रत्यय का इकार कभी कभी लुप्त हो जाता है, जैसे *ये मेरी मर्यादा लेहैं* (सूर य० १९)

भविष्य निश्चयार्थ के **ह** प्रत्यय लगाने के पूर्व **ह** अन्त वाली धातुओं के **ह** का प्राय. लोप हो जाता है, जैसे *की कैहौं वे जैसे हैं* (सूर० य० २१)। (§ ११४)

प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ब्रज भाषाओ मे **ग** तथा **ह** लगा कर बनाए गए भविष्यो का प्रयोग साथ साथ मिलता है। यह अवश्य है कि बाद के लेखकों की कृतियों मे कदाचित् मधुरता तथा छन्द की सुविधा के कारण **ह** भविष्य का प्रयोग कुछ अधिक मिलता

है। कालान्तर मे पूर्वी क्षेत्र के लेखको का बडी सख्या मे ब्रजभाषा मे लिखना भी एक अ
कारण हो सकता है।

प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ब्रजो मे बहुधा भविष्य निश्चयार्थ के मध्यम पुरुष
के रूप भविष्य आज्ञार्थ के भाव मे भी प्रयुक्त होते है। साधारण भविष्य निश्चयार्थ
अन्तर रखने के लिए ही कदाचित् प्रत्यय के हकार का लोप हो जाता है। जैसे मे
घर को द्वार सखी री तब लौं देखे रहियो (सू० म० १), *तू ह्वाँ जरूर जइऐ*, तु
कल किताब जरूर पढ़िओ।

पूर्वी सीमा के कुछ ज़िलो मे (ह० का०) अवधी **ब** भविष्य के रूप भी कभी क
प्रयुक्त होते है, जैसे *हम मरिबे* (का०)।

ह भविष्य का प्रयोग बुन्देली तथा मारवाडी मे वैकल्पिक रूप से होता है। **ह** भवि
से बने हुए कुछ रूप पूर्वी हिंदी बोलियो तथा भोजपुरी मे भी पाए जाते है। तुलना
देखिए गुजराती, जयपुरी, निमाडी, सिधी तथा लहदा मे पाया जाने वाला **स** भविष्य।

वर्ग ३

२१५ ब्रज मे तीसरा सयोगात्मक रूप वर्तमान आज्ञार्थ है। आधुनिक ब्रज
मध्यम पुरुष एकवचन के रूप धातुओ के समान ही होते है, जैसे **चल**।

मध्यम पुरुष बहुवचन का प्रत्यय **–ओ** प्रथम वर्ग मध्यम पुरुष बहुवचन के रूप
समान होते है, जैसे **चलौ**।

दीर्घ स्वरान्त धातुओ मे बहुवचन के प्रत्यय का–**अ** उसमे मम्मिलित हो जाता
जैसे **खाओ, जाओ, लेओ** इत्यादि। पूर्वी जिलो मे कभी कभी मध्यम पुरुष, एकवचन
उ जोड दिया जाता है, जैसे **चलु** (मै०), *करु* (बदा०)

प्राचीन ब्रज मे वर्तमान आज्ञार्थ बनाने के लिए मध्यम पुरुष मे निम्नलिखित प्रत्य
जोडे जाते है।

एक वचन	बहुवचन
–अ, –उ, –इ, –हि	*–अहु, –औ, –ओ, –हु –उ*
(अंतिम प्रत्यय दीर्घ स्वरान्त धातुओं के बाद, जैसे *जाहिं*)	(अतिम दो प्रत्यय दीर्घ स्वरा धातुओ के बाद, जैसे *लेहु, जाउ*

एकवचन -**अ** रूप धातु की भाँति ही समझा जा सकता है, किन्तु यह रूप -*उ* रू
से कम प्रचलित है। साधारण प्रचलित रूप -*उ* ही है। दीर्घ स्वरान्त धातुओ मे को
प्रत्यय नही जोडा जाता, जैसे *सोई तब हीं तू दै री* (सूर० म० १०), *सताए ले* (दास
१३-५८)।

धातु तथा वर्तमान आज्ञार्थ के मध्यम पुरुष एकवचन की एकता समस्त आधुनि
भारतीय आर्य भाषाओ मे पाई जाती है।

कृदन्ती रूप

२१६. अन्य आधुनिक भाषाओ की भॉति ब्रज मे भी क्रिया की रूप रचना मे कृदन्त का अत्यधिक महत्व है। ये कृदन्त दो प्रकार के है—वर्तमानकालिक कृदन्त तथा भूतकालिक कृदन्त। दोनो ही कृदन्तो का प्रयोग विशेषण, प्रधान क्रिया, सयुक्त क्रिया के अग तथा क्रियार्थक वाक्याशो की भॉति होता है, जैसे ***चल्त आदमी सै मत बोलौ, बहुत चलो आदमी आपै थक जायगो, तुम क्यों नायँ चल्त, बौ चार दिन चलो, बौ रोज सबेरे चल्त है, बौ चार दिन चलो है।***

वर्तमानकालिक कृदन्त

२१७ आधुनिक ब्रज मे वर्तमानकालिक कृदन्त के मुख्य रूप *–त* या *–त्* प्रत्यय लगा कर बनते है।

आधुनिक ब्रज में, विशेषतया पूर्व में (बरे०, ब०, मै०, फ०, शा०, पी०, प० ग्वा० मे भी), वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप स्वरान्त धातुओ मे *–त्* लगा कर तथा व्यजनान्त धातुओ मे *–त* लगा कर बनाए जाते है, जैसे ***खात चल्त***। पश्चिम मे (म०, आ०, अ० धौ०, ए० मे भी) साधारणतया *–तु* दक्षिण के कुछ ज़िलो (पू० जय०, करौ०) मे *–तो* तथा बु०, भ० मे *–तौ* प्रत्यय जोड़ते है। पूर्वी सीमा के कुछ जिलो मे (ह०, का०, इ० मे भी) व्यजनान्त धातुओ के बाद *–अत* तथा स्वरात धातुओ के बाद *–त* जोड़ा जाता है, जैसे ***चलत, खात।***

लिग तथा वचन के कारण वर्तमानकालिक कृदन्त के रूपो मे कोई अन्तर नही आता। स्त्रीलिग बहुवचन इसका अपवाद है, जिसकी रचना मूल शब्द में—*ती* प्रत्यय जोड कर होती है, जैसे ***आदमी जात है, आदमी जात हैं, औरत जात है*** किन्तु ***औरतैं जाती हैं***।

उत्तम पुरुष बहुवचन मे स्त्रीलिग रूप का प्रयोग बहुत कम होता है, जैसे ***हम जात हैं*** का प्रयोग पहले प्रयोग मे आने वाले रूप ***हम जाती हैं*** से अधिक होने लगा है। दूसरे पुरुषो के स्त्रीलिग बहुवचन रूपों के स्थान पर भी सामान्य प्रचलित रूप का प्रयोग होने लगा है किन्तु यह परिवर्त्तन अभी अत्यन्त मन्द गति से हो रहा है।

प्राचीन ब्रज मे पुल्लिग तथा स्त्रीलिग दोनो मे वर्त्तमानकालिक कृदन्त के रूप व्यंजनान्त धातुओ मे *–अत* लगा कर बनाए जाते है, जैसे ***सेवत*** (नन्द १-२७), तथा स्वरान्त धातुओ मे *–त* लगा कर बनाए जाते है, जैसे—*जात* (बिहा० १५)।

इन रूपो के अतिरिक्त पुल्लिग मे *–अतु* अथवा *–तु* तथा स्त्रीलिग मे *–अति* अथवा *–ति* लगा कर भी रूप बनते है—और इनका प्रयोग भी पर्याप्त मिलता है, जैसे ***गावतु है*** (सेना० १७), ***जातु है*** (दास० ३२-३६), ***यशोदा कहति*** (सू० म० ६), ***राम को रूप निहारति जानकी*** (तुलसी० क० १-१७)।

स्त्रीलिग प्रत्यय के रूप मे *ती* बहुत कम प्रयुक्त होता है, जैसे ***बोलती हौ*** (मति० ४७)।

–अत्, *–अत*, अथवा *–अतु* प्रत्यय वाले वर्तमानकालिक कृदन्त का प्रयोग हिंदी की लगभग समस्त बोलियों मे पाया जाता है। खडीबोली में पंजाबी की भाँति *–ता* रूप प्रचलित है। पश्चिमी भाषाओ मे पंजाबी के समान *–दा* रूप है। *–ता* रूप मराठी तथा भोजपुरी मे भी है। राजस्थानी की बोलियो, गुजराती तथा गुर्जरी मे *–तो* रूप प्रचलित है, जब कि पूर्वी भाषाओ मे अधिकतर *–इन* अथवा *–ते* प्रत्यय लगता है। तुलनार्थ दे० पंजा०, लँह०, *–दा*, पहाडी *–दो* तथा सिंधी *–औंदो*।

भूत संभावनार्थ

२१८ आधुनिक ब्रज में भूत संभावनार्थ के लिए धातु मे निम्नलिखित प्रत्यय लगाए जाते हैं :

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	*–तो* (चल्तो)	*–ते* (चल्ते)
स्त्रीलिग	*–ती* (चल्ती)	*–तीं* (चल्ती)

यह प्रत्यय पश्चिम को छोड कर सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र मे समान रूप से प्रयुक्त होते हैं। पश्चिम मे (भ० में भी) *–तो* प्रत्यय *–तौ* के रूप मे पाया जाता है, जैसे **चल्तौ** (म०)

प्राचीन ब्रज मे भूत संभावनार्थ के लिए धातु मे निम्नलिखित प्रत्यय लगाए जाते है :

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	*–अतो*, *–अतौ*	*–अते*
स्त्रीलिग	*–अती*	*–अतीं*

स्वरान्त धातुओ मे प्रत्ययों का *अ–* लुप्त हो जाता है। उदाहरण, ***अगर मैं चल्तो तौं पहुच जातो, कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट*** (नरो० १३)।

भूत संभावनार्थ रूप *तो* इत्यादि गुजराती और राजस्थानी मे भी पाए जाते हैं। तुलनार्थ दे० खडीबोली *–ता*।

भूतकालिक कृदन्त

२१९. आधुनिक ब्रजभाषा मे भूतकालिक कृदन्त के मुख्य रूप धातुओ मे निम्नलिखित प्रत्यय लगा कर बनते हैं

पूर्व तथा प० ग्वा० में धातु मे *–औ* (§ ९३) जोडकर, पश्चिम तथा दक्षिण के कुछ ज़िलो (म०, आ०, अ०, बु०, भ०, क०) मे *–यौ* जोड कर; तथा शेष दक्षिणी क्षेत्र (पू० जय०, धौल०) मे *–यो* जोड कर। *–औ* तथा *–यो* अन्त वाले रूप कहीं कहीं पश्चिम मे भी पाए जाते है।

इस कृदन्त मे लिंग तथा वचन के कारण रूपान्तर होता है। समस्त क्षेत्र मे पुल्लिग बहुवचन बनाने के लिए धातु मे *–ए* जोडा जाता है। स्त्रीलिग एकवचन मे *–ई* तथा बहुवचन मे *–ईं* जोडते है।

उदाहरणार्थ बरेली की बोली मे निम्नलिखित रूप मिलते है :

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	**चलो**	**चले**
स्त्रीलिग	**चली**	**चलीं**

प्राचीन ब्रज मे निम्नलिखित प्रत्यय जोडे जाते है :

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	***–ओ –औ –यो –यौ***	***–ए –ये, –यै***
स्त्रीलिग	***–ई***	***–ईं***

पुल्लिग एकवचन मे ***–ओ*** तथा ***–यो*** अन्त वाले रूपो का प्रयोग सब से अधिक मिलता है, यद्यपि ***–यो*** रूप ही अधिक मान्य है, जैसे ***बखानो*** (दास २-८), ***कब गयो तेरी ओर*** (सू० म० ६)। ***–यौ*** अन्त वाले रूपो का प्रयोग कुछ कम मिलता है, ***–औ*** अन्त वाले रूपो का प्रयोग बहुत कम मिलता है, जैसे ***तैं पायौ*** (हित० १७), ***कीनौ*** (लाल० १०-६)। ***–ओ*** रूप ***कीन्हों*** (भूषण ३४) जैसे रूपो मे ही पाया जाता है। ***–एउ*** रूप भी बहुत ही कम पाया जाता है, जैसे ***घर घरेउ हो*** (सूर० म० ५)।

पुल्लिग बहुवचन रूप ***–ए*** समस्त रूपों मे सर्वाधिक प्रचलित है, जैसे ***हँसत चले*** (सू० म० ४)। स्वरान्त धातुओ मे ***–ये*** अथवा ***–यै*** पाया जाता है, जैसे ***बनाये*** (देव० १-१०) ***आयै*** (गोकुल १-२)। ***–एँ*** रूप ***कीन्हें*** आदि क्रियाओ मे कभी कभी प्रयुक्त होता है, जैसे ***गाढ़े करि लीन्हें*** (सूर० म० ४)।

स्त्रीलिग एकवचन के ***ई*** अन्त वाले रूपो मे विभिन्नता नही पाई जाती, जैसे ***चली***, (नन्द० १-१०) ***आई*** (पद्मा० ८-१८)।

स्त्रीलिग बहुवचन के ***ईं*** अन्त वाले रूपो का प्रयोग बहुत कम मिलता है, जैसे ***आईं ब्रज नारी*** (हित० २६, राम० १०, बिहा० ४)।

–औ अन्त वाले भूतकालिक कृदन्ती रूप बुदेली, कुमायूनी तथा जौनसरी मे पाए जाते है, जब कि ***–यो*** रूप का प्रचार गुजराती, राजस्थानी, नैपाली, गढवाली, गुर्जरी तथा सिधी मे है।

ब्रज के अतिरिक्त हिदी की पश्चिमी बोलियो मे, तथा राजस्थानी, गुजराती, उत्तरी पश्चिमी भाषाओ और पहाडी भाषाओ मे भूतकालिक कृदन्त नियमित रूप से भूत निश्चयार्थ तथा विशेषण की (जैसे ***चलो रुपैया***) की भाँति प्रयुक्त होता है ।

क्रियार्थक संज्ञा

२२० ब्रजभाषा मे दो प्रकार के क्रियार्थक सज्ञा सज्ञा के रूप मिलते है, एक ***ब*** वाले और दूसरे ***न*** वाले। इन दोनो मे मूलरूप तथा विकृत रूप होते है।

साधारणतया पूर्व (बरे०, ब०, इ०, शा०, पी०, ह०, का०) मे, किन्तु कभी कभी पश्चिम और दक्षिण (म०, अ०, बु०, भ०) मे भी धातुओ मे ***–नो*** लगा कर मूलरूप बनाते है, जैसे ***चलनो, खानो***। पश्चिम मे (भ० मे भी) ***–बौ*** और दक्षिण मे (मै० फ० मे) ***–बो*** पूर्वकालिक कृदन्त मे लगा कर यह रूप बनाते है, जैसे ***चलिबौ, खायबो***।

विकृत रूप–*नो* पाए जाने वाले क्षेत्र मे व्यजनांत धातुओं मे मूल रूप मे –*अन* जोड कर बनाते हे। –*आ*, –*ए* मे अन्त होने वाली धातुओ मे तथा सहायक क्रिया–*हो* मे केवल –*न* जोडा जाता है, जैसे *खान, जान, होन*। ईकारान्त धातुओं मे प्रत्यय लगने के पहले स्वर ह्रस्व हो जाता है, जैसे *पिअन, सिअन* इत्यादि। सहायक क्रिया –*हो* को छोड कर अन्य ओकारान्त धातुओ मे –*उन* प्रत्यय जोडा जाता है, जैसे *सोउन, बोउन*।

मूल रूप मे –*ब* लगने वाले क्षेत्र मे पूर्वकालिक कृदन्त मे *बे* अथवा *बै* लगा कर विकृत रूप बनाते हे, जैसे चलिबे, पीबैं।

प्राचीन ब्रज मे भी दोनों प्रकार के रूप मिलते हे। *न* प्रकार वाला मूल रूप अकारान्त धातुओ मे प्रधानतया –*अनो* जोड कर तथा कभी कभी –*अनौं* जोड कर बनता है, दीर्घ स्वरान्त धातुओं मे –*नो* अथवा कभी कभी –*नौं* जोडा जाता है, जैमे *चलनो अब केतिक* (तुलसी० क० २–११)

न प्रकार वाली क्रियार्थक संज्ञा का विकृत रूप व्यजनान्त अथवा अकारान्त धातुओ मे –*अन* लगा कर, तथा दीर्घ स्वरान्त धातुओ मे –*न* लगा कर बनता है, जैसे *बैंचन* (सू० म० १), *खान* (सू० म० १०) केशव मे व्यजनान्त धातु मे –*न* जोडा गया है, किन्तु यह रूप छन्द की आवश्यकता के कारण है, तथा अनियमित है, उदाहरणार्थ *कर्न लागि* (के० ३-५)।

–*ब* प्रकार वाली क्रियार्थक सज्ञा का मूल रूप साधारणतया –*इबो* लगा कर बनता है, जैसे *मरिबो* (सू० य० २२)। किन्तु कुछ उदाहरणो मे –*इवौं, इवौ* अथवा –*इबौ* भी पाए गए है, जैसे *रहिवौं* (गोकुल २५-१२)। उपर्युक्त उदाहरणो मे लेखन शैली के कारण *ब* के स्थान पर *व* प्रयुक्त हुआ है (§ ८८)। औकारान्त रूपो के लिए देखिए § ९३।

–*ब* प्रकार वाली क्रियार्थक सज्ञा का विकृत रूप धातु मे –*इबे* अथवा –*बे* जोड कर बनता है, जैसे *कढ़िबे* (नर० २५)। उच्चारण के विचार मे –*बे* अथवा –*इबे* के लिए –*वे* अथवा –*इवे* रूप भी हो सकता है (§ ८८), जैसे *सुनिवे को* (रस० २६), *जीवे* (सुजा० ६)। –*अवे* प्रत्यय बहुत कम मिलता है *पढ़वे कौं* (लल्लू० २, ८)।

आकारान्त धातुओ मे मूल अथवा विकृत रूप के प्रत्यय लगाने के पूर्व अन्त्य *आ* ह्रस्व कर दिया जाता है, जैसे *खैबे* (सूर० म० ११) (*ताहू के खैबे पीबे को कहा इती चतुराई*), *छूटो ऐबो जैबौ* (सेना० २१)।

कभी कभी प्रत्ययो की *इ य* मे परिवर्तित मिलती है, जैसे *खायबे को* (गोकुल० ३१, ९)

कुछ उदाहरण असाधारण भी मिलते हे; जैसे *देषिबो को* (सेना० १३), *दीबे को* (सेना० ३६)।

कुछ उदाहरणो मे, विशेषतया बिहारी सतसई मे, धातु मे –ए, –एँ या –ऐं लगा कर विकृत रूप बनते है, उदाहरणार्थ *देषे* (सेना० १), –*आऐं* (बिहा० ३६)। इस प्रकार के रूपो का प्रयोग बिना परसर्गो के होता है।

कभी कभी *–नी* तथा *–ने* जैसे कुछ असाधारण रूप भी मिल जाते है, जैसे ***होनी*** (लाल० १२-३) ***खोने लगी*** (दास० २६-१६)। प्रथम रूप *–नी* तो ***होनो*** क्रियार्थक सज्ञा का विशेष अर्थ मे स्त्रीलिग रूप मे प्रयोग है, और दूसरा *–ने* रूप स्पष्टतया खडी बोली का है।

छन्द की आवश्यकता के कारण मूल रूपो के लिए कभी कभी विकृत रूपो का प्रयोग किया गया है, जैसे *हरि की सी सब चलन बिलोकन* (नन्द० २-२६), *गुपाल की गावनि* (देव० १-१६)।

विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए अन्य सज्ञाओ मे लगाए गए परसर्गों की भाँति क्रियार्थक सज्ञा के विकृत रूपो मे भी परसर्ग जोडे जाते है, जैसे ***बाके चलन सै काम नायँ होयगो, उनके चलन मैं देर है।***

किसी उद्देश्य को प्रकट करने के लिए कभी कभी परसर्ग के बिना विकृत रूप का प्रयोग होता है, जैसे ***बो खान जात है***। सयुक्त क्रियाओ मे बिना परसर्ग के इसका प्रयोग होता है।

क्रियार्थक सज्ञा के ब्रज मे पाए जाने वाले रूपो मे *–न* रूप का प्रयोग पश्चिमी हिंदी की बोलियो, मालवी, निमाडी, पहाडी बोलियो तथा उत्तर पश्चिमी भाषाओ तक (जिनमे *न ण* हो जाता है) तक फैला हुआ है। *–ब* रूप राजस्थानी की अन्य समस्त बोलियो सहित हिंदी की पूर्वी बोलियो मे व्यवहृत होता है।

पूर्वकालिक कृदन्त

२२१ सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र मे पूर्वकालिक कृदन्त व्यजनान्त धातुओ मे *–इ* जोड कर तथा ***आकारान्त*** अथवा ***ओकारन्त*** धातुओ मे *–य* जोड कर बनते है; जैसे ***चलि, खाय***। ***ले, दे*** तथा ***पी*** धातुओ के कृदन्त क्रमश ***लै दै*** तथा ***पी*** है। सहायक क्रिया ***हो*** का पूर्वकालिक पूर्व मे ***हुइ*** तथा दक्षिण और पश्चिम मे ***है*** अथवा ***हे*** होता है। हरदोई, कानपुर मे ***कर*** का पूर्वकालिक रूप ***कै*** है (तुलनार्थ दे० अवधी ***कइ***)।

साधारणतया उपर्युक्त रूप बिना परसर्ग के प्रयुक्त होते है, जैसे ***बो रोटी खाय घर गओ***, किंतु कभी कभी इन रूपो मे पूर्व (बु० मे भी) मे ***कै*** तथा दक्षिण और पश्चिम (बु० को छोड कर) मे ***कै*** जोडा जाता है, जैसे ***बो रोटी खाय कै घर गओ***। पूर्व जयपुर मे ***केनी*** भी मिलता है, जैसे ***तोड़ी केनी दऊँ हूँ*** (तोड कर दे रहा हूँ)।

प्राचीन ब्रजभाषा मे व्यजनान्त धातुओ मे *–इ* लगा कर पूर्वकालिक बनाते है जैसे ***करि*** (सू० म० २)।

एकारान्त धातुओ मे ***–ए*** के स्थान पर ***–ऐ*** कर के पूर्वकालिक कृदन्त के रूप बनाए जाते है, जैसे ***लै*** (सू० म० २)। ऊकारान्त धातुओ मे साधारणतया ऊ के स्थान पर ***वै*** हो जाता है, जैसे ***छ्वै*** (मति० ३१)। आकारान्त तथा ओकारान्त धातुओं के पूर्वकालिक कृदन्त के रूप ***–इ*** के स्थान पर ***–य*** लगा कर बनते है, जैसे ***खाय*** (सू० म० ४), ***खोय*** (नन्द० २-५१)। आकारान्त धातुओ मे कभी कभी ***–इ*** लगा कर बने हुए रूप भी प्रयुक्त होते

हैं, जैसे **धाइ** (सू० म० २७७-२) । सहायक क्रिया **ह्वै** का पूर्वकालिक कृदन्त रूप साधारणतया **ह्वै** होता है, जैसे **ह्वौं तु प्रगट ह्वै नाची** (हित० ७, दे० तुलसी० क० २-११) । **ह्वौ** क्रिया मे–**इ** लगाकर बनाए गए पूर्वकालिक कृदन्त के रूप भी पाए जाते है, जैसे **होइ** (नाभा ४९) (तुलनार्थ दे० अवधी) । **ह्वै** के पूर्वकालिक कृदन्त रूप है के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, जैसे **सूर ह्वै कें ऐसो घिघियात काहै को है** (गोकुल० ४-५) ।

प्राचीन ब्रजभाषा मे भी उपर्युक्त रूपो में के, कै, कें अथवा कैं रूप कभी कभी जोडे जाते है, किंतु पूर्वकालिक कृदन्त बनाने का यह ढग बहुत अधिक प्रचलित नही है, जैसे **पकरि के** (सू० म० ५), **नाचि कैं** (रस० १२) ।

उत्तरकालीन प्राचीन ब्रजभाषा मे खडीबोली हिन्दी पूर्वकालिक कृदन्त के प्रभाव पाए जाते है, जैसे **ह्वै करि सहाइ** (सेना० ९) ।

अधिकाश आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे पूर्वकालिक कृदन्त के लिए केवल धातु का ही प्रयोग अथवा धातु के साथ **कर** का प्रयोग किया जाता है। इसके अपवाद स्वरूप एकदम छोर पर की पश्चिमी, पूर्वी तथा दक्षिणी भाषाएँ है जिनमे साथ ही साथ कुछ अन्य रूप भी प्रयुक्त होते हैं।

क्रिया 'होनो'

२२२ **होनो** क्रिया का प्रयोग प्राय सहायक क्रिया के समान होता है अत इसके मुख्य रूप नीचे दिए जाते हैं।

इस क्रिया के दो मूल रूप है, **ह–** तथा **–हो–** । प्रथम का प्रयोग केवल वर्तमान निश्चयार्थ मे होता है । दूसरे के आधार पर शेष समस्त रूप सयोगात्मक तथा कृदन्ती बनते हैं ।

मूलकाल

वर्ग १

२२३ मैनपुरी को छोड कर सम्पूर्ण पूर्वी ब्रजप्रदेश मे तथा पश्चिम और दक्षिण के कुछ भागो मे भी (म०, बु०, भ०) **होनो** क्रिया के निम्नलिखित रूप वर्तमान निश्चयार्थ मे सहायक क्रिया अथवा मूल क्रिया के समान प्रयुक्त होते है

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पु०	**हौं**	**हैं**
मध्यम पु०	**है**	**हौ**
प्रथम पु०	**है**	**हैं**

बुलदशहर तथा भरतपुर मे उत्तम पुरुष एकवचन रूप **हूँ** (तुलनार्थ हिंदी **हूँ**) है, जो कभी कभी करौली मे तथा नियमित रूप से पूर्वी जयपुर मे प्रयुक्त होता है । कुछ जिलों मे (मैं०, अ०, पू० ज० तथा कभी कभी क० मे) हकार का लोप हो जाता है (§ ११४) । अलीगढ तथा करौली मे उत्तम पुरुष एकवचन के रूप क्रमशः **उँ** और **ऊँ** हैं।

कुछ पूर्वी सीमान्त जिलो मे (शा०, ह०, का० मे) क्रिया के –ऐ और –**औ** सयुक्त स्वरो का उच्चारण क्रमश. –**अइ** तथा –**अउ** की भाँति होता है (§ ९७)। इसके अतिरिक्त इन तीन जिलो मे उपर्युक्त रूप -**गो** इत्यादि प्रत्ययो के साथ कभी कभी प्रयुक्त होते है।

दूसरी क्रियाओ के विपरीत इस क्रिया मे प्रत्यय लगने से भविष्य के भाव का बोध नही होता। इन प्रत्ययो के साथ इसके निम्नलिखित रूप होते है

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	***हौंगो*** (स्त्री० –*गी*)	***हैंगे*** (स्त्री० *गीं*)
मध्यम पुरुष	***हैगो*** (स्त्री० –*गी*)	***हौगे*** (स्त्री० *गी*)
प्रथम पुरुष	***हैगो*** (स्त्री० –*गी*)	***हैंगे*** (स्त्री० *गीं*)

आगरा और धौलपुर मे रूप निम्नलिखित प्रकार के होते है

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	*हतौ*	*हतुएँ* (आगरे मे *हतैं*)
मध्यम पुरुष	*हतुऐ*	*हतौ*
प्रथम पुरुष	*हतुऐ*	*हतुएँ*

पश्चिमी ग्वालियर मे उपर्युक्त का निम्नलिखित रूप होता है

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	*हतों*	*हतै*
मध्यम पुरुष	*हतै*	*हतौ*
प्रथम पुरुष	*हतै*	*हतैं*

निम्नलिखित रूप सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र मे प्रयुक्त होते है, किन्तु वे वर्तमान सभावनार्थ के अर्थ मे प्रयुक्त होते है

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	*होउँ*	*होयँ*
मध्यम पुरुष	*होय*	*होउ*
प्रथम पुरुष	*होय*	*होयँ*

जैसे, ***अगर मैं झूँटो होउं*** इ०।

२२४ उपर्युक्त रूप ***होउँ*** इत्यादि कुछ परिवर्त्तन के साथ -**गो** इत्यादि प्रत्ययो के साथ पाए जाते है, किन्तु इनसे भविष्य का बोध होता है तथा इनका प्रयोग उन क्षेत्रो से भिन्न स्थानो मे होता है जहाँ **ह** भविष्य के रूप पाए जाते है (§ २१४)।

उदाहरणार्थ कुछ पूर्वी जिलो तथा कुछ पश्चिमी और उत्तरी क्षेत्रो मे भी (बरे०, ए०, ब०, बु०, क०) निम्नलिखित रूप प्रयुक्त होते है

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	***होउँगो*** (स्त्री० –*गी*)	***होंगे*** (स्त्री० *गीं*)
मध्यम पुरुष	***होयगो*** (स्त्री० –*गी*)	***होउगे*** (स्त्री० *गीं*)
प्रथम पुरुष	***होयगो*** (स्त्री० –*गी*)	***होंगे*** (स्त्री० *गीं*)

अन्य क्रियाओ की भाँति इस क्रिया का पुल्लिग उत्तम पुरुष बहुवचन रूप स्त्रीलिग रूप का स्थान लेता जा रहा है। अलीगढ मे अत्य **-ओ** का उच्चारण **-औ** की भाँति होता है (§ ९३)। यह रूप कभी कभी मथुरा मे भी पाया जाता है जहाँ दूसरा रूप ***हेँयगो*** मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष एकवचन मे पाया जाता है।

दक्षिण मे (पू० ज०, धौ०, प० ग्वा० तथा म० मे भी) उपर्युक्त रूपो का उच्चारण निम्नलिखित प्रकार से होता है

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	***होँगो*** (स्त्री० ***-गी***)	***होंगे*** (स्त्री० ***-गीं***)
मध्यम पुरुष	***होगो*** (स्त्री० ***-गी***)	***होंगे*** (स्त्री० ***-गीं***)
प्रथम पुरुष	***होगो*** (स्त्री० ***-गी***)	***होंगे*** (स्त्री० ***-गीं***)

आगरा मे भी उपर्युक्त रूप प्रयुक्त होते है किन्तु अत्य **-ओ** के स्थान पर **-औ** पाया जाता है।

२२५ प्राचीन ब्रज भाषा मे निम्नलिखित मुख्य रूप होते है

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	***हौं, हों, हूँ***	***हैं***
मध्यम पुरुष	***है***	***हौ***
प्रथम पुरुष	***है***	***हैं***

उत्तम पुरुष एकवचन रूप हौं सर्वाधिक प्रचलित है, जैसे ***मथुरा जाति हौं*** (सू० म० १)।

हों तथा ***हूँ*** रूप बहुत कम प्रयुक्त होते है, इनका प्रयोग गोकुलनाथ (जैसे १५-९, ३२-३) तक ही सीमित है। मेना० ३२ मे ***हौ*** कदाचित् छापे की भूल के कारण है।

उत्तम पुरुष बहुवचन मे ***हैं*** प्रचलित रूप है, जैसे ***देखे हैं अनेक ब्याह*** (तुलसी० क० १-१५)। अवधी रूप ***आहीं*** बहुत कम तथा कुछ ही लेखको मे पाया जाता है, जैसे ***हम आहीं*** (लाल० १९-२)।

मध्यम पुरुष एकवचन ***है*** रूप का प्रयोग समस्त लेखको के द्वारा हुआ है, जैसे ***तू है*** (सू० म० ७)।

सस्कृत तत्सम रूप ***असि*** बहुत कम मिलता है, जैसे ***कासि कासि*** (नन्द० २-४९)।

मध्यम पुरुष बहुवचन ***हौ*** रूप के विशेष रूपान्तर नही होते, जैसे ***बहुत अचगरी करत फिरत हौ*** (सू० म० २)। हिन्दी ***हो*** रूप बहुत कम पाया जाता है, जैसे ***ना हो हमारे*** (घन० १८)। गोकुलनाथ (४२-१८) मे ***हौं*** रूप पाया जाता है, किन्तु यह कदाचित् असावधानी के कारण है।

प्रथम पुरुष एक वचन ***है*** रूप प्रधान रूप है, जैसे ***कछु काम है*** (गोकुल० २०-१४)। अवधी रूप के निम्नलिखित रूपान्तर पूर्वी लेखको मे पाए जाते है किन्तु इनका प्रयोग अधिक नही हुआ है ***अहै*** (तुल० क० २-६, दास १६-३), ***आहि*** (नन्द० १-१०६; घन० १९) तथा ***आही*** (नंद० ५-६९) जो छद की विशेष आवश्यकता के कारण है।

अवधी रूप का प्रयोग छन्द की सुविधा के कारण हो सकता है, क्योंकि इसमें तीन मात्राएं पाई जाती है, जब कि ब्रज के *है* रूप मे केवल दो है।

प्रथम पुरुष बहुवचन *हैं* के रूपान्तर नही होते है, जैसे *उरहन लै आवति हैं सिगरी* (सू० म० ६)।

प्राचीन ब्रजभाषा मे निम्नलिखित रूप भी पाए जाते है किन्तु ये वर्तमान सभावनार्थ मे प्रयुक्त होते है :

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	*हौं, हौंउँ, होहुँ*	*होहि*
मध्यम पुरुष	*होय*	*होहु*
प्रथम पुरुष	*होय, होई, होइ*	*होहिं*

उदाहरण के लिए, *पाहन हो तो वही गिरि को* (रस० १), *देशादि के ऊपर आसक्ति न होय* (गोकुल० ८-२०)। *होई* रूप तुक के कारण है, जैसे केशव ३-७।

उपर्युक्त रूप *-गो* (पुल्लि०)*-गी* (स्त्री०) इत्यादि प्रत्ययो के साथ पश्चिमी लेखकों मे अधिक प्रचलित है किन्तु उनमे भविष्य के अर्थ का बोध होता है, जैसे *मुकुरु होहुगे नेक मैं* (बिहा० ७९), *तुम नें कह्यौ होयगौ* (गोकुल० ३५-२०), *तिनके गुरु की कहा बात होयगी* (गोकुल० २०-२)।

वर्ग २

२२६ दूसरे सयोगात्मक रूप *ह* भविष्य के नाम से प्रसिद्ध भविष्य निश्चयार्थ के है। इनका प्रयोग पूर्व के कुछ जिलो तक ही सीमित है। मैनपुरी, फर्रुखाबाद, पीलीभीत, कानपुर मे निम्नलिखित रूप प्रयुक्त होते है

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	हुइहौं	हुइहैं
मध्यम पुरुष	हुइहै	हुइहौ
प्रथम पुरुष	हुइहै	हुइहैं

इटावा मे उपर्युक्त रूप प्रयुक्त होते है किन्तु उनमे मध्य **–ह–** नही मिलता (§ ११४)। शाहजहाँपुर मे मध्य **–ह–** के लोप होने के साथ ही अन्त्य **–औ, –ऐ** क्रमशः **–अउ** तथा **–अइ** हो जाते है (§ ९७); इस प्रकार निम्नलिखित रूप प्रयुक्त होते है :

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	हुइअउँ	हुइअइँ
मध्यम पुरुष	हुइअइ	हुइअउ
प्रथम पुरुष	हुइअइ	हुइअइँ

प्राचीन ब्रज मे निम्नलिखित रूप प्रयुक्त होते है किंतु उनका प्रयोग अधिकतर पूर्वी लेखको, अथवा बाद के लेखको मे मिलता है।

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	ह्वैहौं	ह्वैहैं
मध्यम पुरुष	ह्वैहै	ह्वैहौ
प्रथम पुरुष	ह्वैहै, होइहै	ह्वैहैं

उदाहरण के लिए : ***ह्वैहौं न हँसाइ कै*** (तु० क० २-९), ***दर पुस्तनि ह्वैहै नृप भारी*** (लाल० ७-१६)।

वर्ग ३

२२७ आधुनिक ब्रज में मध्यम पुरुष एकवचन ***हो*** तथा बहुवचन ***होउ*** बिना किसी रूपान्तर के समस्त क्षेत्र में वर्तमान आज्ञार्थ में प्रयुक्त होते हैं, जैसे ***तू राजा हो, तुम राजा होउ।***

प्राचीन ब्रज में ***हो*** तथा ***होहु*** मध्यम पुरुष में क्रमश एकवचन तथा बहुवचन के रूप होते हैं, जैसे ***देखहु होहु सनाथ*** (नरो० ११), ***आतुर न होहु*** (घन० ९)।

कृदन्ती रूप

२२८ वर्तमान कालिक कृदन्त के रूप तथा उनके प्रयोग मुख्य क्रिया से भिन्न नहीं होते हैं (§ २१७)।

भूत संभावनार्थ

२२९ आधुनिक तथा प्राचीन दोनों ही ब्रज भाषाओं में निम्नलिखित रूप भूत सभावनार्थ की भाँति प्रयुक्त होते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग (सभी पुरुषों में)	होतो, होतौ	होते
स्त्रीलिग (सभी पुरुषो में)	होती	होतीं

उदाहरण के लिए, ***मैं हुआँ होतो, तौ आय जातो। श्रीनाथ जी को सिगार होतौ*** (गोकुल० १४-१८), ***अजू होती जो पियारी*** (पद्० १५-६२)।

भूतकालिक कृदन्त

२३० अन्य क्रियाओं के समान ***होनो*** क्रिया के भूतकालिक कृदन्त के रूप भूत निश्चयार्थ की भाँति प्रयुक्त होते हैं।

अधिकांश उत्तरी-पूर्वी जिलों मे (बरे०, ए०, ब०, पी०) में निम्नलिखित रूप होते है :

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	***हो***	***हे***
स्त्रीलिग	***ही***	***हीं***

मथुरा, बुलदशहर तथा भरतपुर मे पुल्लिग एकवचन रूप ***हौ*** है (§ ९३); अन्य रूप उपर्युक्त रूपो की भाँति ही होते हैं।

उत्तम पुरुष बहुवचन मे पुल्लिग रूप **है** स्त्रीलिग रूप **हीं** का स्थान लेता जा रहा है, जैसे **हम हुआँ है** रूप **हम हुआँ हीं** की अपेक्षा अधिक प्रचलित है।

कुछ दक्षिणी प्रदेश (क०, पू० ज०, कभी कभी ब० मे भी) हकारहीन रूप नियमित रूप से पाए जाते है (§ ११४)।

कुछ क्षेत्रो (आ०, अ०, धौ०, प० ग्वा०, शा०, फ०, ह०) मे निम्नलिखित रूप प्रयुक्त होते है ·

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	**हतो**	**हते**
स्त्रीलिग	**हती**	**हतीं**

अलीगढ मे पुल्लिग बहुवचन रूप **हते** का उच्चारण कभी कभी **हतै** (§ ९३) की भाँति होता है।

मैनपुरी तथा इटावा मे उपर्युक्त रूप बिना हकार के प्रयुक्त होते है (§ ११८)।

पूर्वी सीमान्त जिलो मे (नियमित रूप से का० तथा कभी कभी ह०, शा० मे) भूतकालिक कृदन्त के स्थान पर भूत निश्चयार्थ के अर्थ मे निम्नलिखित रूप प्रयुक्त होते है। मूलकाल होने के कारण उनमे लिग के कारण भेद नही होते है :

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	**रहौं**	**रहइँ**
मध्यम पुरुष	**रहइ**	**रहउ**
प्रथम पुरुष	**रहइ**	**रहइँ**

धौलपुर तथा मैनपुरी मे उत्तम पुरुष एकवचन **रहे**, बहुवचन **रहैं** रूप कभी कभी कहानियो मे, विशेषतया कहानी के प्रारभ मे मिलते है, जैसे **एक ठाकुर रहे, गरमी के दिन रहैं** (धौ०)। इन विलक्षणताओ का कारण इस क्षेत्र मे पूर्वी हिंदी प्रदेश से इन कहानियो का प्रारभ मे आना हो सकता है।

२३१. प्राचीन व्रज मे भूतकालिक कृदन्त के निम्नलिखित रूप होते है। इनका प्रयोग भूत निश्चयार्थ के अर्थ मे भी होता है।

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	**हो, हौ; हुतो हुतौ**	**हे; हुते**
स्त्रीलिग	**ही, हुती**	—

पुल्लिग एकवचन के समस्त रूपो मे **हो** सर्वाधिक प्रचलित रूप है, जैसे **मैं हो जान्यौ** (बिहा० ६४)। **हौ** रूप बहुत कम पाया जाता है (गोकुल० ४०-१९)। दूसरा प्रचलित रूप **हुतो** है, जैसे **आयो हुतो नियरे** (रस० ४७)। **हुतौ** रूप अपेक्षाकृत कम पाया जाता है (सेना० २५)।

पुल्लिग बहुवचन रूप **हे** (लल्लू० ८-५), और **हुते** (गोकुल० २-११) बराबर ही प्रयुक्त होते है। खडीबोली हिन्दी रूप **थे** एक दो स्थानो पर मिलता है। उदाहरणार्थ घनानद ६ मे **थाके थे बिकल नैना** अनुप्रास के लिए प्रयुक्त हुआ है।

स्त्रीलिंग एकवचन मे *हीं* तथा *हुतीं* दोनो रूप समानतया प्रचलित है, जैसे *निदरत ही* (सूर० य० १५), *कामरी फटी सी हुती* (नरो० ९५)।

स्त्रीलिंग बहुवचन के संभावित रूप *हीं, हुतीं* के उदाहरण नही मिल सके। यदि ये प्रयुक्त भी हुए होगे तो बहुत कम।

सूचना—आधुनिक रूप *हतो, हते, हती* नियमित रूप से २५२ वार्ता मे प्रयुक्त हुए है, जैसे ९४-३, ९६-२२, *हती* रूप लाल (३६-३) मे भी मिलता है।

निम्नलिखित रूपो का प्रयोग भी भूत निश्चयार्थ के अर्थ मे ही होता है किन्तु वे *हुआ* इत्यादि अर्थ मे प्रयुक्त होते है :

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	*भयो, भयौ; भो, भौ*	*भये*
स्त्रीलिग	*भई*	*भईं*

पुल्लिग एकवचन *भयो* तथा *भयौ* दोनो ही रूपो का प्रयोग बराबर होता है, जैसे *रङ्क तें राउ भयो तब हीं* (नरो० ४१, देव ३-४१)। *भो* (नरो० ३१) तथा *भौ* (मति० १५) रूप अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त होते है तथा अवधी प्रभाव के कारण हो सकते है (दे० तुलनार्थ अव० *भा*)।

पुल्लिग बहुवचन *भये* के रूपान्तर नही होत, जैसे *प्रसन्न भये* (गोकुल० ६-२०)।

स्त्री० एकवचन *भई* तथा बहुवचन *भईं* के भी कोई रूपान्तर नही होते, जैसे *गति मति भई तनु पंग* (सू० य० ९), *बावरी भईं बृज की वनिता* (दे० ३-४५)।

२३२. भूत निश्चयार्थ मे *हो* रूप ब्रज क्षेत्र के बाहर केवल मेवाती और मारवाडी में ही पाए जाते है।

हतो रूप (केवल *तो* इत्यादि मे भी परिवर्तित) बुन्देली और गुजराती तक सीमित है। मराठी मे *होतों* इत्यादि, मालवी, अहीरवारी, जौनसरी मे *थो* इत्यादि, और निमाडी, खडीबोली मे *था* इत्यादि (वैकल्पिक रूप से पजाबी तक मे) या पाए जाते है, तुलनार्थ दे० नैपाली *थियें* इत्यादि, उडिया *थिली* इत्यादि और लहन्दा *थिउसे* इत्यादि।

रह रूप जो कुछ पूर्वी सीमान्त जिलो मे पाए जाते है, पूर्वी हिंदी बोलियो और भोजपुरी के सामान्य रूप हैं। ये वैकल्पिक रूप से अन्य पूर्वी भाषाओ मे भी पाये जाते है।

सहायक क्रिया का *ह* रूप (वर्तमान निश्चयार्थ *हौ, हूँ* इत्यादि) हिन्दी की अन्य बोलियों (पश्चिमी खडीबोली मे *स*– रूप और अवधी मे *अह*– रूप अधिक प्रचलित है), राजस्थानी की मेवाती, मारवाडी, मालवी आदि बोलियो तक फैला हुआ है। सिंधी लहदा, पंजाबी, मगही, नैपाली मे यह वैकल्पिक रूप मे पाया जाता है, इन प्रदेशो मे इसके सामान्य रूप भिन्न होते है। तुलनार्थ दे० पश्चिमी खडीबोली और जौनसरी के रूप *स*– या *ओस*–।

कुछ पूर्वी जिलो तक ही सीमित वर्तमान काल मे प्रयुक्त ब्रज रूप *हौंगो* इत्यादि साधारणतया केवल पजाबी मे ही पाए जाते है। यह नही कहा जा सकता कि ये रूप बिल्कुल अलग पूर्वी ब्रज क्षेत्र मे किस प्रकार पहुँच गए है। इसी प्रकार *हतौं* इत्यादि

सामान्यतया दक्षिण मे पाए जाने वाले रूप किसी भी आधुनिक भारतीय आर्य भाषा मे नही पाए जाते। ये *ह* रूप भूतकाल मे प्रयुक्त कुछ अन्य रूपो के आधार पर बने जान पडते है।

संयुक्त क्रिया

२३३. क्योकि अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ के समान ब्रज मे सयोगात्मक कालों की सख्या अत्यत सीमित है अत क्रिया के अनेक अर्थों को व्यक्त करने के लिए बहुधा दो तथा कभी कभी तीन तीन क्रियाओ का एक साथ प्रयोग ब्रज मे किया जाता है। सयुक्त क्रियाओ मे प्रधान क्रिया का *होनो* सहायक क्रिया के साथ सयोग अत्यधिक प्रचलित है, इसलिए इसका वर्णन अलग से नीचे किया गया है।

अ—प्रधान क्रिया सहायक क्रिया के साथ

१. क्रिया का वर्त्तमान कालिक कृदन्त सहायक क्रिया के वर्ग १ के रूपों के साथ

२३४. इस बात का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है कि वर्ग १ के रूपो का प्रयोग कुछ परिस्थितियो मे वर्तमान निश्चयार्थ के समान होता है (§ २१२)। साधारणतया प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे वर्त्तमान (अपूर्ण) निश्चयार्थ के लिए क्रिया का वर्त्तमान-कालिक कृदन्ती रूप सहायक क्रिया के वर्ग १ के रूपो के साथ प्रयुक्त होता है *मै चलत हौ, वर्णत हौं* (केशव १, २१)। वर्तमान काल मे कार्य निरतर रूप से हो रहा है। इस भाव के द्योतक के लिए *रह्* धातु का भूतकालिक कृदन्त प्रधान क्रिया के पूर्वकालिक कृदन्त के रूप तथा सहायक क्रिया के वर्ग १ के रूपो के साथ प्रयुक्त होता है *मै चल रहो हौं* ।

बु०, भ०, पू० ज० मे सामान्य रूप से और कभी कभी मथु०, करौ० मे वर्तमान-कालिक कृदन्त मे सहायक क्रिया नही जोडी जाती, बल्कि मूलक्रिया के वर्ग १ के रूपो मे जोडते है। उदाहरण के लिए बुलदशहर मे निम्नलिखित रूप है ·

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	*चलूँ हूँ*	*चलैं हैं*
मध्यम पुरुष	*चलै है*	*चलौ हौ*
प्रथम पुरुष	*चलै है*	*चलैं हैं*

समस्त ब्रजप्रदेश मे क्रिया के वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप कभी कभी सहायक क्रिया *हो–* के वर्ग १ के रूपो के साथ वर्त्तमान (अपूर्ण) सभावनार्थ मे प्रयुक्त होता है : *अगर मैं झूठ कहित होउँ तो मर जाओँ* । किंतु आजकल इन संयुक्त रूपों का प्रयोग कम होता है। *हो–*के स्थान पर *ह–* सहायक क्रिया के वर्ग १ के रूपो का प्रयोग कुछ अधिक होने लगा है : *अगर मैं झूठ कहित हौं तो मर जाओं* ।

सहायक क्रिया का प्रधान क्रिया के वर्ग १ के रूपो के साथ सयोग गुजराती, राजस्थानी, गुर्जरी, कुमायूँनी तथा खडीबोली मे भी मिलता है। शेष समस्त आधुनिक भाषाओ मे साधारणतया सहायक क्रिया प्रधान क्रिया के वर्त्तमानकालिक कृदन्त के साथ संयुक्त की जाती है।

२. क्रिया का वर्त्तमानकालिक कृदन्त सहायक क्रिया के भूतकालिक कृदन्त के साथ

२३५ क्रिया का वर्त्तमानकालिक कृदन्त सहायक क्रिया के भूतकालिक कृदन्त के साथ भूत (अपूर्ण) निश्चयार्थ के लिए प्रयुक्त होता है अर्थात् इस भाव का द्योतन करता है कि कार्य भूतकाल मे समाप्त नही हुआ ***बौ चलत हो। आप पाक करते हुते*** (गोकुल० ८,११)। यह रूप प्राचीन ब्रज मे तथा आधुनिक ब्रज प्रदेश के अधिकाश भाग मे प्रयुक्त होता है। बुलदशहर, भरतपुर तथा पूर्व जयपुर मे सहायक क्रिया के रूप प्रधान क्रिया के –ऐ अन्तवाले रूप के साथ मिला कर भी उपर्युक्त काल के लिए साथ साथ प्रयुक्त होते है। उदाहरणार्थ बुलदशहर मे निम्नलिखित रूप व्यवहृत होते है

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग (समस्त पुरुषो मे)	***चलै हौ***	***चलै हे***
स्त्रीलिग (,, ,,)	***चलै ही***	***चलै हीं***

प्रधान क्रिया के वर्त्तमानकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के भूतकालिक कृदन्त को जोड कर भूत निश्चयार्थ के लिए प्रयोग करना लगभग समस्त आधुनिक भाषाओ मे पाया जाता है। कुमायूनी, जौनसरी, गुर्जरी, जयपुरी, मेवाती, मारवाडी तथा खडीबोली मे (अंतिम दो मे वैकल्पिक रूप मे) प्रधान क्रिया का –ए रूप वर्त्तमानकालिक कृदन्त के स्थान पर प्रयुक्त होता है।

३. क्रिया का भूतकालिक कृदन्त सहायक क्रिया के वर्ग १ के रूपों के साथ

२३६. प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे उपर्युक्त सयुक्त क्रिया मे वर्त्तमान पूर्ण निश्चयार्थ अर्थात् वर्त्तमान काल मे कार्य समाप्त होने का भाव प्रकट होता है ***मैं चलो हौं। हम पढ़े एक साथ हैं*** (नरो० ९)।

क्रिया का भूतकालिक कृदन्त सहायक क्रिया ***हो*** के वर्ग १ के रूपो के साथ समस्त ब्रज प्रदेश मे वर्त्तमान पूर्ण सभावनार्थ के लिए प्रयुक्त होता है ***अगर मैं झूट बोलो होउँ।*** यहाँ भी व्यवहार मे सहायक क्रिया ह—के वर्ग १ के रूप अधिक प्रयुक्त होने लगे है. ***अगर मैं झूट बोलो हौं*** इत्यादि।

लगभग समस्त आधुनिक आर्यभाषाओं मे उपर्युक्त अर्थों मे इसी प्रकार क्रिया तथा सहायक क्रिया के रूपो का प्रयोग होता है।

४. क्रिया का भूतकालिक कृदन्त सहायक क्रिया के भूतकालिक कृदन्त के साथ

२३७. उपर्युक्त संयुक्त क्रिया से प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज में भूत पूर्ण निश्चयार्थ अर्थात् भूतकाल में कार्य के समाप्त हो जाने का भाव प्रकट होता है : ***वो चलो हो, मैं हो जान्यो*** (बिहा० ६४)।

इस बात का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है कि साधारण भूत निश्चयार्थ का भाव केवल भूतकालिक कृदन्त से प्रकट होता है (§ २१९)।

लगभग समस्त आधुनिक भाषाओं मे सहायक क्रिया का भूतकालिक कृदन्त इसी प्रकार क्रिया के भूतकालिक कृदन्त के साथ प्रयुक्त होता है।

क्रिया के कृदन्ती रूपों का सहायक क्रियाके वर्त्तमानकालिक कृदन्त अथवा वर्ग २ के रूपों के साथ संयोग ब्रज प्रदेश मे प्रचलित नही है। नगरों में खडीबोली के अनुकरण में ब्रज में भी कभी कभी इस प्रकार के रूप प्रयुक्त होते हैं। अतः इनको साधारण ब्रजभाषा के रूप मानना उचित नही होगा।

आ—दो प्रधान क्रियाओं का संयोग

२३८. प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ही ब्रज भाषाओं में अनेक अर्थों को व्यक्त करने के लिए दो प्रधान क्रियाओं का संयोग अत्यन्त प्रचलित है। किन्तु प्राचीन की अपेक्षा आधुनिक ब्रज मे ऐसे संयुक्त रूप अधिक मिलते है। मुख्य क्रिया के रूप के अनुसार उनका वर्गीकरण निम्नलिखित रूप मे किया जा सकता है :

(क) धातु के साथ

चलनो : *गेर चलुगो* (बु०)
चुकनो : *चल चुक्यौ* (म०)
देनो : *चल दए; मार दए; डाद् दौं* (धौ०) *बेच दई* (बु०); *खोल दै* (फ०), *कर दा* (बु०)
जानो : *लौट जाएँ; आ गो* (ग्वा०), *भाज गयो* (बु०)
सकनो : *चल सकनो* (अली०)

(ख) क्रियार्थक संज्ञा के मूल रूप के साथ :

चाहनो : *देखनो चइऐ*
करनो : *जैबो करै* (धौ०), *रोइबो करैं* (धौ०)
पड़नो : *सुनानो पड़ैगो* (क०)

(ग) क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप के साथ :

देनो : *चलन देओ; आमन देओ* (आने दो) (म०), *जान दीन्हें* (सूर० म० २)
लगनो : *होन लगे* (पी०), *खान लगो; चलन लगो, कटन लग्यै* (लाल० ६-७०), *देन लगी* (लाल ७-१३);

पलटन लगे (पद्० ६-२४); **न्हान लागीं** (सूर० म० ९), **बरसन लगे** (तुलसी गी० ६-४)

पाउनो : **चलन पावै** (बु०)

(घ) भूतकालिक कृदन्त के साथ :

आउनो : **चल्यौ आयौ** (भ०)

चाहनो : **मुद्यो चहत** (दास० १५-६७) **चुग्यौ चाहतु** (लल्लू० ८-२४)

देनो : **दए देत**

जानो : **बए जात हैं; रई** (रही) **जात है; ना बखानी काहू पै गई** (केशव १, २)

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि यह ब्रज का नियमित कर्मवाच्य का रूप है, दे० २०९।

करनो : **चल्यो करै** (भ०), **चलो कत्तु** (म०) **देख्यो कर्यो** (क०); **सुखओ कत्त** (ए०)

रहनो : **खड़े राउ** (खड़े रहो), **पड़ो रओ, देखे रहियो** (सूर० म० पृ० २७७)

(ङ) वर्त्तमानकालिक कृदन्त के साथ

जानो : **परति जाति** (पद्० ४-१५)

पाउनो : **चलत पाए** (सूर० म० ५)

फिरनो : **खेलत फिरैं** (तुलसी क० २७)

रहनो : **करत रहत** (सूर० म० २); **चल्तु रहितु** (आ०)

(च) पूर्वकालिक कृदन्त के साथ ·

आउनो : **लै आओ; लै आई** (सूर० म० ५); **निकसि आईं** (सूर० म० २)

चलनो : **लै चली** (सूर० म० २)

देनो : **दै दई; धरि दे** (सूर० म० १३)

होनो : **चलि भए** (धौ०)

जानो : **भजि गये** (ए०); **हुइ गओ; आए जा; आय गई** (सूर० म० ४); **चमकि गए** (सूर० म० २); **सूखि गये** (तुलसी० क० २-११); **गड़ि जात** (पद्म० ३-१२)

करनो : **आनि कै** (तुलसी क० १-१०)

लेनो : **खाए लै; बुलाए लियो** (सूर० म० ८); **घेरि लियो** (घन० ३); **सताए ले** (दास० १३-५८), **लूट लए** (पद्म० ६-२२); **देख लीजतु** (देव० १-२८), **निबेरि लेहु** (सूर० ५-२१)

निकरनो : *आय निकर्यो* (भर०)
पड़नो : *जानि पड़त* (पद्म० ६-२७)
पाउनो : *धरि पाए* (सूर० म० ४)
रहनो : *लगि रए हैं; जाय रए; चाहि रही* (सूर० म० ३); *गोइ रही* (सूर० म० ८)
सकनो : *चलि सकत* (सूर० म० १५), *कहि सकत* (पद्म० ६-२४); *लै सकै* (लल्लू० २-२४)

इ—तीन क्रियाओं के संयुक्त रूप

२३९. **(क) दो क्रियाओं तथा एक सहायक क्रिया का संयोग**—ये सयुक्त रूप उपर्युक्त दो प्रधान संयुक्त क्रियाओं के साथ (§ २३८), सहायक क्रिया के सयोग से बनते हैं : *बौ पढ़ सकत है; बौ जाय सकत हो।*

(ख) तीन प्रधान क्रियाएँ—तीन प्रधान क्रियाओं का संयोग बहुत कम होता है : *चलो जाश्रो करै* (इ०); *लै लेन देश्रो* (इ०); *रोए देवौ करैं* (धौ०); *ले आइबो करैं* (धौ०)।

*

१०. अव्यय

क्रियाविशेषण

२४०. ब्रजभाषा मे प्रयुक्त क्रियाविशेषण के रूप संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण अथवा पुराने क्रियाविशेषणों के आधार पर बने है। इनमें सर्वनामों के आधार पर बने क्रिया विशेषणों का प्रयोग अधिक मिलता है। इनमे रूपान्तर आधुनिक ब्रज मे तो प्रादेशिक है तथा प्राचीन ब्रज में छन्द की आवश्यकता के कारण होते है।

कालवाचक

२४१. निम्नलिखित कालवाचक क्रियाविशेषण आधुनिक तथा प्राचीन दोनों ब्रज भाषाओ मे अधिक प्रयुक्त होते है :

अब; ***आगे***; ***आगै*** (लल्लू० १२-१३), ***आगैं*** (बिहा० ३८), ***आज***; ***आजु*** (विहा० २२, रस० ८); ***जब***; ***जौ लौं***; ***कब***; ***फिर***; ***फेर*** (बु०, इ०, पू० ज०); ***फिरि*** (बिहा० २६), ***पीछे***; ***पाछे*** अथवा ***पाछें*** (गोकुल० २-१३, ४-९), ***तब***; ***तौ***; ***तउ*** (शा०), ***तौ लौं***।

निम्नलिखित उदाहरण विशेष रूप से आधुनिक ब्रज में पाए जाते है :

अगार (मै०), ***अगेला*** (ए०, व०), ***हाल*** (आ०); ***होहर*** (मै०); ***जल्दी***; ***झट्ट***; ***पिछार*** (मै०); ***तुरन्त***; ***तुत्त*** (इ०)।

निम्नलिखित उदाहरण प्राचीन ब्रज मे पाए जाते है। इनमे से अधिकाश मस्कृत शब्द है :

अगत्रई (नरो० २०), ***छिन*** (रस० १२); ***छिनु*** (बिहा० ३०), ***छिनकु*** (बिहा० १२); ***जद*** (लल्लू० १३-२४); ***ज्यौं*** (लल्लू० १०-२६) ***कैवा*** (बिहा० १६), ***नित*** (सूर० म० १०) ***पुनि*** (नन्द० १-११४); ***सदा*** (पद्म० १-१), ***सदाँ*** (देव० ३-१०), ***तद*** (लल्लू० १२-१५)।

स्थानवाचक

निम्नलिखित स्थानवाचक क्रियाविशेषण प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ही ब्रज भाषाओं मे पाए जाते है :

अन्त (भ०); ***अनत*** (सूर० म० १२); ***आगे***; ***आस पास***; ***बाहिर***; ***भीतर***; ***ढिंग***; ***उहाँ*** (सूर० म० ९-११४); ***जहाँ***, ***कहाँ***; ***नीचे***; ***पाछे***; ***पीछें*** (धौ०); ***पाछे*** (सूर० म० १३); ***सामने***; ***तहाँ***; ***तहँ*** (नन्द० १-१४); ***ऊपर***।

निम्नलिखित रूप विशेषतया प्राचीन ब्रज मे मिलते है :

अनु (नन्द० म० १-८४); ***इत*** (सूर० य० १६); ***जित*** (देव० ४-१४), ***कित***

(सेना० २-१८); *तित* (देव ४-१८), *उत* (पद्म० १०-४४); *निकट* (गोकुल० ५-१०); *सामुहे* (सूर० म० ८)।

निम्नलिखित रूप मुख्यतया आधुनिक ब्रज मे पाए जाते है

हियाँ (यहां) के अनेक रूपान्तर पाए जाते है, जैसे *हिँयन* (ब०), *याँ* (म०), *भ्याँ* (प० ग्वा०), *जाँ* (इ०)। इसी प्रकार *हुआँ* (वहाँ) के भी अनेक रूप मिलते है, जैसे *हुअन* (ब०), *बाँ* (आ०), *वाँ, माँ, म्हाँ* (पू० ज०), *महाँ* (भ०), *ह्वाँ* (बु०)।

कुछ अन्य विशेष क्रियाविशेषण नीचे दिए जाते है · *वित* (भ०), *धोंरे* (बु०), *जौरे* (ब०); *कौहाँ* (बु०), *खाँ* (कहाँ) (पू० ज०); *नजदीक; पल्लँग; उल्लँग*।

रीतिवाचक

२४३. प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ब्रजो मे पाए जाने वाले रीतिवाचक क्रिया विशेषण निम्नलिखित है :

ऐसे; ऐसें (लल्लू० २-१८), *वैसे, धीरे, जैसे, जैसें* (नन्द० १-८८), *कैसे, केसे* (लल्लू० १५-१७), *तैसे, तैसें* (लल्लू० ३-२)।

विशेषतया प्राचीन ब्रज मे पाए जाने वाले रूप निम्नलिखित है

अजोरी (सूर० म० १४), *अस* (नन्द० १-२९), *बर* (बिहा० ६७), *जस* (नन्द० १-२९), *जिमि* (रस० १०), *ज्योँ* (दास २-१०), *ज्यौं* (बिहा० ४१), *जों* (नन्द० १-७२), *जनों, जनु* (नन्द० १-६७), *किमि* (नरो० १७), *मनों* (नन्द० १-३); इसी प्रकार *मनौ, मनु, मानौं, त्यों, यों* (देव ३-१०) रूप भी होते है।

आधुनिक ब्रज मे निम्नलिखित विशेष शब्द मिलते है .

बिरकुल्ल; इकिल्लो; न्यौं (प० ग्वा०), तथा *न्यूँ, नों, नुँ* (बु०)।

निषेधवाचक

२४४ *न* अथवा *नहीं* के अनेक रूप प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ही ब्रज भाषाओ मे पाए जाते है। प्राचीन ब्रज के मुख्य रूप नीचे दिए जाते है

नहीं (सू० म० १), *नहि* (नरो० १०), *नाहीं* (लल्लू० २-२२), *नाँहि* (बिहा० ६), *नहिँन* (सू० म० २), *नाहिन* (नन्द० १-९९), *ना* (देव २-९), *न* (सेना० २-१)। पूर्वी रूप *जिन* (नन्द० १-९७) अथवा *जनि* (सू० म० १७) कही कही मिलता है।

आधुनिक ब्रज मे निम्नलिखित रूप प्रचलित है *नाँय* (ब०), *नईँ* (बु०), *नाईँ* (शा०), *ना* (पू० ज०), *निँ* (क०)। *बिन* (बु०) और *बिदून* रूप बिना के अर्थ मे प्रयुक्त होते है। *मत* अथवा *मित* भी निषेध वाचक अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

कारणवाचक

२४५ प्रधान कारणवाचक क्रियाविशेषण *क्यौं* अथवा *क्यों* और *का* है। ये प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ही ब्रज मे पाए जाते है। प्राचीन ब्रज मे *कत* (सूर० म० १६) और *कतक* (नन्द० १-९८) क्यो के अर्थ मे कही कही मिलते है।

आधुनिक ब्रज मे मुख्य रूपान्तर इस प्रकार है : *काहे, काए* (मै०), *चौं* (ए०), *च्यौं* (धौ०), *कहा* (म०)।

परिमाणवाचक

२४६ प्राचीन ब्रज मे पाए जाने वाले परिमाणवाचक क्रियाविशेषण निम्न-लिखित है :

केतो (नरो० २०), *कछु* (नन्द० १-२८); *कछुक* (नन्द० १-२८); *नैक* (बिहा० ७)।

उपर्युक्त रूपो के अतिरिक्त निम्नलिखित विशेषतया आधुनिक ब्रज मे मिलते है :

और; *अतन्त* (म०), *इखट्टे* (म०), *जरा*; *जाधै* (ब०); *जादा* (फ०); *मुतके* (बहुत) (क०), *सबरे* (भ०)।

२४७. क्रियाविशेषण मूलक वाक्याश, विशेषतया आवृत्तिमूलक वाक्यांश भी स्वतंत्रतापूर्वक प्रयुक्त होते हैं :

कालवाचक

प्राचीन ब्रज :

बार बार	(सू० म० ३);	*बेर बेर*	(सेना० २-१९);
छिन छिन	(नन्द० १-७६);	*एक समय*	(गोकुल० १-१)
घरी घरी	(पद्म० ७-३०),	*जब जब...तब तब*	(बिहा० ६२),
कइयो बार	(नरो० २२);	*काहू समें*	(लल्लू० १-३)
नित प्रति	(सूर० म० ९);	*फिर फिर*	(सूर० म० ६)
तौ अब	(पद्म० ६-२८)।		

आधुनिक ब्रज मे पाए जाने वाले विशेष रूप है

चाँय जब; *इत्ते खन* (मै०); *हरबे जरबे*; *जब तब*।

स्थानवाचक

प्राचीन ब्रज :

चहुँ ओर (बिहा० ८४); *जित तित* (नन्द० १-२७), *जहाँ के तहाँ* (नन्द० १-७१), *कहूँ के कहूँ* (नन्द० १-२७)।

आधुनिक ब्रज :

चायँ जाँ; *चायँ ताईँ*, *जाँ ताँ*।

रीतिवाचक

प्राचीन ब्रज :

ज्यौँ ज्यौँ.....त्यौँ त्यौँ (बिहा० ४०)।

आधुनिक ब्रज :

चायँ जैसो

समुच्चयबोधक

२४८ नीचे ऐसे समुच्चयबोधक अव्ययो की सूची दी गई है, जिनका प्रयोग ब्रजभाषा में अधिक मिलता है।

संयोजक ***और*** (नरो० ९); ***औ*** (तुलसी० क० १-२); ***अरु*** (रस० ३); ***फेरि*** (सूर० म० ६); ***पुनि*** (तुलसी० क० १-४)

और कई रूपान्तरों के साथ आधुनिक ब्रज मे पाया जाता है---***अउर***, ***अउ*** (शा०); ***अरु*** (मैं०), ***औरु*** (ए०); ***फिर*** भी अधिक प्रयुक्त होता है।

विभाजक

प्राचीन ब्रज में ***कै*** (पद्म० ७-२८), ***की*** (रस० ४); ***कै...कै*** (नरो० १२) रूप पाए जाते हैं।

उपर्युक्त रूपो के अतिरिक्त आधुनिक ब्रज मे : ***चायँ....चाँय***, ***नाँय....तौ*** रूप मिलते हैं।

विरोधवाचक

पै (नरो० १३) रूप प्राचीन तथा आधुनिक दोनों ही ब्रज मे पाया जाता है। आधुनिक ब्रज में ***लेकिन*** का प्रयोग भी अधिक मिलता है।

निमित्तवाचक

तौ तथा ***तो*** (नरो० १४) के अतिरिक्त ***तो पै*** (नरो० २०) और ***तब*** रूप क्रमश प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज मे पाए जाते हैं।

उद्देश्यवाचक

जो (नन्द० १-१०८) अथवा ***जौ*** (नरो० १३) प्राचीन तथा आधुनिक दोनों ब्रजों में पाया जाता है। वाक्यांश ***जो पै*** (नरो० १४) प्राचीन ब्रज में अधिक मिलता है।

संकेतवाचक

प्राचीन तथा आधुनिक दोनो ही ब्रजो में पाए जाने वाले रूप ***जो*** के अतिरिक्त ***जदपि*** (पद्म० ९-२८) और ***चायँ*** क्रमश: प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज में मिलते हैं।

व्याख्यावाचक

तातै अथवा ***तासै*** अनेक रूपान्तरो---***ताते***, ***तातें***, ***तासों***--- के सहित प्राचीन तथा आधुनिक दोनों ही ब्रजो मे मिलता है।

विषयवाचक

कि (लल्लू० २-१४) तथा ***जो*** (गोकुल० २०-१५) अधिक प्रचलित रूप है। आधुनिक ब्रज मे ***कि*** के मुख्य रूपांतर ***अक***, ***अकि*** (बु०) तथा ***कै*** हैं।

प्राचीन ब्रज में कुछ शब्द पद्य में मात्रापूर्त्ति के लिए प्रयुक्त है। ऐसे शब्दो मे *जु*, *धौं* का प्रयोग अधिक हुआ है *तिन के हेत खंभ ते प्रकटे नरहरि रूप जु लीन्हो* (सूर० वि० १८), *जानि न ऐसी चढ़ा चढ़ी मैं किहि धौं कटि बीच ही लूट लई सी*। इन **दो** शब्दों का इस प्रकार प्रयोग प्राचीन अवधी काव्य मे भी हुआ है।

निश्चयबोधक रूप

२४९ ब्रजभाषा मे दो प्रकार के निश्चयबोधक रूप पाए जाते है, एक केवलार्थक तथा दूसरे समेतार्थक। निश्चयबोधक के चिह्नो का प्रयोग बहुत मिलता है। ये संज्ञा सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण अथवा परसर्ग आदि अनेक प्रकार के शब्दो के साथ प्रयुक्त होते है।

समेतार्थक

२५० आधुनिक ब्रज मे समेतार्थक निश्चयबोधक बनाने के लिए व्यंजनांत शब्दो अथवा आकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऊकारान्त शब्दो मे **–औ** परसर्ग जोड देते है तथा दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है। इसी प्रकार एकारान्त, एकारान्त तथा ओकारान्त शब्दो मे ऊ अथवा ऊँ जोड दिया जाता है। कभी कभी अंत्य स्वर का या तो लोप हो जाता है अथवा वह परसर्ग मे जुड़ जाता है। उदाहरण के लिए *खेतिऔ*, *मैं ऊँ* (म०), *लालौ*, *खानो ऊ*, *अबौ*, *पेड़ को ऊ*।

प्राचीन ब्रज मे समेतार्थक निश्चयबोधक रूप **हू**, तथा इसी के अन्य रूपान्तर **हुँ**, **हूँ** तथा कभी कभी छन्द की आवश्यकता के कारण ह्रस्व रूप **हु** लगा कर बनता है। अल्पप्राण रूप **ऊ** बहुत कम मिलता है, जैसे *ग्यान हू* (सेना० २-३), *हौ हूँ* (पद्म० २-६), *थोरे ऊ* (लल्लू० १३-२१), *दुराये हू* (सेना० २-१०) *नन्द हु ते* (सू० म० ६)।

केवलार्थक

२५१ आधुनिक ब्रज मे केवलार्थक रूप व्यंजनांत शब्दो मे अथवा आकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऊकारान्त शब्दो मे –ऐ अथवा –ऐं लगा कर बनता है और एकारान्त एकारान्त, ओकारान्त धातुओ मे ई अथवा ईं लगा कर बनता है। उदाहरण के लिए *भंगियै*, *बेई*, *दुइऐ*, *चलतै*, *तबै हम से ई*।

प्राचीन ब्रज मे केवलार्थक रूप *ही* तथा उसके अन्य रूपान्तर *हीं*, *हि*, *ईं*, *ई*, *इ* लगा कर बनता है। उदाहरण के लिए *प्रात ही*, *तुम हीं पै* (सू० म० ५), *ऐसोई* (नरो० १९); *देखत ही* (पद्म० ८-३७) *तुरत हि* (सू० म० १३), *जहाँ ईं* (पद्म० ३-१३), *कर्म कौ ई* (लल्लू० ५-२३)।

परिशिष्ट १

संख्यावाचक

संख्यावाचक क्रियाविशेषण के लिए ब्रज मे निम्नलिखित रूप मिलते हैं। बरेली की बोली मे पाए जाने वाले रूप पहले दिए गए हैं। अन्य क्षेत्रो (ज़िलो) मे पाए जाने वाले तथा प्राचीन साहित्य से प्राप्त रूप भी दे दिए गए है।

पूर्ण संख्यावाचक

एक, दुइ, तीन, चार, पाँच, छै, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारै, बारै, तेरै,

क्रम संख्यावाचक

विशषणों की भाँति पूर्ण सख्यावाचक के भी लिंग के विचार से—पुल्लिग तथा स्त्रीलिग —दो रूप होते हैं। स्त्रीलिग रूप -ओ के स्थान पर -इ लगा कर बनता है। पुल्लिग मूल रूपो मे ओ के स्थान पर ए लगा कर विकृत रूप बनाते हैं।

१. *पैहलो* : *पहिलो* (बदा०, फरु०, शाह०, पीली०, हर०, कान०), *पहलो* (मैन०), *पहॅलो* (म०); *पहलौ* (आग०, अली०, बुल०, भर०), *पैलो* (पू० जय०, करौ०, ए०, प० ग्वा०, इटा०), *पहिलो* (सू० म० १३), *पहिली* (सू० म० २३, लल्लू० ३-१८) *पहिले* (सू० म० ३४, केशव १-१) *पहिलै* (लल्लू० १८-२५)

२. *दूसूरो* : *दूसरो* (म०, करौ०, धौ०, मैन०, ए०, बदा०, प० ग्वा०, इ०) *दुसरो* (फ०, शाह०, पी०) *दूसरौ* (आग०, अली०, बुल०, भर०) *दोसरो* (हर०, कान०) *बियो* (तु० क० ६-५३) *दूजी* (लल्लू० ३-१९) *दूजै* (लल्लू० १०-३) *दूजो* (तु० क० १-१६)

३. *तीसरो* : *तीसरो* (म०, करौ०, धो०, मैन०, ए०, बदा०, प० ग्वा०, इटा०) *तीसरौ* (आग०, अली०, बुल०, भर०) *तिसरो* (हर०, कान०, फरु०, शाह०, पीली०) *तीजी* (लल्लू० ३-२०) *तीसरे* (तु० क० ५-३०)

४.	चौथो	:	चउथो (शाह०)
			चउथी (लल्लू० ३-२१)
५.	पाँच्मों	:	पाँचमों (करौ०, बदा०)
	पैँचँओ		पाँचओ (म०, पू० जय०, प० ग्वा०)
			पाँचओं (ए०)
			पचयो (आग०)
			पाँचवओं (अली०)
			पाचयौ (भर०)
			पाँचयो (धौल०)
			पैँचओ (पीली०, मैन०)
			पैँचओँ (फर्रु०, शाह०)
			पाँचवीँ (लल्लू० ३-२३)
६.	छटो	:	छटौ (म०, आग०, अली०, बुल०, भर०)
			छठो (फर्रु०, पीली०, बदा०)
			छटमो (इटा०),
			छठी (तुल० गी० १-५)
७.	सात्मो	:	सँतओँ (मैन०, पीली०)
	सतओँ		सँतओ (म०)
			सातओँ (ए०, इटा०)
८.	आठ्मो	:	अठओ (म०)
			अठओँ (मैन०, फर्रु०, शाह०, पीली०)
			अठयौ (आग०)
			आठ्यो (भ०); आठओ (पू० जय०, प० ग्वा०)
			आठओँ (ए०); आठमो (करौ०, बदा०, इटा०)
			आठयो (धौल०)
	नमो	:	नमो (म०, मैन०, प० ग्वा०)
	नमओँ		नौमी (करौ०, बदा०)
			नयओ (आग०)
			नौयौ (भ०)
			नौयो (धौ०)
			नओ (पू० जय०)
			नमओँ (ए०, इटा०, फर्रु०, शाह०)
			नवओ (पीली०)

१०. *दस्मो* : *दसओं* (मैन०, ए०, फर्रु०, शाह०, पीली०)
दसओं *दसओ* (म०)
दसमो (आग०, करौ०, धौ०, प० ग्वा०)
दस्मो (बदा०)
दसयौ (भ०)
दसयो (पू० जय०)
दसों (इटा०)

११. *ग्यारहमो* *ग्यारओं* (मैन०, ए०)
ग्यारहओं *ग्यारओ* (म०)
ग्यारहमौ (आग०)
ग्यारहयौ (भ०, पू० जय०)
ग्यारहैमो (करौ०)
ग्यारहमो (धौ०, बदा०, प० ग्वा०)
ग्यारहओं (इटा०)
गिरहओं (फर्रु०, शाह०, पीली०)

१० या ११ के बाद की पूर्ण सख्या साधारणतया प्रयुक्त नही होती। बरेली की बोली मे ११ या ११ के बाद की पूर्ण संख्या बनाने के लिए पुल्लिग मूलरूप मे ***—मों*** अथवा ***ओं*** पुल्लिग विकृत रूप मे ***—मे*** अथवा ***अएँ*** और स्त्रीलिग ***—मी*** अथवा ***अईं*** जोड कर बनाते है। ११ से ले कर १८ तक की पूर्ण संख्या मे अत्य ***—ऐ*** का लोप कर के प्रत्यय जोडते है, जैसे ***बारहमो*** अथवा ***बारहओं***

अपूर्ण संख्यावाचक

निम्नलिखित अपूर्ण सख्यावाचक अधिक प्रयुक्त होते है :

$\frac{1}{4}$ *चौथ्याई* *चौथियाई* (मैन०, बदा०, शाह०)
चोथाई (अली०, पू० जय०, ए०, प० ग्वा०)
चउथाई (भ०)
चौथारो (धौ०)
कौरा (इटा०)
कोरा (प० ग्वा०)

$\frac{1}{3}$ *तिहाई* *तिआई* (ए०)
तिहयाई (पू० जय०, मैन०, इटा०)

$\frac{1}{2}$ *आधो* *आदो* (ए०, प० ग्वा०)
आधो (म०, आ०, अली०, बुल०, भ०)

वि० रू० ***आधे***

स्त्री० ***आधी***

$\frac{3}{4}$ **पौन** (तुल० पौनो)	**पौरए** (बुल०)
	पोन (पू० जय०, इटा०)
$+\frac{1}{4}$ **सवा**	**सवा** (आग०, अली०, भ०)
	तुलनार्थ **सबाश्रो सेर** (इटा०, फर्रु०, शाह०, पीली०, बदा० ए०)
	सबाश्रो (मैन०)
	सबायौ (धौ०)
	सवायो (अली०)
$१\frac{1}{2}$ डेढ़	**डेड़** (म०)
	डेड (पू० जय०, करौ०)
	डेढ़ (आग०, धौल०, फर्रु०)
	डेढ़उ (धौल०)
	डेढ (बुल०)
	डेढ़ (भर०)
	ड़ेड़ (मैन०, ए०) तुल० **डेश्रोढ़ो** (अली०) **डेश्रोढ़ो** (बुल०)
$२\frac{1}{2}$ **अढ़ाई**	**ढाई** (म०, अली०, बुल०, भ०, पू०जय०, करौ०, धौ०, प०ग्वा०)
$+\frac{1}{2}$ **साढ़े**	**साड़े** (म०, पू० जय०, धौ०, मैन०, ए०, प० ग्वा०, इटा०)

आवृत्तिमूलक संख्यावाचक

यह भाव प्रकट करने के लिए निम्नलिखित रूप प्रयुक्त होते हैं :

दूनो	*दूनौ* (आग०)
दुगूनो	*दूरणौ* (बुल०)
	दुगुनो (फर्रु०)
तिगूनो	
चश्रोगुनो	*चौगुनी* (तु० क० ५-१९)
	चौगुनो (नरो० ८२)

सौगुनी (नरो० ८२)

पँचगुनो

दोनों के लिए ब्रज में **दोनौ** शब्द है।

दूसरे जिलो मे पाए जाने वाले रूप हैं :

दूनौं (पू० जय०), **दोई** (बुल०); **दोऊ** (म०, मैं०, बदा०); विकृत रूप—**दोऊन** (अली०), **दोउन** (भर०)

दोऊ (सू० म० १६), **दोउ** (तु० गी० १-२३), **उभइ** (हित० २५)।

'समस्त तीनो' 'समस्त चारौ' के भाव को व्यक्त करने के लिए पूर्ण सख्यावाचक मे **-श्रौ** जोड देते है, जैसे **तीनौ**, **चारौ**, **पाँचौ** (बरे०)।

तीन्यौ; **तीनों**; (गोकुल० ११-२); **तिहुँ** (हित० २); **चारों** (लल्लू० ४-१२); **चारयो** (तु० गी० १-२६)।

११. वाक्य

शब्दक्रम

२५२. पद्यात्मक रचना मे वाक्यान्तर्गत शब्दों के साधारण क्रम मे छन्द की आवश्यकता के कारण प्रायः उलट फेर हो जाता है, अतः इस विषय का ठीक अध्ययन गद्य रचनाओं के आधार पर ही हो सकता है। ब्रज का अधिकांश साहित्य पद्य मे होने के कारण प्राचीन ब्रज में शब्द क्रम का रूप दो गद्य ग्रंथों—चौरासी वार्त्ता (१७ वी शती) और राजनीति (१९ वी शती)—से प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक ब्रजभाषा के शब्द क्रम का अध्ययन गद्य के उदाहरणो के आधार पर है।

२५३ प्राचीन तथा आधुनिक दोनों ही ब्रजभाषाओं मे साधारणतया निम्नलिखित शब्दक्रम होता है : कर्त्ता, कर्म, क्रिया। विशेषण का प्रयोग साधारणतया सज्ञा या सर्वनाम के पहले होता है। क्रियाविशेषण क्रिया के पहले आता है। उदाहरणार्थ *तुम नै एक रुपा छुड़ाय लियौ* (म०); *लाल टोपी कहाँ है ? तब श्री आचार्य जी महाप्रभू आप पाक करत हुते* (गोकु० २-११)।

२५४. किसी भाव विशेष पर बल देने के लिए शब्दों के साधारण क्रम मे प्रायः उलट फेर कर दिया जाता है।

कर्त्ता क्रिया के बाद रखा जा सकता है; जैसे *मै जानतौ रुप्या हैंगे, निकरी असरफीं* (म०), *सूरदास जी सों कह्यौ देशाधिपति ने* (गोकुल० ८-१०)।

विशेषण जो साधारणतया कर्ता के पहले आता है जैसे *कारो आदमी*, बाद को आ सकता है, जैसे *ब्राह्मन हत्यारौ हू मानियै* (लल्लू० १०-११)।

कर्म, जो प्रायः कर्ता और क्रिया के बीच में आता है, वाक्य के अंत मे आ सकता है, जैसे *हम लिंगे एक किताब* (आ०); *विद्या देति है नम्रता* (लल्लू० २-२३)।

साधारणतया क्रिया वाक्य के अन्त मे आती है किन्तु उपर्युक्त परिस्थितियो में कर्ता या कर्म के पहले आ सकती है।

भिन्न पुरुषो के सर्वनामो का क्रम साधारणतया निम्नलिखित रहता है : उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष : *हम तुम और बे चलंगे; हम तुम संग खेलंगे*।

अभिव्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार क्रियाविशेषण वाक्य मे कही भी रक्खा जा सकता है। ज़ोर देने के लिए यह प्रायः वाक्य के प्रारंभ मे रख दिया जाता है, जैसे *चार बजे के करीब बरात उतरी* (आ०); *तौ बे चौबे बोले गाड़ी बारे सै* (म०), *सो कितनेक दिन मैं गऊघाट आयै* (गोकुल० १-२), *सूरदास जी ने विचार्यो मन में* (गोकुल० ६-८)।

२५५. संज्ञा, सर्वनाम, संज्ञा के समान प्रयुक्त विशेषण, क्रिया विशेषण अथवा वाक्य या वाक्यांश कर्ता या कर्म के समान प्रयुक्त हो सकता है, जैसे *राजा...बोल्यौ* (लल्लू० ७-९); ***जो आवे सोई कहै*** (गोकुल० १५, १०), ***सब श्रीनाथ जी को है*** (गोकुल० २२-१), ***ऐसे संदेह में जैवौ जोग नाहीं*** (लल्लू० ९-१८); ***काहू को आये प्रन्द्रह दिन भये हुते*** (गोकुल० १९-५)।

अन्वय

२५६ यदि कर्ता के रूप में सर्वनाम विभिन्न पुरुषो में आता है तो अन्वय प्राय: उत्तम, मध्यम, तथा अन्य पुरुष के क्रम से होता है तथा क्रिया सर्वनाम से मेल खाती हुई उसी क्रम में रहती है, जैसे ***हम और वो जांगे, तुम और वे चलौगे*** ।

ऐसी दशा में जब कि क्रिया के कर्त्ता अनेक लिगों के हो, तब क्रिया निकटवर्ती शब्द के लिंग के अनुसार होती है, जैसे ***बा औरत और बौ आदमी गओ हो***, किन्तु ***बौ आदमी और बा औरत गई ही*** ।

२५७. ब्रजभाषा में केवल साक्षात् उक्ति के उदाहरण मिलते है, जैसे *तीस मारखाँ राजा तै बोल्यौ, मैनै हाती मार्यौ है* (बु०); *तब श्री आचार्य जी महाप्रभू नें कह्यो जो जा स्नान करि आउ हम तोकों समझायेंगे* (गोकुल० ४-६)।

१२. उपसंहार

प्राचीन तथा आधुनिक ब्रजभाषा

२५८. प्रस्तुत प्रबन्ध के व्यापक तथा विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्टतया पता चलता है कि गत चार शताब्दियों मे ब्रजभाषा मे तत्त्वतः कोई अन्तर नही आया। आधुनिक ब्रज मे कुछ अंग्रेज़ी शब्दो का प्रचलित हो जाना यूरोपीय सभ्यता के संपर्क का द्योतक है (§ ८५)। शब्द रचना तथा वाक्य रचना मे साधारणतया कोई अंतर नही हुआ है।

आधुनिक ब्रज मे परिवर्तन वाली कुछ साधारण प्रवृत्तियाँ स्थान स्थान पर इंगित कर दी गई है, जैसे संयोगात्मक कर्मवाच्य रूपो का लुप्त हो जाना (§ २०९), संयुक्त क्रियाओ का अधिक प्रयोग (§ २३८) एकवचन के स्थान पर बहुवचन का अधिक प्रयोग (§ १४५)।

परिवर्त्तन के लक्षण उच्चारण मे विशेष रूप से स्पष्ट होते है, जैसे मध्य तथा अन्त्य **अ** का लोप (§ ८९), मध्य तथा अन्त्य स्थान में हकार का लोप (§ ११४), तथा ध्वनि अनुरूपता (§ १२३-१२८) इत्यादि। साहित्यिक रूप मे स्वीकृत हो जाने पर इस प्रकार की परिवर्त्तन संबंधी प्रवृत्तियाँ भाषा मे ध्वनि सम्बन्धी तात्त्विक परिवर्त्तन उपस्थित कर देगी।

प्राचीन लेखको ने अधिकाशतः शुद्ध ब्रजभाषा मे रचनाएँ की है, इस बात का पता आधुनिक ब्रज तथा उन रचनाओ के तुलनात्मक अध्ययन से लगता है। किन्तु दो बाते स्मरणीय है। पहली बात तो यह कि सूरदास अथवा बिहारी जैसे प्राचीन उच्चकोटि के लेखकों की रचनाओ मे भी पडोस की अन्य बोलियों, विशेष रूप से अवधी से उधार लिए गए शब्द मिलते है (§ ४३, ५५)।

दूसरी बात यह कि मथुरा की ब्रज, अर्थात् प्राचीन लेखकों की पश्चिमी ब्रज, बाद मे ब्रजभाषा के पूर्वी रूप से प्रभावित हो गई थी (§ ५४)। इसका कारण पूर्वी प्रदेश के उन प्रभावशाली लेखकों की मातृभाषा थी जिन्होने ब्रज मे अपनी रचनाएँ लिखी (§ ५७, § ५८)।

इस प्रकार अवधी तथा पूर्वी ब्रज रूप धीरे धीरे विशुद्ध साहित्यिक ब्रज मे ग्रहण किए जाने लगे और बाद मे तो इन रूपों का प्रयोग ठेठ ब्रजभाषा के पोषकों द्वारा भी होने लगा। इनमे से कुछ की चर्चा प्राचीन ब्रज लेखको द्वारा रचित साहित्य के मूल्यांकन पर विचार करते समय की जा चुकी है (§ ४३-§ ६४)।

ब्रजभाषा के मुख्य लक्षण

२५९. ध्वनि अथवा शब्द सम्बन्धी ऐसे कोई लक्षण नही है जो केवल ब्रजभाषा में ही पाये जाते हों और पड़ोस की किसी अन्य भाषा मे न पाये जाते हों। वास्तव मे

ब्रजभाषा में कई ऐसी विशेषताओं का सम्मिश्रण है जो इसे एक निजी छाप प्रदान कर देते है। ये विशेषताएँ न केवल ब्रज मे वरन् पृथक् पृथक् पड़ोस की अन्य भाषाओ मे भी पाई जाती है।

इन विशेषताओं की तुलना की दृष्टि से राजस्थानी ही ब्रज की निकटतम भाषा है। ब्रज तथा राजस्थानी मे सामान्य रूप से पाए जाने वाले समान लक्षण इस प्रकार है :—

सज्ञा तथा विशेषण (§§ १४६, १५५), सर्वनामवाची रूप ***मेरो*** इत्यादि (§§ १६१, १६७), ***परसर्गवाची*** विशेषण को इत्यादि (§ २०४), तथा ओकारान्त ***कृदन्ती*** विशेषण चलो इत्यादि (§ २१९), परसर्ग ***ने*** (§ २०२ माल०, मेवा०, निम०); परसर्ग ***ते*** (***से*** के अर्थ मे) (§ २०३); सहायक क्रिया ***होनो*** का भूतकालिक कृदन्त ***हो, ही*** (§ २३० मार०, मेवा०); ***ह*** भविष्य (§ २१४ मार०) और ***ग*** भविष्य (§ २१३ मेवा० माल०)।

ओकारान्त रूप समस्त पहाड़ी बोलियों मे पाए जाते हैं। संज्ञाओं का विकृत रूप बहुवचन ***–अन*** (§ १५०) ब्रज तथा कुमायुँनी दोनों मे ही पाया जाता है तथा ***–ते*** परसर्ग ब्रज और गढ़वाली मे है।

गुर्जरी तथा ब्रज मे भी सामान्य लक्षण अनेक है, उदाहरण के लिए ***ओकारान्त*** रूप ***ने*** तथा ***ते*** परसर्ग और ***ग*** भविष्य। ***ते*** परसर्ग तो ***ने*** परसर्ग और ***ग*** भविष्य के साथ खड़ीबोली मे भी पाया जाता है। ***ने*** परसर्ग, ***ग*** भविष्य पजाबी मे भी पाए जाते है।

गुजराती तथा ब्रज मे ओकारान्त रूप और ***हतो, हती*** (§ २३०) सहायक भूतकालिक कृदन्त समान रूप से प्रयुक्त होते है।

ब्रज तथा हिदी की पूर्वी बोलियो मे समान रूप से पाए जाने वाले लक्षण सज्ञा का विकृत रूप बहुवचन ***–अन***, वर्तमानकालिक कृदन्त ***–अत*** और ***ह*** भविष्य है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि निश्चयवाचक सर्वनाम का असाधारण रूप ***ग*** ब्रज की भाषा की विशेषता न हो कर प्रादेशिक विशेषता मात्र है (§§ १६८, १७४)। इसके अतिरिक्त पुरुषवाचक सर्वनाम के कुछ वैकल्पिक रूप बिल्कुल खडीबोली के रूपों की भाँति तो नही किंतु उन्ही की समानान्तर शैली मे बुन्देली मे भी पाए जाते है (§§ १६०, १६६, १७३, १७९, १८३, १८८)।

ब्रजभाषा और खड़ीबोली हिन्दी

ब्रजभाषा पर खड़ीबोली हिंदी का प्रभाव अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है, इस बात की पुष्टि प्राचीन तथा आधुनिक ब्रज की तुलना से होती है। ब्रज के प्राचीन रूप मे आधुनिक ब्रज की अपेक्षा खडीबोली हिंदी के शब्द कम पाए जाते हैं। आधुनिक ब्रज पर विशेषतया पूर्वी ब्रज पर तो खड़ीबोली हिंदी का प्रभाव और भी अधिक है (§§ १८१, १८८, १९१, १९३, २०३)। इस बात का स्पष्ट कारण १९ वी शती से खडीबोली हिंदी का बढ़ता हुआ साहित्यिक महत्त्व ही है। अवधी की अपेक्षा खडीबोली हिंदी ब्रज की सबल प्रतियोगी है। खडीबोली हिंदी ने लगभग पूर्ण रूप से साहित्यिक क्षेत्र में ब्रज का स्थान ले लिया है यद्यपि बीसवी शती मे भी उत्तम रचनाओं के लिए अनेक पुरस्कार

ब्रज की रचनाओं पर मिले है। गद्य के क्षेत्र मे खडीबोली हिंदी का एक छत्र आधिपत्य है। स्कूलों के द्वारा खडी बोली हिंदी का प्रवेश गाँवो मे हो गया है, यद्यपि अभी भी खडीबोली केवल स्कूल की पाठ्य-पुस्तको तथा कक्षाओ तक ही सीमित है। स्कूल मे भी विद्यार्थी की मातृभाषा का प्रभाव बराबर साथ साथ बना रहता है।

खडीबोली हिंदी का प्रभाव हिंदी की समस्त बोलियो पर पडेगा यह निश्चित है, किन्तु खडीबोली हिंदी इन बोलियो का स्थान ले लेगी यह संभव नही है। हिंदी भाषी प्रदेश इतना अधिक विस्तृत है तथा ऐक्य स्थापित करने वाले प्रभाव इतने निर्बल है कि ब्रज-भाषा अथवा हिंदी की अन्य बोलियो का पूर्णतया नष्ट हो जाना असभव प्रतीत होता है। सभावना यही है कि ये बोलियाँ परिवर्तित रूपो मे अपना अस्तित्व बनाए रक्खेगी।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में ब्रजभाषा का स्थान

२६१ हिंदी की बोलियो मे बुन्देली ही ब्रज के सब से अधिक निकट है। वास्तव मे बुन्देली को ब्रज का दक्षिणी रूप कहा जा सकता है। दोनो मे अतर शब्द-रचना की अपेक्षा ध्वनियो मे अधिक है। ब्रज मे पाए जाने वाले व्याकरण सम्बन्धी लगभग समस्त मुख्य रूप स्थान स्थान पर ध्वनि सम्बन्धी थोडे रूपान्तरो सहित बुन्देली मे भी पाए जाते है। ब्रज के सयुक्त स्वरो **ऐ औ** का मूल स्वरो **ए ओ** की भाँति उच्चारण (***मैं*** के लिए ***में***, ***कैहौं*** के लिए ***केहों***, ***और*** के लिए ***ओर***), ड़ के स्थान पर ***र*** का प्रयोग (***पड़ो*** के लिए ***परो***); मध्य ***ह*** का नियमित लोप (***कही*** के लिए ***कई***); अनुनासिक स्वरो का अधिक प्रयोग (***तू*** के लिए ***तँ***) इत्यादि ध्वनि सम्बन्धी प्रमुख लक्षण है जो बुन्देली की निजी विशेषताएँ कही जा सकती है। वास्तव मे बुन्देली को हिंदी की एक अलग स्वतत्र बोली न मान कर ब्रज की दक्षिणी उपबोली कहा जा सकता है।

खडीबोली और अवधी-बघेली की परिस्थिति भिन्न है। ये बोलियाँ ब्रज की बहने है। खडीबोली मे हम पजाबी से प्रभावित हिंदी की एक बोली पाते है, तथा अवधी-बघेली मे पूर्वी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ के कुछ प्रभावो से युक्त हिंदी का एक रूप पाते है। खडीबोली ब्रजभाषा और अवधी हिंदी भाषा परिवार की मुख्य अग है; खडीबोली और अवधी द्वारा घिरे रहने के कारण ब्रजभाषा उत्तरी पश्चिमी तथा पूर्वी प्रभावो से सुरक्षित रही है किन्तु दक्षिण-पश्चिमी और उत्तर की बोलियो से इसका निकट सम्बन्ध रहा है।

जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है उत्तर की पहाडी बोलियो, राजस्थान की बोलियो तथा गुजराती मे ब्रज मे पाए जाने वाले अनेक लक्षण मिलते है। वास्तव मे ऐसा प्रतीत होता है कि सुदूर अतीत मे ब्रज क्षेत्र की बोली के उत्तर तथा दक्षिण-पश्चिम की ओर फैलने के फलस्वरूप पहाडी और राजस्थानी गुजराती भाषाओ की उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार ब्रजभाषा मध्यदेश के हृदय प्रदेश की भाषा जान पडती है, जो उत्तर-पश्चिम और पूर्व की ओर से दबायी जाने के कारण उत्तर तथा दक्षिण-पश्चिम की ओर फैल गई है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के बीच ब्रज की यह स्थिति भूमिका में उपस्थित किए गए आर्यावर्त्त के सास्कृतिक इतिहास से भी पुष्ट होती है।

परिशिष्ट

आधुनिक ब्रजभाषा तथा सीमान्त प्रदेशों की बोली के कुछ उदाहरण

अलवर

स्याड़ और ऊँट दोउ भाई ल्हावे। एक दिन स्याड नै ऊँट सै कई, भाई आपाँ कचरा खाबा चला। दोनू वा सै चल दिया। रस्ता माँ आई नन्दी। स्याड कए ऊँट सै कि भाई तेरी पीठ मै मो कू चढ़ा ले। ऊँट नें पीठ पै चढ़ा लियो। वो दोनू नदी की पार उतर गए। जो स्याड हो वा तौ एक कचरा मै ढाप गयो, और ऊँट हो वौ ढाप्यो नई हो।

अब स्याड नै ऊँट सै कई, भाई ड़ा (रे) मोकू हुकीकी आवे। जब ऊँट नै कई, भाई थोड़ी सी देर और डट जा। वा नै कई, भाई मै तो पुकारुगो। स्याड हो सो पुकार कै भग गयो और ऊँट हो वौ बा ही चरबो कर्यो। फेर आयो खेतवाडौ। लट्ठन के मारे ऊँट को हाड़ फोड गेर्यो।

जब वा सै चल दियो ऊँट। दोन्नौ नद्दी किनारा जा कर मिल्या। जब स्याड नै ऊँट सै कई, भाई ला तेडी पीठ पै मोकू चढा ल्या। ऊँट ने उसै चढा लियो। जब नदी का बीच मा पौच्या जब ऊँट नै कई, भाई ला मोकू लुटलुटी आवे। जब स्याड़ नै कई भाई ला थोडी सी दूर और चल।

ऊँट नै नई मानी। वु लुटलुटी मार गयो। स्याड सो बह् गयो। वा कै साथ वा नै बदी करी तो वा कौ सजा मिल गई।

कन्हैया माली

अलीगढ़

एक पोत ऐसो भयौ कै गङ्ग तीरा ब्यार औस् सूज्ज दोनौ लर रए, कै दौनन् मै कौन जोद्दार ऐ। इतेई मे एक रस्तागीर ऊन कै लत्ता पैर कै आयौ। ब्यान् नै औस् सूज्ज नै जे तै कल् लई कै जु कोई हम मै सू जा कै कपरा उतरबाय लैगो बोई हममै सू जीति जायगौ।

इतेई मै गङ्गतीरा ब्यान् नै अपनो खूब जोल् लगायौ और बरी जोस् सै चली। गुओ जित्ती चल्तई उत्तेई ग्व अपने लत्तन् कू जोस् सै पकर्त्तौ। फिर थोरी देर मै ब्यार हारि गई और बन्द है गई।

फिर सूज्ज नै ऊँ खूब जोल् लगायौ, और फिर सरी गरमी परन लगी। रस्तागीन् नै फिर अपने कपरा उतार कै फेंक दये और सूज्ज जीत गयौ।

कौडियागज, तहसील सिकदर राउ
अलीगढ से दक्षिण-पूर्व

गौरी शकर

आगरा

एक मियाँ साब तिरिया चरित की किताबें बेचिबे गए। एक घोडा हो बा पै किताब लदी। आप सग हे। थोडी सी दूर पै एक गाम मिलो। माँ एक ठकुरानी बैठी ही। बा नें कई का बेचत हौ मिया साआब। बिन्नें कई कि हम किताब बेचत हें तिरिया चरित्त की।

किताबन में तिरिया चरित्र कैसो होत है, ठकुरानी बोली मियाँ सू। बिन्नें कई कि जो तिरियाँ ऐसो बैसो कत्ती हें। बिन्नें कई आओ हम लिगे एक किताब। बाय अपने घर लिबाय गई। घोडा द्वार ठाडो रह्यो। बिन्नें ठकुरानी नें मियाँ कौ दूध कद् दओ। मियाँ तें कई मियाँ तें दूद पी ले। बिन्नें कई हमें देर होत है, जो द्वै एक किताब लेनी होय लै ले। बिन्नें कई दूद पी लेओ।

मियाँ ने दूध पियो। विन कै ठाकुर चौपर खेलिबे कत्त हे। बिन्नें कई, आओ मियाँ एक चौपर की बाजी खेल ले। बिन्नें कई, हमें तो देर होत हे ठकुरानी। बिन्नें कई हाल खेल लिगे। चौपर बिठाय कैं बैठ गए। तौ जू ठाकुर आय गए। मियाँ नै कई, ठकुरानी हमें कऊँ दुबकाओ, हमे ठाकुर मारिगे। बिन्नें एक सन्दूक मे बद कद् दए।

बिन कौ जूतो और टोपी बई धरी रई। ठाकुर नै पूछी जौ जूतो और टोपी कौन की हे। ठकुरानी नें कई, मेरे यार की है। बानें कई, यार तेरो कव को हे। वानें कई, आज देखो है, अबई को हे। वानें कई, जा मतलब बता जे किस्सा तौ हे गए।

ठकुरानी नें कई, मियाँ तिरिया चरित्र की किताब बेचिबे आए हे। मैंने इन पै किताब माँगी। बिन नें घोडा ठाडो कल् लओ किताब बेचिबे के लए। सो मियाँ है सदूक में। बिन नें तारी फेक दई। ठाकुर नें सदूक में तें निकाल लए। ठकुरानी नें कई जौ किस्सा हमारो ऊ छाप दियौ मिआ। मियाँ नें घोडा पै से किताबें पल्ट कै सब लिअराय दई।

गाँव मदाबले, आगरा से १० कोस पूर्व — चरनसिह ठाकुर

इटावा

एक चिरैया हती, एक चिरौटा। सो उन्नें घोसुआ रक्खो। उन्नें अडा रक्खे। बौ चिरौटा तौ जाओ करै चुनबे के काजै। चिरैया हिआँ राओ करै अडन के ढिगाँ अपने। सो एक हाँती आओ करै सो बाके अडन के घिसला लगाय कै चलो जाओ करै।

सो एक दाँय चिरैआ-ए जा कई कि बडे बडेन की खटक जैऐ। हाती नें कई खटक जैऐ तौ हुइए। सो बा चिरैया नें कै दई अपने चिरौटा सें कि एक हाँती हे सो रोज घिसला दै कै चलो जात ऐ। सो उन्ने कई कि हम भोर रएँ।

सो अब बु आओ हाँती। अब बौ ठोना मार मार कै भाजै। उन्नें कई हमारे ठोनन सैं होतई का हे। सो चिरौटा धद्-दौरो सो कान में घुल गओ हाँती के। अब हाँती जा काय कि निकरि आओ, अब नइँ आँयँ तेरे हियाँ।

सो बा चिरैया नें कई कि निंकरि आ अब बौ चिरौटा जैसे तैसे निकरि आओ। अब बौ हाँती चलो गओ, फेर नईं आओ।

गाँव रामनगर, इटावा — राजाराम काछी

एटा

१

एक सेकचिल्ली हे। विन्नै चना बये। बिन्नै एक आदमी सैं पूछी कि चना कैसे बये जात हैं। बिन्ने कही, भुँजे बये जात हैं। सो सेकचिल्ली चना भुँजबाय लाये। सो एक चना कच्चो रहि गओ। सो बये उपजि आओ।

एक दिन सेकचिल्ली की अम्मा आई। बिन्नै कइ कि लला घरको खेत कौन सो है। बिन्ने कह दई जे सबरे घरई की खेत है। सो विन की मैतारी गई सो लोधरन को खेत हो। सो बिन्नै गारी दई। सो बिन्नै कइ कि अच्छा पचाइत कल्-लेओ। सेकचिल्ली नै पचाइत कर लई।

सेकचिल्ली पैंले से पैंले गए सो अपनी मैतारी कौ खेत मै गाडि आए नाँद के नीचे। सो बिन्नै कई कि चलौ खेत बुलबाय देत्र किनको है। फिर बिन लोधिन नै कई कि किन कौ खेत है? खेत नाञ बोलो। फिर सेकचिल्ली बोले कि खेत पनबेसुर (परमेश्वर) तू किन को है?, सेकचिल्ली पूत को। सो मेकचिल्ली नै खेत काटि कै पैन्न मै धरो।

गाँव गगनपुर,
एटा के दक्षिण मे

अहीर लडका

२

हमारी छोरी बडे लडका के ताँई करी। अब जब तुमारो लडका मरि गओ तौ कै तौ हमारी छोरी कौ हमारे सग पठै देओ और नाञ पठावत हौ तौ अपने छोटे छोरा की भामरे डाल लेओ।

मोय तौ साअब समबाई है नाञ। फसल मेरी गई ऐ विगरि। जो कछ पैदा भओ हो सो नाज है गओ मट्टो। सो सब बेचि बाँच कै जिमीदार की उघाई दै दई। साऊकार कोईं देत है नाञ। अब हम काँ सैं लाबैं जो ब्या कल लेञ। हम तौ सोबते ई सैं करगे।

गाँव इस्माइलपुर,
तहसील कासगज के पश्चिम

अहीर

३

भजन (चेतावनी)

बिपत परे दिन लगत बुरो री।
एक दिन बिपत परी नल राजा पै, पिगुल जाय रहे री,
तेलियरा के पाट री हाँकी, तब राजा के सुत एक भओ री।
एक दिन बिपत परी हरिचन्द राजा पै, काली का नीर भरे री,
दुर्मिल (दुर्बल) गात, थकित भए भुजवल, अब रानी हम पै माँट उठै ना री।
बिपत परी मोरधज राजा पै, आरे सीज गए री,
एक लँग रानी आय खरी है, एक लँग राजा नै सुत पै आरो धरो री।

एक दिन बिपत परी पाँचौ पडन पै, पाँसे हार गए री,
भरी सभा दूसासन बैठो, हँसि कै चीर द्रौपदी के गहो री॥

गगनपुर अहीर बूढा

करौली

एक सेठ हौ। बाके सात लरका ए। बा मै से छैइन के ब्याह है गए। एक को नई भयो।

एक दूसरे सेठ के एक लडकी ही। बा सेट नै अपने पडित कूँ बुलायौ। उसकूँ एक हार दै दियो, और बासै कई कि जो कोई या हार कौ मोल लै लेय बाई के लड़िका कूँ या हार कू टीके मै दे अइयौ। पडित गयो और बाई सेट के पौचो, और सेट कूँ हार बतायौ। और सेट नै बा की कीमत पूछी। सेट नै अपने आदमी सै कई कि इस हार की कीमत दै कै हार कौ लै लेओ।

तब पडित ने बा सेट सै पूछी कि आपके कै छोरा है और अबई तक उनकी सादी हुई (भई) है कि नई। सेट नै कई कि छोट सै छोटे लडका कौ ब्याह नई हुओ ऐ। तब पडित नै बा हार कूँ छोटे लडका के नार (गले) मे हार पैना दियो, और सेट सै कई कि या हार कूँ मै बेचबे कूँ नई लायो। हमारे सेट जी के एक लडकी है बाकूँ लडका तलास करिबे कूँ लायो हूँ। सेट नै वा पडित कूँ भौत सो धन दै कै विदा कर दियो। और ब्या की तैयार हैबे लगी। खूब चोलचाल सै ब्या है गयो।

लडकी अपने सुसराल कू चली गई, पर बानै अपने सासुरे मे जाके कुछ नि खायो। बो ये बात ही कि बा लडकी को ये पन हो कि जब तक गजमोती मदिर मै नई चडाउ तब तक रोटी नई खाउ। बा सेट के घरकन नें बा सै रोटी खाइबे की भौत कई पर बानै नइ खॉई और न अपनी बजे बताई।

वैश्य जैनी

गुड़गाँव

एक अधो और एक बहरो दो आदमी तमासो देखने कू गए। वहाँ नाचनो गानो होए रहो हो। गानो जब बद हो गयो तौ सब अपने अपने घर कू चले आए। अधे और बहरे की जिदबाद होन लगी। अधो तौ ये कहे के गामै खूब है और बहरो ये कहे कि नाचै खूब है। दोनून को आपस मे झगरो हो रह्यौ हो। इतने मैं दो रस्तागीर और आय गए। उन्नै पूछी, भैया तुम क्यौ आपस मै लर रहे हौ। बहरे नै कही कि पिछले गाम मै नाच खूब ह्वै रह्यौ हो। अधे नै कही नही गानो ह्वै रह्यो है। फिर उन रस्तागीरन नें कही उनतै के तुम दोनौ सच्चे हौ। ये तो अधौ है तौ याय तौ गानौ सुनै है। ये है बहिरो याय नाचनो दीखै है। मत ना लरौ तुम। अपने अपने घर कौ जाओ।

बल्लभगढ, ज़िला गुडगॉव
(दिल्ली से २० मील दक्षिण)

अर्जुन ब्राह्मिन

ग्वालियर : पश्चिम

१

एक राजा के सात लड़का हूं। उन में सें एक कानो हतो। एक रोज छयौ मोड़न नें कही कि हम सिकार खेलिबे जागे। पिता जी बोले, अच्छी बात हैं चले जइऔ। फिर बे सब तैयार भए। बिन में तैं एक कानो बोलो कि भैया मोंय बि लै चलौ। उननें कई तू तौ कानो है तेरे खराब दर्सन होगे ताते सिकार नईं मिलैगी। तई कानो बोलो, मती लै चलौ भइआ। सोई बे छऊ चल दए।

चल्त चल्त बनिआ के पौचे। बनिआ बोलो कि जा ज्वारैं चार फक्कन में खाय जायगो, तई सिकार कल लाबौ। तई बिन सबन नें खाई। काऊ पैं नईं खबाई आई। फिर बे चल दए। डॉग में पौचे। बिन कौ एक बरहलो सुअर मिलो। बे बाय मारिबे लगे। तौ बिन छेउन नें खाय गओ।

फिर तीन चार रोज पीछे कानो आयो। बनिआ के घर गयो। फिर बनिआ बोलो, जाय जौड़री चार फक्कन में खाय जायगो तई सिकार कल लावैगो। बानैं चार फक्कन में खाय लई। चल्त चल्त बाई सुअर के भेर्यां आयो। फिर बानैं घोडे बँधे देखे। बानैं जानी मेरे भैया जानैं खाय लए हूं। बानैं सुअर माड् डारो। बा में छेऊ भैइया निकरि आये।

फिर बानैं सोची के घर न्यौ कहैं जो कि हमन नें बचाये हैं, ताते जाय झाईं (यहाँ ही) माच् चलौ। सोई बिन नें कई, भैआ प्यास लगि रही है पानी लाय दे। फिर बिन्नें कई सग चलौ। सो एक कुआँ पै पौचे। फिर सबन नैं पानी पी लओ। फिर बस बौ कुआँ मैं ढकेल दओ। फिर बे तौ सब घर कौ चले आए। फिर पीछे एक गूजर कौ पानी भरिबे आयौ। वानें बाकी लेजु (रस्सी) पकड लई। वानें बौ निकाल-लओ। फिर बानें कई नौकरी करुगो। फिर बौ बोलो तू भैया राजा को पूत, हमारे भएँ काय कौ करैगो। वि नई में तौ कल्-लुगो। तब बौ रोटी कपडन पै रैं गओ।

बानैं एक बोकरा पाल लओ। बौ एक रोटी खाय और आधी रोटी बोकरा कैं खबाबै। दो खाय तौ एक बाकौ खबाबै। ऐसेइँ ऐसे बौ बोकरा भौत बडो हैं गयो। फि बाको मालिक बोलो। तेइ (तेरी) खुसी होय तेइ (वह ही) माँग ले। कई मैं तौ कछू नाः माँगत। बा नें कई माँग ले। बा नैं कई और तौ कछू नाअ माँगत जा बोकराय माँगत औ उन नैं कई, लै जा। फिर बौ लै कैं बाय चलो।

चल्त चल्त एक गोडेवारो (घोडेवाला) मिलौ। फिर बानैं कई हट जा रे हट ज गोडेबारे, दुम्मी मेडो माड्-डारैगो। बा नैं कई कि मेरो घोड़ो लात दै देयगो तौ नौ मज् जायगो। दौर रे दौर दुम्मी मेढे जाय माड्-डार। बानैं बौ घोडो माड्-डारो।

ऐसेइ ऐसे चल्त चल्त एक नाहर बारो मिलो। कई, हट जा रे नाहर बारे। बानैं कई न हटत, मेरो नाहर खा जायगो। बानैं कई दौर रे दौर दुम्मी मेढे जाय माड् डार। फिर ब मैलन (महलो) मैं पौचो। बॉ आनद सैं रैंबे लगो।

सबलगढ (जादौ बाटी)
ग्वालियर के दक्षिण-पश्चिम में

लक्खू राम ब्राह्मि

२

एक लडैआ (गीदड) और लडन्न हे। तौ बिनैं लगी प्यास। तौ बिनैं कई पानी मिन्तो (मिलता) नइँ तो। तौ बिन्नैं सोची अब कैसी करें, पानी कइँ मिन्तु नइँ ऐ। ऐसो विचार करि कै लड़न्न नैं बूझी लड़ैया-ऐ के तुम मैं कितेक अक्कल है। तौ लडैआ बोलो मैं तौ सौ अक्कलैं जान्त हौ। लडैआ बोलो लडन्न सैं तुम मैं किती अकल है तुम बताओ। लडन्न हे (ये) बोली मैं तौ तीन अक्कलैं जान्त हौ। तौ भ्याँ (यहाँ) पाँनी तौ कइँ नइआँ, नाहर की बाबरी पै पानी मिलैगो। तौ बे चन्ते चन्ते नाहर की बाबरी पै पौचे। जाकैं ठाडे भए।

नाहर बोलो, तुम को हौ। तौ बे बोले, हम हैं दाउ जी। नाहर बोलो तुम कैसे आए। तौ लड़न्न बोले लडैया सैं तुम मैं कितनी अकल रही है। लडैया मो मैं तौ एक ऊ नई रई नाहर के डर सैं। लड़न्न बोली मैं जान्ती तीन अक्कलैं। तौ नाहर सैं बोली, दाऊ जी मेरे भए बच्चा चार। तौ लडैया कैतु ऐ कि तू तौ लै ले जे दोनौ मोडी, और मोयँ मोडा दै गाल। दाऊ जी मोअ प्यास लगी तौ मोअ पानी पी लेन दे, फेर बात करुगी तो सैं। नाहर बोलो, नीचे बावरी है पी आओ जाय कैं। नाहर अपने मन मैं सोचो कि दो तौ जे भए, चार बच्चा भए, खा कै पेट भर जायगो।

बिन दोउन नैं खूब पानी पिओ डट कै। फिर नाहर के पास आए। तौ बोले, चलौ दाउजी हमारो हीसा कर दो। आँगे लडन्न लडैया चले, पीछे सैं नाहर चले। अपने मकान पै पौंचे। लडैया बोलो, भीतर जाय बच्चन कौ निकाल्-ला। लडन्न तौ भीतर घुस गई। लड़न्न बोली, तुम भीतर धसि आओ। मो पै नई निकरैं। लडैया भी भीतर धसि गए। लडन्न लडैया नैं सलाह करी कि हमारी आँद (माँद) मैं तौ आय नई सकत तातैं नाई कर देओ। तौ लडन्न बोली, दाऊजी तुम तौ जाओ अपने घर कौ, हमनैं अपने घर की पचायत घरई मैं कल्-लई।

तौ नाहर बोलो, मैं जान्तो कि मैं बडो हुसियार हौ पै जे मो से हुसियार निकरे।

गाँव सुन्दरपुर, ग्वालियर से ५ कोस पश्चिम — हरप्रसाद, ठाकुर जादौ

जयपुर : पूर्व

एक राजा और साऊकार के दो भायले हे। एक दिना बे सिकार खेलने कौ गए राजा के कँवर। तौ बौ साऊकार को लडका भी उनके सगैं हो। राजा के कँवर कौ प्यास लगी। वानैं कई प्यासो मर्यो। अच्छा भाई तू ह्याँ बैठ जा, मैं पानी कूँ जाऊँ हूँ। तौ साऊकार को कँवर पानी कौ गयौ। म्हाँ एक तलैया भरी ही। तौ वा मैं एक साँप एक मेडकियै निगलै। तौ वो मेडकी कए ऐ कि भाई तू मोय जो खायगो तौ तोय चाँद दै रानी की आन है।

भौत देर तक बाँ देख्यो कर्यौ। फेर माँ सैं पानी लै के बाँ राजा के कँवर के पास आयो। भौत देर लगाई तैं नें, मैं तौ प्यासो मर गयो। कै या मैं एक तमासो देखिबे लग पर्यो हो। कै एक मेडकियै साँप निगलै। और बो मेडकी कए है कि तू खायगो तौ

चाँद दै रानी की आन है। तौ बौ स्याँप बा कौ छोड देय फिर। तौ कई यार बा तमासे तौ हम कोऊ बता। कि चलौ। तौ दूनौ सग है केनी चल दिए। तौ वु तौ वुई किस्सा है रह्यो। राजा को कँवर देख केनी वापिस घर कौ चले आए। तौ ना रोटी खाय ना पानी पियै।

राजा नै कई कि बेटा तू क्यौ रोटी नईं खाय है। वा सै कोई जबाब नइ दियो। इतनेई मै वा कौ यार आय गयो। राजा बोल्यो, भाई याकौ रोटी खवाओ। वा नै कई; यार रोटी क्यो नई खाय है। तौ कई यार मै रोटी जब खाऊँ जब चाँद दै रानीऐ ब्याऊँ। ना तौ वाके देस के पते। मोकुँ एक साल की मोलत दे, मै ल्याउगो तोकूँ। वो वाँ सै घोडा लै और कुछ रुपिया लै चल दिए।

अगाडी बे जब जाय पोंचे जगल मे बाँ एक बाबा जी मर गयो। तौ तीन तौ चेला हे बाके और चार चीज ही—एक तौ सोटा, एक खडाऊँ पामकी, एक तूमा और एक कठा। तौ वु तौ कए याय मै लुगो और वु कए याय मै लुगो। वानै कई यारौ एक बात करौ। कई यौ गैलना जो जाय रओ है, या सै कहो तुम कि इन चीजन मै उठाय उठाय चैयै जौन सेन कौ दै दे। वा नै कई, भाई गुन बताओ जब दुगो, का करायमात है इन मै। तौ कए भाई जे पाँमडी है तौ इनमे तौ ये गुन है कि यासै यो कओ कि याँ पौचा देओ वाँ ई पौचा देयँ है। और सोटा मै ये गुन है कि कैसो हू कोऊ चलो आबै तौ नीचे कौ कान कल लेय। और तूमा मै या गुन है कि यामै पानी भर केनी मरे भए आदमी कनी पिलाय देओ तौ बौ जिदो ह्वै जाय। और चौखूटो लीप केनी और धूप दै केनी कि इतने रुपए हे जाँय तौ उतनेई है जाय।

तौ म्हा एक खूटी सै बाबा जी को तीर कमान धरचो हो। तौ मै तीरै छोडौ हूँ जा याय ले आबै पैले वाकुँ चारो चीजें दै दुगो। तौ उननै तीर छोड्यौ। तौ तीनौ चेला तौ तीर कौ भागे और वानै वे चारो चीजें लै लीनी। तौ वौ का कए कि चलौ गुरू की पामडी जो सच्ची हो तौ चाँद दै रानी के बाग मै उतारौ। तौ पाँवरी उननै बाँ सै उडायौ तौ रात के बारै बजे चाँद दै रानी के बाग मै पौचा दिए।

हिडौन,
जयपुर पूर्व

भोला ब्राह्मिन

पीलीभीत

पहले बखतन मै एक राजा भए। उनके चार कन्याएँ ही। एक दिन राजा जब मरन लगे तव उनन्नै अपनी बेटिन कौ बुलाओ। बारी बारी सै सब सै पूछी कि तुम किसको दओ भओ खाती हौ। सब सै बडी लड़की बोली कि मै तुम्हारो दओ भओ खात हौ। मझली लडकी बोली कि महूँ आपै को दओ खात हौ। अखीर मै राजा नै सब सै छोटी सै पूंछो। तब उसनै कहो कि मै किसऊ को दओ नाञ खात हौ, मै अपने भाग को खात हौ। राजा जा बात सुनि कै भौत नाराज भओ, और मन मै कही कि देखौगो जा कैसे अपने भाग को खात है।

थोड़े दिनन बाद राजा नै बडी को ब्याह् बहुत बडे राजा के हियाँ करो और खूब दान दैजो दओ। और मझलिऔ को ऐसिए जगह् ब्याह् दओ। लेकिन अपनी सब सै छोटी लडकी कौ एक कोढी ब्याह दओ। छोटी लडकी नै अपने भाग की सराहना करी और आदमी की खूब सेबा सुस्रुखा करी। थोड़ेइ दिनन मै कोढ़ सब अच्छो हुइ गओ और खूब ज्वान पट्ठा भओ। धीरे धीरे उनके दिन बहुरे और खूब रुजगार पात मै नफा भई। दुसरी तरफ दोनौ लडकिनी बिधबा हुइ गई और लघन होन लगे।

राजा एक दिन घूमत घूमत उसई नगर मै जाय पहुँचो और बड़ा भारी मकान देख कै अचरज करन लगो। मुहल्ला मै पूछ गछ करी तब मालूम भई कि मकान मेरी सबसै छोटी लडकिनी कौ है। तब बौ डरत डरत अन्दर गओ। लडकिनी नै बाप कौ तुरत पैचान लओ और बडी मन मैं हरखित भई, और खूब खातिर तबज्जा करी। बाप नै सरमाय कै कही और पीठ पै हात फेरो कि अब मैंनै जानी तू अपनो भाग को खात है। मेरी खता कौ माफ कर दे। मैंनै नाऊ जानी ही कि तू ऐसी बलबान है।

• गॉव मुडिया हुलास,
तहसील बीसलपुर, पीलीभीत के दक्षिण मे

सूचना—मुडिया हुलास के १० मील दक्षिण-पूर्व मे खनौत नदी के उस पार से पूर्वी ब्रज बोली (हतो हत आदि) प्रारभ होती है।

फ़रुखाबाद

१

कल्ल रात हम भराभर सोय रहे हते कि हमैं कुछ हल्ला गुल्ला सुनाय परो। हमारी ऑखि खुलि गई, औ हम भौचक्के ऐसे हुइके इ छोर उइ छोर देखन लगे। तल्लौ बहुत से आदमी एकै सग चिल्लाय परे। हमै बड़ो डर लगो। जैसे तैसे उठि के हमने अपनी लठिया लई औ हल्ला गुल्ला घॉऊ चले। पाँयन मै मानौ जॅजीरै सी परि गई ती (हती), चलोई नाऊ जात तो। खैर जैसे तैसे हम हुँआँ पौचे। औरौ कुल्ल जने हुँआँ ठाडे हते। पुँछबे सो मालुम परी कि चोर थोरी देर भई भागि गए। फिर का हतो हमऊँ समझी अभै कुल्लि रात बॉकी है, चलौ सुँइएँ राई। तौ कल्ल कौ पुलिस ऐहै पकरिऐ धकरिऐ तौ कुछ न कुछ कहौउइं परिऐ।

गाँव चदौली
कन्नौज के १० मील दक्षिण

बाजपेयी

सूचना—इस गॉव के एक मील पूर्व से कानपुर की अवधी बोली का प्रभाव स्पष्ट सुनाई पड़ने लगता है।

२

एक रगौटा (चिरैया) रएे और एक रगौटिआ रएे। सो एक दिन बानै न्यौता करो। सो एक दिन बानै सात रोटी और भर बटुआ दार रॉधी। सो रगौटा खान आओ सो बानै दुइ रोटी और भरबेला दार पस्स दई। बानै खाय लई। इसई तरा छा रोटी बानै खाय

लईं। एक रोटी रै गई बओ बानै खाय लई। फिर बानै कई औल्-लाबौ। बानै कई हमें खाय लेओ। बानै गिरगौटि-औ कौ खाय लओ।

मदार संकरपुर,
जिला फरुखाबाद (९ मील दक्षिण की ओर)

नाई लड़का

बदायूँ

उज्जन नगरी मे राजा बीर बिकरमाजीत हो। राजा बीर बिकरमाजीत की लडकिनी को ब्याह हो। ब्राह्मिनन की ताँई बुलवाय कै न्योतो दओ गओ। ब्रामन समुन्दन जी के पास पहुचो। कहन लागो, हे समुन्दन जी जौ न्योतो लै लेओ। समुन्दन जी ने जा बात कही कि आप ठाडे रहाएँ, मै फिर लै लेउंगो। समुन्दन जी मे लहिर आई। हीरा लाल जवाहर आए। समुन्दन जी ने कही कि इनै लै जाओ, बिनै दै दीयौ राजा बीर बिकरमाजीत के ताँई। ब्रामन को लडका कह रहो है की जाय कैसे लै जाओ, रस्ता मै चोर उचक्का मिल गये। बिन्नै जा बात कही कि जॉघ चीरौ। बिन मै हीरा लाल जवाहर भद् दए गए। ब्रामन हो सो चल दओ।

चलो आय रहो हो कि देखत कहा है कि एक भुज्जी को भार हो। तौ भुज्जी की महतारी देख कै बा बिर्हम्मन की सूरत रोई, रोए कै फिर हसी। तो ब्रिहम्मन को बेटा कह रहो है कि हे माता कैसी तौ मेत्ताईं देख कै हँसी और कैसे रोई, जाकै म्याने दै देओ। तौ बा भुज्जिन कै रई है कि बेटा सूरत देक-कै मै रोई और जाके ताँई हँसी कि पद्देसी तौ है। तो ब्रामन को बेटा कै रओ है कि हे माता जो आप बताबगी नाञ तौ मै प्रान हियाँ ई छोड दुगो। तई बाने कही कि हे बेटा तेरे ताँई अगेला ठगन नगरिया पडैगी, तेरी जान हवा कद् दिगे, औ जो कुछ होयगो छीन लिगे। तौ बाने कइ कि हे माता मै बचौ कैसे। तौ बा भुज्जिन ने कही कि हे बेटा मेरे हियाँ कथरी परी है बा पै सिरा लिपटेय लेयु। बा पै मखरियाँ लग जाय तौ तुम निकज् जाउगे।

गाँव अब्दुल्लागज,
उभियानी तहसील के उत्तर मे, जिला बदायूँ

केदार कहार

बरेली

१

एक बास्सा हे और एक साऊकार हो। उनको उनको याराना हो। तौ बे पढे हे नौ बे एकै मदस्सा मै पढे, और सादी भई ही तऊ आगे पाछे भई ही। तौ उनके रौने गौने भए और बउए आउन जान लगी। तौ साउकार ने अपने बेटा सै कई कि जे बास्साजादे है, तुम बेटा कुछ रुजगार करौ। तौ उन्नै कई भौत अच्छा। तौ उन्नै कई कि बरेली सै पीरीभीत लादौ और पीरीभीत सै बरेली लादौ।

तौ साऊकार नै अपनी मुँदरी निकारी और बास्सा के बेटा कौ दै दई और कई कि आप मेरे मकान कौ भौत न जाञ तौ जाञ एक बेरा रोज। तौ अपनी साहूकारनी सै

बोले कि बे आवै और घाम मे ठाडे होन कौ कहे तौ घामे मे ठाड़ी रहिऔ। और एक मैना दै गए कि जा मैना कौ दुखी मद-दीजिऔ। साहूकार रुजगार कौ अपने चले गए। बास्साइ के बेटा खबर भूल गए, कबहू नाञ गए।

जिस दिना साऊकार के बेटा आउन कौ हे उद्-दिना साहूकार के हियॉं गए। तौ डचौढ़ी पै आबाज दई। तौ बाँदी नै देखो तौ कई बास्साइ को बेटा है। पलका कौ भारो बिछाओ, (इ)तर फुलेल को छिरकाउ लगाओ। पलका पै बैठार दए। अपने आप पिढिआ डार कै हबा कन्न लागी। बास्साइ के बेटा की नियत मै कछु फरक पर गओ। साऊकारनी पल्का पै डार दई। मैना नै कई —

किस टेरौ और किसै पुकारन जॉउ,
राजा होय बिग्गिरै न्यॉउ कहॉं कौ जाय।

बास्सा ने कई कि जात की चिरैआ ही तौ बानै इत्ती बात कई, रैयत सुनैगी तौ कित्ती कायगी। बा मुदरिया निकर परी।

सॉज कौ साऊकार आए। उन्नै पल्का कौ भारो बिछाओ सो बा मुदरिया देखी। देख कै कई कि साऊकारिनी काम की नाञ रही, बिगर गई। बे अपनी बैठक कौ चले गए। साऊकारिनी नै रसोई तैयार करी। बॉदी कौ पठओ, जाउ कै आउ रसोई तैयार है। साऊकार नै कई कि मै नई खाउगो। बॉदी नै फिर साऊकारिनी सै कई बे नई आगे। साऊकारिनी गई सो हात जोड कै ठाडी भई, पती रसोई तैयार है। उन्नै कई कि मोकौ एक बात को सदमा है। उन्नै कई कि बिना बतलाए मोञ क्या मालूम होय। तौ उन्नै कई कि तेरे पिता नै कई है कि तेरी मैतारी दिक है, जैसी बैठी होय बैठी पनारि ऑउ (भेज दूँ)। उसनै कई कि मैतारी करम की साथिन नई है, मै नई जाऊगी। साऊकार कई कि मई नाञ कहुगो तौ गॉउ के कहा जानगे। तौ उन्नै कई कि नाञ मान्त हौ तौ पनार देओ। उन्नै कई कि धुरे लौ जाउगो।

सकारे कौ धुरे पै पौचे और कही तुम चली जाओ। मेरे धीमर और मै लौट जाउगो। मकान कौ गई तौ न मैतारी दिक न कोई और। एक दिन दुइ दिन बीते तौ अस्नान कर सोलौ सिगार करे। सीसा मे यूँ देक कै जा रोई। जा नै कई कि—

(देह) दद कचन, मन रतन, बे नई चूकी अग,
कौन खता मो सै भई, मोञ बिसारो कत।

तौ लडकी की मैतारी नै सॉभ कौ इसके बाप सै कई, कि बेटी समुरे की दुखी है। तौ उन्नै कई सबेरे होत जाउगो। सकारे कौ जे चल दए। साऊकार को बेटा और बास्सा को बेटा पॉसे खेल्त हे। साऊकार नै कई कि एक बाजी मै भी खेलुगो। उन्नै कई अच्छा। तौ इसनै कइ कि

दध कचन, मन रतन, बे नई चूकी अग,
कौन खता लडकी भई, बाय बिसारो कत।

तौ साऊकार ने कई कि अब 'की बाजी मेरी है। तौ कई कि

लाख टका को मुँदरो, कि गढ़िऔ लाख सुनार,
पाओ धन की सेज पै, पानी पिओ न जाय।

तौ बास्सा नै कई कि मेरे मारे जानै औरत छोड दई। अब की बाजी मेरी। और कई

सैर (शहर) सै दूती चली, हियाँ करा बसेरा,
रहा चल्त पंछी समझाओ, पानी पिओ न तेरा।

तई साब नेकी समुज गए। तौ लाए लिबाय कै।

तहसील नवाबगज,
जिला बरेली

तेजराम कोरी

२

किसान और सिपाही को झगड़ो

किसान तौ छाँट रहो हो दूब, जेठ बैसाख की लू मै और पठान वच्चा सिपाही हो, नौकरी सै आओ हो, सौ रुपै की दीवार (घोडे) पै चढो जाय रहो हो। तौ उन्नै कही कि नौकरी सहिज की है, किसानी बडी कठिन है। तौ कही

चलो सिपाही बतन सै, घर सै चलो किसान।
आपुस मै दोऊ जिद मरे, इनके सुनौ बियान ॥१॥
उतरे जेठ, असाढ जु आये, जाय किसठू हर ठुकवाये।
बरसो मेहु, भई हरियायी, बीज खाद साहु सै लओ।
साउ नें जिन्स काट कै रुपया दए, पैली कित्त (किश्त) मूड पै आई।
जा कित्त के कोटा दाम, अब लच कै तुम करौ सलाम।
पकी फसल पै सैना खडे, भरी साह पै भूकन मरे।
गाय (गहाय) मीज तैयार करो, भुस के गाहक औरै भए।
झाल-लँगोटा ठाडे भए, बढनी लै के घर कौ आए।
इतनी बात निभाई सिपाई, जब उठ बोलो मियाँ किसान ॥२॥
औ किसान छए मै लेटा, हुक्का भर लाओ बेटा।
खटिया बिछी बिछाई पावै, कटिया छोड भैंस दुहि लावै।
रोटी मीज दूध मै खाय, खूब सोय कै हल लै जाय।
(तुमारी तरै नाञ कि) दुइ रुपिया के नौकर भए।
बरसो मेह चल दए हाल, सिर के ऊपर रक्खी ढाल।
सिगरी रात गत्त (गश्त) मँझबौ, तिरिया कौ सपनो ना पाबौ।
भई रोटी अबै नित खाउ, खबरदार जूतन पै राउ (रहौ)।
इतनी बात निभाई किसान, सिपाई पै सही नाञ गई ॥३॥
आधी रात सै फसल चुगारै, भोर होय तौ हर ठर्रावै।
तेरे घर कौ कूमिल लागै, चौकीदार रपट दै आवै।
तुम पुरी कचौरी कर कर लावौ, हम पलका पै बैठे खाञ,
भौत सी इकिर दिकिर करौ।
तेरियै ईख सै खूँर तुरावै, तेरेई मूँड धरावै।

मारै बेतन खाल उडावै, जे जे गतै तेरी करी किसटा।
एती बात निभाई सिपाई, किसान पै सई (सही) न गई ।।४।।
इत्तो हुकुम अँगरेजी नाञ, जब तुम मू सै काढौ गारी।
तबै भाज बरेली जाँउ, आठाना को कागद लेउ।
बा पै निसबत लिखाउ, अर्जी जाय मेज पै देउ।
साबित करकै गबा गुजारे, अब देखौ तुम पकडे ठाडे।
नाम कटो बेरी भरी, जे जे गतै तेरी करी रे सिपैटा।
इत्ती बात निभाई किसान, सिपाई पै सई न गई ।।५।।
कैद काट जब बनी रिहाई, जाय लई लाहौल (लाहौर) लडाई।
मारे तोपन बुर्ज खसाए, किला तोर जप्ती लै आए।
पैदा खास लट्ठा जीन, अब घोडे पै रक्खी जीन।
देओ बिराने हम चढै, तुम से गीदड घरई मरै।
इत्ती बात निभाई सिपाई, तौ किसान पै सई न गई ।।६।।
मटिआ पूस मिल करि गए कानी, और बन परी किसानी।
सहाँ मै नाज खूबै भओ, कुठली कुठला सब भर गए।
अब हम गए कर्ज से छूट, लस्कर आँटे मेंगे भए।
तेरे मुलिक सै जा लिख आई, बीबी बेच सुतनिया खाई ।।७।।
झकमार सिपाई हारो, सिपाई नै धरो मूट (मूठ) पै हात।
किसान नै लई झपट कै कसी, तौ लौ आय गए चदन बसै बारे।
लड़ मर भइया कोइ मित (मत) मरौ, पाँच पच राखिऐ गली।
तौ बन परे की कएँ दोनौ भली।
लेओ खुरपिया करौ नराई, जासै खेती बडी कहाई।
बन परे की नौकरिऔ भली है। बन परे की खेतिऔ भली है ।।८।।

गाँव शकरस
तहसील वहेडी, जिला बरेली

राँझे मुराउ

बुलंदशहर

१

एक कोरी हो। सो कगाल हो। सोई बोलो अपनी बऊ (बहू) तै बोल्यौ, रोटी पोय दै नौकरी कौ जाउगौ। वानै तीस रोटी पोई। इन चल दियो रोटी लै कै। हुआँ चोरन कौ थान हौ पीपर तरै। चोर आयै चोरी करि कै। ऊ हुआ ई बैठ्यौ। सोइ चोर नूँ बोले गि कौन सोय रयो ऐ हियाँ। कोरी की एक एक रोटी खाय लई।

रोटिन मै झैर (जहर) मिल रयो। ऊ तीसौ खाय कै मर रए हुअई। उनकी माया लै कै कोरी चल्यौ आयौ गाम कूँ। बऊ सै बोल्यौ अब की रोटी और पोय दै फेर जाउगो। वा कौ तीस खाँ (तीसमार खा) नाम ह्वै गयो। राजा कै नौकर है गयो। राजा बोल्यौ, तीसखाँ तोय इनाम दुगो, खूनी हाती है जाय मार दै।

ऊ चल्यौ हातिऐ मारिबै। बाकै पीछैं हाती परि गयो। डुग्गे तै रोटी लटकाय कै झट चढ़ गयो। हाती आयो डुग्गे तै रोटी झट मुँह मे दै लई। हाती वाँ बैठ गयो। तीसखौ की नीचे कौ उतरिबे की हिम्मत ना पडै। झट एक पोत उतरि कै कोस भर ताँई भाग्यौ।

फेर कै आयौ और हाती कौ लात मारी। हाती मरो भयो निकरयौ। तीसमार खाँ सेर कौ चल्यौ आयौ। राजा तै बोल्यौ, मैंने हाती मारयौ है, आदमिन कौ भगाय देओ।

दूसरे राजा की फौज आई। तीसमार खाँ नै अडउअन की रौस ठाडी ही, उखाड दई। ऊ राजा भाग् गयौ डर के मारे।

२

छोडे जाए है मैतारी कौ, मोय जनम की दुखियारी कौ।
एक दिन तेरी असवारी कौ सजे खड़े रथ पालकी।
आज मुख मे धूर भरे है, सूरत देखै अपने लाल की।
मद्रावत रुदन करे है।
तुझ बिन बेटा ना कोइ कल मै, अपने प्रान खोय देउँ पल मै,
आज मेरे छौना के गल मै, फाँसी पड रही काल की।
जाय देखत जीइ डरे है, मद्रावत रुदन करे है॥
सेड्ू सिघ राम गुन गावै, रोये सै कछु हाथ न आवै।
फूलसिघ कहै समजावै, मरजी दीनदयाल की।
जो लिखि दइ नाय टरै है मद्रावत रुदन करै है॥

३

चतर गूजरी ब्रिज की नार, गल सोहै चदन कौ हार,
मोहनमाला सीस समारे, ददि (दधि) बेचन जाउँ मथुरा नगरी।
तू काना (कान्हा) आगे तै आवै, झूटे जाल बनावै,
सेकी तौ मारै अपने यार की, चन्द्रावल गूजरी।
हमन नै देखी तेरी आरसी, मेरो काना पाँच बरस को,
तू हे रई धीगरी, मेरो काना कछू न जानै, तू जानै सगरी॥

गाँव भैसरौली,
बुलदशहर से पूर्व

सिघराम जाट

भरतपुर

चार मुसाफिर अपने घर ते कमाइबे खाइबे कूँ चल दीन्हे। गैल मै उनकूँ धन पाय गयौ। दस बीस हजार की जीविका ही। बे बडे खुसी भये। अब बे चारियूँ कथा कहेन लगे कि कल्ल के भूँके है कछू इतजाम करौ। तौ फिर उन मै ते द्वै जने गाँव कू खदाए (भेजे), भई तौ लै आओ रोटी, हम दोऊ जने चौकस पै है। तौ बे दोऊ जने रोटिन कूँ गए।

अब बिन दोउन नै मनसुआ कियो पीछै तै, कि भाई बे जब तक आमै जब तक दू बदूक लाओ तो बे आमे कहा बिन नै दूर तै ई झौक दियौ। बिन दोउन नै मनसआ महाँ

(वहाँ) कियौ कि भई तुम लड्डू जहेर के बनाय लै चलौ। इननें बिनकूँ खबाय देंगे बे दोऊ जने मर रइगे। तो वा धनै हम तू लै आयेगे। बे मर रहिगे। तौ ऐसेई बिनने लडडू बनाय कै चल दीन्हे।

तौ बे महाँ जाय के पौछे सो बेइन नै गोली मार दीन्ही बिन जहर के लडडू वारिन मै। मर गए कहा बे लडडू बिनने लै लीन्हे। उनकू खाय कै बे भी दोऊ मर गए चारयौ के चारयौ खतम भए। धन ह्वाँ कौ ह्वाँ ही रह गयौ।

गाँव सैत, तहसील कुम्हेर
भरतपुर

रामचन्द्र ब्राह्मिन

मथुरा

१

एक मथुरा जी चौबे हे जो डिल्ली (दिल्ली) सहैर कौ चले। तौ पैले रेल तौ ही नई, पैदल रस्ता ही। तौ एक डिल्ली को जो बनिआ हो सो माल लै कै आयो बेचिबे कौ। जब माल बिक गयौ तब खाली गाडियै लैकै डिल्ली कौ चलौ। जो सैर के किनारे आयौ सो चौबे जी सै भेट है गई। तौ बे चौबे बोले गाडीबारे सै, अरे भैया सेठ कहाँ जायगो, कहाँ गाडी है। वौ बोलो, महाराज, मेरी डिल्ली की गाडी है, और डिल्ली जाउगो। तौ कहै, भैया, हमऊँ बैठाल्लेय, चौबे बोले। वनिआ बोलो, चार रुपा लगिगे भाडे के। अच्छो भैया चारि दिगे। अब चुप बैठ गये। तौ बनिआ बोलो, महाराज कुछ बात कहौ जाते रस्ता कटे। तौ बे चौबे जी बोले, हमारी एक बात एक रुपा की है। वाने कही, अच्छो महाराज मैं दुगो। तौ कई, पैली बात तौ हमारी एई है कि

'सब पचन मिल कीजे काज, हारे जीते आवै न लाज।'

याय सुनिकै बनियौ बोलौ, महाराज मोय तौ कछु यामै मजा न आयौ, तुम नै एक रुपा छुडाय लियौ। कई रुपा की वात तौ इतनी होय है, फिर तोय सेत मेत की सुनामेगे। तौ कई, महाराज और कुछ कओ। तौ कओ, सेठ तेरो एक रुपा तौ चुको, अब दूसरे रुपा की कएँ। सू दूसरी बिन्ने बात कई कि 'औघट घाट नहियै।' कई, मोय मजा न आयौ। कई, जिजमान मजा की फिर सुनामेगे, तेरो भाडो तौ पूरो कर दे। कई, महाराज अब तीसरी बात कओ। तौ कई, तीसरी बात ये है कि घर मै इस्त्री तै साँच न कहे। कई, महाराज चौथियौ कहि देओ। कई, कछु कसूर वन जाय तौ साँच कहे, साँच कौ आँच कहू नाय। कही, जिजमान तेरो भारो तौ चुक गयो, अब तोय सेतमेत सुनावत चलै। फिर बाय रग विरगी बातै सुनावत भए डिल्ली के किनारे तक पौच गये।

जब डिल्ली द्वै कोस रै गई तब जिजमान को गाँव आयौ सो चौबे जी तौ उतर पडे। जब कोस भर अगाडी और चलो तौ एक गाँव और आयौ अगाडी वाते कौ। माँ तै डिल्ली कोस भर रै गई। वा गाओ मे कैसी भई कि एक साधू मर गओ तौ। गाव वालिन नै कहा विचार कियौ कि याकौ जमुना जी मै फिकवाय देअ तौ याकी मोक्ष है जाय। तौ सब लोग या पैंडे मै ठाडे कि कोई खाली गाडी आय जाय तौ याय डिल्ली भिजवाय देअ। इतनेई मे जा बनिए की गाड़ी चली आई। तौ गाओं वाले आदमी बोले कि तेरी खाली

तौ गाडी ह्वैयें, तू या साधू कौ लै जा, याकी मोक्ष ह्वे जायगी। वौ बनिआ बोलो मैं ऐसे इल्जामवाले मुर्दा कौ नईं पटकौं। गाओं वाले बोले तोय बड़ो पुन्न ह्वैयगौ, इल्जाम की कहा बात है। तौ मोंय चौबे जी की बात याद आई, 'सब पंचन मिल कीजै काज, हारे जीते आवै न लाज।' तौ मैंनें वाकौ बैठाल लियौ मैरो कहा बिगड़ैगो, धर्म को मामलो है।

जब मैं बाय लैकै चलो तौ मोय दूसरी बात याद आई चौबे जी की कि औघट घाट नैयें। तौ मैं बाय औघट घाट लै गओ जाँ कोई देखै नाय। तौ मैं बाय उठाऊँ तौ उठै नाय। मरे में तौ बडो बोझ ह्वै जाय। सो मैंने डर के मारे हात पांय पकड़ कै खैंचौ। जो वाकी धोती खुल गई। धोती के खुलत खन सौ असर्फी निकरीं। मैं जान्तो रुप्या ह्वैगे, निकरी असर्फी। जो मैं नईं लाउतो तौ काँ से निकरतीं। और चौगान कै घाट पै लै जातो तौ सब कोई देखतौ। बाँ काऊ नें नईं देखौ। अब मैंने साधू कौ तौ घसीट कै जमुना जी में फेंक दयौ, और गाड़ी धोय लीनी, और जल्दी के मारे असर्फी की बासनी भूल कै चल दियौ। जब थोडी दूर आयौ तौ याद आई कि बासनी तौ ह्वाँ ई छोड़ आयौ। लौट कै आयौ तौ देखौं तौ ह्वाँ ईं धरी। अब मैं बड़ो खुसी ह्वोत भयौ घर आयौ।

अब घर मैं आयौ तौ लुगाई सैं साँच कै दीनी। सबेरे में तौ दूकान पै चलो गयौ और लुगाई सैं पार पड़ोस में बात भई तौ वानें कै दीनी कि मेरो धनी एक साधू की सौ असर्फी लायौ है। सो वा बात फैलत फैलत बास्साह् के पास जाय पौंची। सो बास्सा नें सेठ कौ पकडि बुलायौ। अब सेठ काँपज् जाय और जात जाय। अब जौ चौबे जी की चौथी बाँत साँची होयगी तौ बच कै आउंगो। अब बास्साए कै सामनें हाजिर भयौ। बास्साह् बोलो, ऐ रे बनिया तू कहाँ से लाया, सच कहेगा तौ छोड़ दिया जायगा नह्री तौ मारा जायगा। बनिया बोलो, हजूर मैं सच कहुगो आप जो चाअ सो करना। वानैं सगरी कथा कई और कई की मैं काऊ कौ मार कै नई लायौ, हजूर मोअ तौ चौबे जी की बात का फल मिला, अब आप हजूर मालिक है। बास्सा बोले, तेंनें सच कह दिया जा तेरी मा का दूध है, ले जा।

२

भीजत है जब रीझत है, और धोय धरी सब के मनमानी।
स्वाफी[1] सफा कर, लौंग इलायची घोंट कै त्यार करी रसघानी।
सकर आय बिसबर नें जब ब्रम्म कमडल के जल छानी।
गंग से ऊँची तरग उठै तब हिर्दै में आबत भंग भवानी॥

बुद्ध कौ गडेस, सुध लैबै कौ बिधाता, चातुर कौ बाकबानी, थंबन अफीम सी।
जोग काजे रुद्र, बियोग काजें राजा रामचन्द्र, भोग कौ कन्हैआ, सब रोगन कौ नीम सी।
निपट निरंजन कहे बिजिया बिज्ञान ग्यान, दैबे कौ बल समान, लैबे कौ अतीम[2] सी।
जागबे कौ गोरख, तापिबै कौ धूजी[3], सोयबे कौ कुभकरन, भोजन कौ भीम सी॥

चौबे गनपत
खिलदर

मथुरा

---

१ भाँग छानने का अँगोछा
२ शान्ति, ३ ध्रुव जी

३

अम्बरीस जो राजा भये हे सो बड़े प्रतापवारे भये हे और वडे भक्त। सो अम्बरीस राजा के यहाँ दुर्बासा रिसि पधारे। सो सौ रिसिन को सग में लैके पधारे। सो राजा बोलो कि बड़ी किरपा करी आपने जो मेरे घर पधारे, सो ह्याँ राजभोग को समैय्या है सो सब रिसिन को लै महाप्रसाद लेयें। तब रिसी बोले कि हमकौ सझा बन्दन करिबे जानो है सो नजीके कोई तलाब होय सो बताइ दे। इनने कीनी कि ह्याँ रायसमुद्र पासी (पास ही) भर रह्यो है सो आप भले सझा बन्दन करौ। तब तो ये रिसी जायके सझा बन्दन कियो।

बहुत काल बितीत भयो। वा दिन द्वास्सी को बखत सो बा दिन तेरस आई जाय। सो सबरे पुरानी बोले कि हे महाराज आप कहा देखो हो। दस मिनट जाये हे तब तेरस आई जायगी, जासू आप द्वास्सी पालन करौ। तो राजा केये (कहै) कि महाराज मै द्वास्सी को पालन कैसे करौ। जो रिसिन को न्योतो दै दियो है। बिनने कही कि जा बात की चिन्ता नही। चरनामृत मे तुलसी है जाको पान करो तो द्वास्सी को पालन हे जायगो। बिनने पान कर लियो।

इतेक मे रिसी आये। बिनने कीनी, महाराज आप प्रसाद लै बिराजो जो द्वास्सी को दिन है। अरे महाराज तू बडो भक्त, तूने रिसिन को न्योतो दियो और पहले प्रसाद ले लियो। राजा ने बिनती कीन्ही सो रिसी माने नाँय। उन्ने स्राप दे दियो, सो किरत्या पैदा ह्वै गई। किरत्या की मृत्यू कर दीन्ही चक्र सुदर्सन ने, और चक्र सुदर्सन बिन के पीछे चल्यो। रिसी बिस्वनाथ के दरबार मे चले गये।

तव महादेव जी बोले कि अम्बरीस के स्राप को मै झेल नही सको। ऐसे महादेव जी ने दुर्बासा को जवाब दे दियो। ब्रह्मलोक पहुँचे ब्रह्मा जी के पास। बिनने हू यही जवाब दियो। अब तौ बिस्नू के पास गये। सो बिस्नू ने आदरपूर्वक रिसिन को बिठायो और सब वार्ता पूछी। दुर्बासा ने सब कथा कही। बिस्नू जी बोले जो तू ऐसो काम कियो है तो मेरे पास मत वैठो। उपाय तो यही है कि राजा अम्बरीस के पास जाउ। तो राजा के पास रिसी महाराज पधारे। राजा के कहे से चक्र सुदर्सन जहाँ अस्थान हतो तहाँ जाय बिराजे।

राजा ता दिन से अन्न नही लियो। तुलसी लेते रहे। तब कही, महाराज बडी किरपा करी, सबरे रिसी कहाँ हैं, भोजन को पधारो। दुर्बासा ने याद कीन्ही तो सब रिसी कछू देर मेई बाही उत्पन्न भये। सो खूब प्रीत से भोजन कराये और रिसी बडे राजी भये। तब राजा ने वाई घडी प्रसाद लियो। सो अम्बरीस ऐसे भक्त भये हे कि उनके समान ब्रज भक्त भये हैं।

कन्हैया ब्रजबासी, गोकुल

मैनपुरी

१

तौ एक नाऊ रहे और एक नाइन रहे। तौ वा नाइन कही नाइन तै के ए नाऊ तुम बैठे राहत हौ, काम धधो नाऊ कत्त औ। भोर भओ लैकें पेटी चल दओ। पौचे जाय गाँओ

में। एक किसान को लड़िका मिलो खेल्त। बाके बार बनाय उठे। बु लड़िका गओ गेऊँ भल्-ल्याओ जाय। नाऊ कौ दै आय। नाऊ घरि पै ले आओ। नाँइन बोली, आज इतने लै आए कल्ल इतने तै ज्यादा लै आयौ।

तब नाऊ बोलो नाँइन ते, कि नाइन आज पुआ करु। नाँइन ने पुआ करे पाँच। तौ नाऊ हाथ पाँओ धोय कै गओ, कि नाँइन हमै पस्स दे, हम बार बनाइबे कौ जात ऐ। नाँइन नै दुइ पुआ पस्स दए। तव नाऊ बोलो कि तूनै तीन राखे,मोंय कैसे दुइ पस्से। बानै कही, हमनै करे नॉई। नाऊ बोलो, तूँ खा दुइ मोंय तीन दै दे। नाँइन बोली, तूँ दुइ खा तीन हम खइहै। नाऊ उठो सो पाँचौ पुआ बेला मै धद्दए। नाँइन उठी सो सीके पै धद्दए। नाऊ उठो सो खटिया सीके के नीचे बिछाय लई। हम तुम दोनौ जने परिहै पलिका पै, जोई अगार बोले सोई दुइ खाय, पिछार बोले सो तीन खाय।

अब बे मुटुर मुटुर दोनौ चितऐं। नाऊ बोलो कि जो हम बोले देत है तौ हमै दुइ ए मिल्त है, बे तीन खाए जात है। नाँइन बोली कि जो हम बोल्त है तौ बौ दारीजार तीन खाए लेत है। होत कत्त मै दिन चढ़ि गओ। परोसी बोले कि नाऊ ठाकुर नाईं उठे, बजे (वजह) का। आए लरिका। टटिआ खोलि के उनै देखो। उनकी आँखै टँगी रही। बे लरिका हुँअन तै जात रहे। तौ लौ बे लरिका गए अपने बाप तै कि बे तौ दोनौ जने मरि गए। कडा उनके जलाइबे के काज लै गए। उनौन कौ टटरी बाँध कै लै गए। उन दोनो जनिन की सरगी रची जाय कै। पाँच जने गए पच लकड़िआ देन।

तौ पैले नाऊ ठाकुर कौ आगि लगाई। आँच जो लगी नाऊ ठाकुर भाजो। बे हुँअन तै भाजे, तू ससुरी तीन खा हमै दुइऐ दै दे। बे पाँचो पच भाजे, दद्दू चलियौ नाय अभई खाए लेत ऐ। नाऊ औ नाइन गए घर पै। नाऊ नै दुइ खाए, बानै तीन खाए।

गाँव किसनपुर,
मैनपुरी से पूर्व

कोरी लड़का

२

रसिया

ककन तेरी किलिया काँ गिरी रे।
कहाँ गिरी किलियर, कहाँ गिरो ककना,
सिर माथे की बेदी कहाँ गिरी रे।
बाजार गिरी किलिया, ऊसार (आँगन) गिरो ककना,
सिरमाथे की बेंदी सेज गिरी रे।
किन्नै पाई किलिया, किन्नै पाओ ककना,
किन्नै पाई रे, सिर माथे की बेंदी किन्नै पाई रे।
सास पाई किलिया, ननद पाओ ककना,
सैंया पाई रे, सिर माथे की बेदी सैया पाई रे।

कोरी लड़का

३

रसिया मुसल्मानी

धीरे धीरे चले आवौ, परदा हिलने ना पावै।
खाना पकाया मैंने बो आप के लिये,
धीरे धीरे जेंय जाओ, चाँवर गिरने ना पावै।
सिजिआ बिछाई मैंने आप के लियें,
धीरे धीरे चले आबौ, सिजिया हिलने ना पावै।।

गाँव गढ़िया,
मेनपुरी के उत्तर मे

रैदास लड़का

शाहजहाँपुर

एक गरीब बुढ़िया हती। उसको एक लडका सेकचिल्ली हतो। बह बुढ़िया बहुत गरीब हती। बाके लड़िका ने कहो कि अम्मा हम खेती करिअइँ। अम्मा ने कही, लल्ला खेती मति करउ। तौ सेकचिल्ली नें अम्मा की एकउ नाँइ मानी।

तौ सेकचिल्ली नें एक खेत लओ। तौ साँज कउ कही अपनी अम्मा से कि हम चना बुइहइं. औ भुँजे बुइअइँ। तौ उसके परोसी जो रहइं सो सुन्त रहे जा बात। तौ परोसी ने कई कि हमऊँ भुँजे चना बुइअइं। औ चुप्पा से कहि दई कि छँटाकै भर भुँजिअउ। परोसी के खेत जादा रहइ। तौ उन्नइ कही कि तुमउ भूंज लेउ दस पन्धा मन। सेकचिल्ली सबेरे गए, अपने साथिन का लै गए औ भुंजे चना चबाइ आए। और दूसरो जो परोसी रहै बइ (वे) गए सो भुंजे बइ आए। बइ जमे नाँईं। और दूसरे को खेत रहाय।

सेकचिल्ली ने अपनी महतारी से कही कि अम्मा चना खूब जमे घर के खेत माँ। तउ अम्मा ने कई कि साग नाँईं लइअउ। तौ सेकचिल्ली नइ कई कि चलउ तुमे खेत मै बैठार देव, नोच लइअउ साग। तौ अपनी अम्मा का खेत मे बैठार दओ। खेतबाले नै मारो। अम्मा रोउती घरइ आँईं। सेकचिल्ली नै कई कि पंचाइत करइएँ, खेत घरहे को है, मारो काय कौ। अम्मा सै कई कि खेत माँ दहला खोद अइएँ तुमें उसमां गार अइएँ। तौ अम्मा ने कई कि हम नाईं गडन जइएँ, चाँउ खेत मिलै चाँउँ नाईं मिलै।

सेकचिल्ली नै साँज कौ पचाइत जमा करी अउर अपनी अम्मा का खेत माँ बैठारि आए और सिखाय दओ कि खेत बारे आवें तौ पूँछे कि खेत खेत तुम कहि को खेत, तौ तुम कहि दीजौ कि हम सेकचिल्ली के खेत। तौ बह (वे) लोग आए खेत तीरा। एक नें पूँछी कि खेत खेत तुम कहि को खेत, तौ कही हम सेकचिल्ली को खेत। तौ सेकचिल्ली कौ पंचन नै दिबाओ खेत। फिर महतारी कउ खोद लाए।

गाँव सदमा, तहसील पुबाँयाँ
शाहजहांपुर के २० मील उत्तर-पूर्व

शब्दानुक्रमणी

अंक अनुच्छेद के द्योतक हैं

अकुर ११९
अँखियाँ १४८
अँगिया ९५
अन्जन ११९
अंत २४२
अंतःकरन ११३
अइआ ११७
अइया ११७
अइसी ९७
अउँ १५७
अक २४८
अकि २४८
अगत्रई २४१
अगस्त १३५
अगहैन् ११४
अगार २४१
अगेला २४१
अघैन् (अगहन्) ११८
अजोरी २४३
अठओं २५१
अठऔ २५१
अठ्यौ २५१
अड़ोसी-पड़ोसी ११०
अढ़ाई २५१
अनंत २४६
अनत २४२
अनार् १३३
अनु २४२
अपना १९६
अपनी १९६
अपने १९६
अपनो १९६
अफसोस १३१

अव २४१
अमारो १६१
अम्मा ११९
अरु २४८
अरोसी-परोसी ११०
अर्कस् २१६
अरसी (लसी) ११०
अलग ८६
अस २४३
असि २२५
अस् १६१
अस्तर ११९
अस्सी ११९
अहइ ४८
अहै ६२, २२५

आँखिन् १५०
आई ८९
आई २१९
आउनो २३८
आऊँ १५७
आए २२०
आगि १४७
आगे २०५, २४१, २४२
आगें २४१
आगैं २४१
आज २४१
आजु २४१
आठ २५१
आठओ २५१
आठओं २५१
आठमो २५१
आठयो २५१

आठ्मो २५१
आठ्यौ २५१
आदो २५१
आधी २५१
आधे २५१
आधो २५१
आधौ २५१
आप १९६
आपको ४८
आपन १९६
आपनी १९६
आपने १९६
आपनो १९६
आपु १९६
आपुन १९६
आफिस् १३५
आवतु १०२
आमन् १५०
आमारो १६१
आमाल १२९
आम् १५०
आम्तु १०२
आयै ११७, २१९
आवौ २११
आसपास २४२
आसा १२९
आहिं ५९
आहि ४४, ५०, ६१, २२५
आही २२५
आहीं २२५

इँगलिस् १३५
ईंदरसे ९५

इ २५१
इआ १७५
इए १७६
इओ १७५
इकट्ठो ११४
इकिल्लो २४३
इखट्टे २४६
इखट्टो ११७
इच २०१
इत २४२
इती १९८
इतेक १९८
इत्ते १९८
इन्तो ११६, १९८
इन १७४, १७८
इनइँ १७९
इनन् १७८
इनु १७८
इने १७९
इनै १७९
इन् १७४, १७८
इन्जन् १३५
इन्ह १७८
इन्हइ १७९
इन्हहि १७९
इन्हे १७९
इन्हैं १७९
इमपेसल १३७
इमे १७९
इमै १७९
इम् १७७
इस्कूल १३६
इस्तम्रारी १२९
इस्तुती ११८
इहि १७९
इहि १७९

२५१
ईट् १५०
ईंटन् १५०
ई १७५, १७६, १७७, २५१
ईख् ११६

उँ २२३
उइ १७०, १७१
उइसो १९८
उए १७०
उओ १६९
उक्तात् ११९
उखड़ २०८
उखाड़ २०८
उठ् ११६
उत २४२
उतेक १९८
उत्ते १९८
उत्तो १९८
उन १६८, १७२
उनु १७२
उनैं १७३
उन् १६८, १७२
उन्नैं १७३
उन्हे १७३
उन्हैं १७३
उन्हो १७२
उप्पर १०३
उभइ २५१
उल्लँग २४२
उसइ १७३
उसे १७३
उस्ताद् १२९
उहि ५५, १७१, १७३
उहाँ २४२
उहि ६२, १७२
उह् १६९

ऊँ २२३
ऊ १६९, २५०
ऊपर १०३, २०१

एआ (यह) ११६
एऊँ १७८
एहि १७७
एहिका १७९
ऐंसो (ऐसा) ९३
ए १७४, १७६

एक १९४, २५१
एकन १९४
एकनि १९४
एकै १९४
एती १९८
एते १९८
एतो १९८
एरन् १३६

ऐ १७६
ऐ (हैं) ११४
ऐक्टर् १३५
ऐसी ९७
ऐसे २४३
ऐसे २४३
ऐसो १९८

ओहि १७१
ओहिका १७३
ओ १६९
ओते १९८
ओतो १९८
ओर २६१
ओरी २०५
ओह १६९

औ २४८
औई ९०
औट् १३६
और १९४, १९७, २४६, २४८, २६१
औरन १९४
औरु २४८

कँमर १००
कम्पू १३५, १३८
क २०४
कआ १९०
कइ २२१
कइहाँ २००
कई २६१
कउ २००

कचु १९३
कछ १९३
कछु ७९, १९३, २४६
कछुआ १४२
कछुक १९३, २४६
कछू १९३
कज्जा (कर्जा) ११०
कटाछनि १५०
कढिबे २२०
कणि २००
कतक २४५
कत्ती ११०
कदर् १२०
कनइ २००
कने २००, २०५
कन्कइया ११९
कपड़ा ८६
कब २४१
कमान् १३३
कम्रा १३५
कर २०५, २२१
करनो २३८
करामात् ११५
करायो २०८
कराय्मात् ११५
करि २०५, २२१
करु २१५
करे २११
करो २११
कर्जा ११०
कर्ती ११०
कर्नल् १३५
कर्हानो १०७
कलट्टर १३९
कलेवा ८६
कल् १०७
कल्गी ११९
कल्यांन ७०
कल्सा ११९
कवन १८६, १८९
कसै १८८
कस् १८७
कस्कुट् ११९
कहँ २००
कह १९०
कहाँ ९०, २४२
कहा ६३, ७९, १९०, २४५
कहावै २०८
कही २६१
कहौं ९०, ९५, २११
काजीहौज् १३६
का ४३, ६३, ६४, १७२, १८६, १८७, १८९, १९०, २००, २०४, २४५
काई १९२
काऊ १९१, १९२
काए १८८, २४५
काए १९०, २००
कागद् १३२
काज २०५
काजी १२९
काजें २०५
काजै २०५
काट २०८
कान्हा १०६
कापी १३५
काफी १४१
काय १९०
काल्र् १३९
काह ६३, १९०
काहा १९०
काहि १८८
काहू १९१, १९२
काहे १९०, २४५
काहै १९०
कि २०४, २४८
किछु १९३
कित २४२
कितेक १९८
कित्ते १९८
कित्तो ११६, १९८
किनइँ १८८
किनऊँ १९१, १९२
किनारो १३३
किनें १८८
किनै १८८
किन् १८६, १८७, १८९
किन्ह १८९
किन्हइ १८८
किन्हऊ १९२
किर्किट् ११८
किमि २४३
किसइ १८८
किसऊ १९२
किसे १८८
किसै १८८
किस् १८७, १८९
किस्मिस् १२९
किहि १८७
की ६२, २०४, २४८
कीनौ २१९
कीन्हे २१९
कुँ १९९, २००
कुंडल १०५
कुँमर १००
कुछ ७९, १९३
कुछु १९३
कुछू १९३
कुत्ता ११९
कुन १८९
कुल् १०३
कुल्ल १०३
कुँ १९९, २००
कूँण १८९
कू १९९, २००
कून् १८६
कैहि १८७ १८९
के २०४
के १८९, १९०, २०४, २०५
केउक १९८
केऊ १९२
केती १९८
केते १९८
केतो १९८, २४६

केनी २००, २२१
केन्हू १८९
केसे २४३
केहि ४३
केहू १९२
केहों २६१
कैं २२१
कै १९०, २०४, २०५, २२१, २४८
कैउक १९८
कैद् १३१
कैवा २४१
कैसे २४३
कैसो १९८
कैहों २६१
कौउ १९१
कों १९९, २००, २०४
कोंन १८६
को ७८, १८६, १८९.१९९, २००, २०४, २०५, २६०
कोइ १९१
कोई १९१, १९२, १९७
कोउ १९१
कोऊ १९१, १९२, १९७
कोट् १३६
कोढ़् १०८
कोन १८६
कोन् १८६, १८७
कोरा २५१
कौं ५६, १९९, २००
कौन ७०
कौ १९९, २००, २०४
कौन ७८, १८६, १८७, १८९
कौनु १८६
कौनें १८८
कौनैं १८८
कौनो १९२
कौन् १८६, १८७
कौरा २५१
कौहाँ २४२
क्या ७९, १९०
क्यों २४५
क्यौ १०२, २४५
क्रीडन १०१

खत् १३१
खबाउनो २०८
खलीफा १२९
खबाइबे २०८
खाँ २४२
खाओ २१५
खाय्रो ९६
खात २१७
खान २२०
खानो ८६, २०८, २२०, २५०
खाय २११, २२१
खायबौ २२०
खाली (मुफ़्त) ८६
खुबाउनो २०८
खुल २०८
खूब १२९
खेतिऔ २५०
खैबे २२०
खैरात् १२९
खैहौ २१४
खोनो २०८
खोय २२१
खोल २०८

गई ९६
गउनो ९७
गओ ७५
गद्दन् ११०
गन् १३५
गरीबिनी १४२
गरीबिन् १४२
गरीब् १४२
गर्दन ११०
गाउ ११६
गाए ९२
गाड़ी १४१
गाय् १४३
गारड् १३८
गावे २११
गि १७४, १७५
गिर्हओं २५१
गु १६९, १७४, १७५
गुस्सा १३१
गे १७४, १७६
गैस् १३५
गोल् १४२
गौनो ९७
ग्या १७४
ग्यारओं २५१
ग्यारओ २५१
ग्यारहओं २५१
ग्यारह्मो २५१
ग्यार्हओं २५१
ग्यार्हैमो २५१
ग्यार्हचौ २५१
ग्यारैं २५१
ग्व १६९
ग्वनु १६८, १७२
ग्वनैं १७३
ग्वा १६८, १६९, १७१
ग्वाए १७३
ग्वातें (उससे) १११
ग्वाला ११२
ग्वालिनि १४२
ग्वालिनी १४२
ग्वाल् १४२
ग्वे १६८, १७०

घर १३७
घरै १५४
घर् ११६
घोडन् १५०
घोड़ा १५०
घोडान् १५०

चउथाई २५१
चउथी २५१
चउथो २५१
चओगुनो २५१

चढ़नो १०८
चतर १००
चतुर १००
चच् १३७
चर्बी १३३
चलंगी २१३
चलंगे २१३
चल २१५
चलइऔ २०८
चलत २१७
चलतै २५१
चलनो २२०, २३८
चलाइ २०८
चलाइहै २०८
चलाउँगो २०८
चलाउत २०८
चलाउनबारो २०८
चलाउनो २०८
चलाओ २०८
चलाबै २०८
चलाबैगो २०८
चलि २२१
चलिबौ २२०
चलिहूं २१४
चलिहै २१४
चलिहौ २१४
चलिहौ २१४
चली २१९
चली २१९
चलुगी २१३
चलुगो २१३
चलुगौ २१३
चलु २१५
चलूं २११
चले २१९
चलै २११
चलै २११
चलैगी २१३
चलैगो २१३
चलो ७८, २१९, २६०
चलौं २११
चलौ २११, २१५
चलौंगी २१३
चलौंगो २१३
चल् ११६
चल्त २१७
चल्ती २१८
चल्ती २१८
चल्ते २१८
चल्तो २१८
चल्तौ २१८
चल्बाइ २०८
चल्बाउँगो २०८
चल्बाओ २०८
चल्यो ७८
चल्यौ ७८
चाँय २४८
चायँ २४८
चार २५१
चारों २५१
चारौ २५१
चार्‌अे ८९
चार्‌यो २५१
चाह्नो २३८
चिक् १३५
चुकनो २३८
चुबाउनो २०८
चूनो २०८
चेन् १३७
चेरा (चेहरा) १२९
चेर्‌मैन् १३६
चेला १६७
चोटी १४०
चौ १०२, २४५
चौगुनी २५१
चौगुनो २५१
चौथाई २५१
चौथारो २५१
चौथियाई २५१
चौथो २५१
चौथ्याई २५१
च्यौ १०२, २४५
च्यौं २४५
छटमो २५१
छटो २५१
छटौ २५१
छठी २५१
छठो २५१
छप्पर् १४७
छबीलिन् १५०
छिन २४१
छिनकु २४१
छिन् २४१
छुवायो २०८
छै २५१
छोरा ८६
छ्वै २२१

जइ १७६
जउ १७५
जगति १५४
जज् १३७
जड १०८
जद २४१
जदपि २४८
जनि २४४
जनिन् १५०
जनु २४३
जनै १४९
जनेन् १५०
जनों २४३
जनो १४९, १५०
जब २४१
जब्रा १३७
जमानत् १३२
जमीन् १३२
जरा २४६
जल्दी २४१
जस २४३
जहाँ २४२
जहि १७७
जह् १७५
जाँ १८५, २४२
जा ४३, १७४, १७५, १७७, १८०, १८५

जाउ २१५
जाए १७९, १८३
जाओ २१५
जादा २४६
जाधे २४६
जान २२०
जानों २११
जानो २३८
जान् १३३
जासु १८१
जाहि २११, ३१५
जाहि १८३
जाहिर् १२९, १३०, १३२
जि १७४, १७५
जित २४२
जितेक १९८
जित्ते १९८
जित्तो-तित्तो १९८
जिन १८०, १८५, १८१,
२४४
जिननि १८१
जिनि १७८
जिने १७९
जिनै १७९, १८३
जिन् १७४, १७८, १८०
जिन्ह १८१, १८५
जिन्हाँ १८५
जिन्हें १८३, १८५
जिन्है १८१, १८३
जिमि २४३
जिम्मा १३२
जिवाय २०८
जिस १८५
जिसे १८५
जिसै १८१, १८३
जिहाज् १२९, १४१
जिहि १८१,१८३
जिहि ४३, १८१, १८३
जीमनो ८६
जीवे २२०
जु १७४, १७५, १८१,
१८५, २४८
जुम्मा ७९
जुलुम् १२९
जून् १३७
जे १७४, १७५
जेहि १८०, १८१, १८५
जो १७४, १७६, १८०
१८१, १८५
जेते १९८
जेते-तेते १९८
जेतो-तेतो १९८
जेल् १३६
जैसे २४३
जैसे २४३
जैसो १९८
जैहौ २१४
जो २४३
जो १८०, १८१, १८५,
२४८
जोड (ज़ोर) १०७
जोरअंबों ८९
जोर् १२९
जौरे २४२
जौ ७५, १७४, १७५,
१८०, १८१, २४८
जौन १८५
जौन् १८१
जौलौ २४१
ज्ञान ७०
ज्यहि १७७
ज्याँ १८५
ज्याय १७९
ज्यों २४३
ज्यौ २४१, २४३
ज्वान ११५
झट्ट २४१
झाँ २४२
झॉर्ड ९९
टँहल्नों ११४
टाउन्हाल् १३६
टिरेन् १२०
टीम् १३५
टेबिल् १३७
टेम् १३६
टेसन् १४१
टैम् १३६
टैल्नो ११४
टौन्हाल् १३६
ठन्डो १०५
ठॅर (ठहर) ९३
ठेठर् १३७
डिअर् १३६
डिकस् १३७, १३९
डिगरी १३९
डिरामा १३५
डेड २५१
डेड २५१
डेड् २५१
डेढ २५१
डेढ़ २५१
डेढ़उ २५१
डेरी १३६
डौरी १०१
ढाई १०१, २५१
ढिग २०५, २४२
त १६४
तइ १६४
तउ २४१
तकिया १२९
तगादो १३१
तद २४१
तन २०५
तनें २०३
तब २४१, २४८
तबै २५१
तमाँ १६५
तमे १६५
तमै १६६
तम् १६५

तर २०५
तरप् ११४
तरफ् ११४
तरु २०५
तव १६७
तहँ २४२
तहाँ २४२
ताँईं २०५
ताँहि २०५
ता ४३, १८०, १८२
ताई २०५
ताईं २०५
ताऊ ८६
ताए १८३
तारो १०९
ताते २४८
ताते २४८
तातैं २४८
तालो १०९
तासु १८१
तासैं २४८
तासों २४८
ताहि १८३
तिआई २५१
तिग्नो २५१
तित २४२
तित्ते १९८
तिन १८०, १८२, १८३
तिनैं १८३
तिन् १८०
तिन्ह १८२
तिन्हैं १८१, १८३
तिमरो १६७
तिमि १६५
तियारौ १६७
तिसरो २५१
तिसैं १८१, १८३
तिहयाई २५१
तिहाई ११६
तिहारी १६७
तिहारे ५४, १६७
तिहारो १६७
तिहि १८३
तिहिं ४३, १८३
तिहुँ २५१
तीजी २५१
तीन २५१
तीनो २५१
तीनौ २५१
तीन्यौ २५१
तीर् १३३
तीसरे २५१
तीसरो २५१
तीसरौ २५१
तु १६३
तुइ १६३
तुझ १६४
तुत्त २४१
तुम १६२, १६५, १६६, १६७
तुमन् १६५
तुमरी ४४, १६७
तुमरे १६७
तुमरौ १६७
तुमारा १६७
तुमारी १६७
तुमारे १६७
तुमारो ११४, १६७
तुमारौ १६७
तुमि १६३
तुमुँ १६५
तुमैं १६६
तुम् १६२, १६५
तुम्भे १६३
तुम्ह १६५
तुम्हरो १६७
तुम्हारी ४४, १६७
तुम्हारे ५४, १६७
तुम्हारो १०६, ११४, १६७
तुम्हे १६६
तुम्हें १६६
तुम्हैं १६६
तुरत २४१
तुरकान् १५०
तुव १६७
तूँ १६२, १६३, १६४, २६१
तू १६२, १६३, २६१
तूती १३३
तहि १८३
ते १६२, १६३, १९९, २०३
ते १८०, १८२, १९९, २०३, २६०
तेते १९८
तेरा १६७
तेरी १६७
तेरे १६७
तेरैं २५१
तेरो १६७
तेरौ १६७
तेहि ५९, १८१
तैं ५६, १६२, १६३, १९९, २०३
तै १६३, १९९, २०३
तैंसे २४३
तैंमे २४३
तैंसो १९८
तोमार् १६७
तोह् १६५
तों ९३
तो १६२, १६४, १६७, २३२, २४८
तोए १६६
तोय १६६
तोरि १६७
तोर् १६७
तोहि १६६
तोहिं १६४, १६६
तोहर् १६७
तौ २४१, २४८
तौन् १८१
तौलौ २४१
त्यहि १८३
त्यारी १६७
त्यारे १६७
त्यारो १६७
त्यों ९५, २४३

थ १६४
थरमामेटर् १३७
थर्ड् १३७
थरिया ८६
थाँ १६५
थाँरो १६७
था २३२
थारो १६७
थिउसे २३२
थियें २३२
थिली २३२
थें १६५
थेटर् १३६
थो ७५, २३२
थोड़ी ११०
थोरी ११०

दओ ७५
दड़ी (दरी) १०७
दमामो (दमामा) १२९
दयों ९३
दरबज्जो १०३
दरबाजो १०३
दरी १०७
दस २५१
दसओं २५१
दसओ २५१
दसमो २५१
दसयो २५१
दसयौ २५१
दसों २५१
दस्मो २५१
दहीं ११३
दिंगी २१३
दिंगे २१३
दिउली ९६
दिवायो २०८
दिसंबर् १३७
दुंगी २१३
दुगो २१३
दुइ २५१
दुइए २५१
दुगुनो २५१
दुगूनो २५१
दुनिया १३३
दुसरो २५१
दुसरौ २५१
दूजी २५१
दूजै २५१
दूजो २५१
दूणौ २५१
दूनो २५१
दूनौ २५१
दूनौ २५१
दूसरों ९३
दूसरो २५१
दूस्रो २५१
देनो २३८
देषे २२०
दै २२१
दोई २५१
दोउ २५१
दोउन २५१
दोऊ २५१
दोनौ २५१
दोसरो २५१
द्वास्सी १०२
द्वादसी १०२
द्वारे १५४

धाम ७०
धाइ २२१
धाई २०.
धीरे २४३
धोरे २४२
धौ २४८

नबर् १०६
नंबरदार् १०७
न २४४
नइ २००
नइँ २४४
नऔरा ९२
नओर २५१
नक्टाई १३८
नकड़ी (लकड़ी) १०९
नजदीक २४२
नफा १२९
नमओं २५१
नमो २५१
नयओ २५१
नर्स् १३५
नवओ २५१
नहि २४४
नहिन २४४
नही २४४
नाँय २४४, २४८
नाँहि २४४
ना २४४
नाई २४४
नाऊँ ७०
नाऊ ७०
नास्पाती १३३
नाहिन २४४
नाही २४४
नि २४४
निकट २०५, २४२
निकर २०८
निकरनो २३८
निकरो १०९
निकलो १०९
निक्स्यो १०६
निकार २०८
नित २४१
निमाज १२९
नीचे २४२
नुँ २४३
नूँ २००
नें १६५, १९९, २००
ने ६४, १९९, २०२, २६०
नै १७८, १९९, २००, २०२
नेक २४६
नै १९९, २०२, २०५
नों २४३
नौ २५१

नौमी २५१
नौयो २५१
नौयौ २५१
न्यारो ८६
न्यूँ २४३
न्यौं २४३
न्हानो १०६

पंचओं २५१
पँचँओं २५१
पँचओ २५१
पँचगुनो २५१
पन्डित ११९
पक्को ११६
पचयौ २५१
पड़नो २३८
पडो २६१
पर १९९, २०१
परो २६१
पर्बेसुर् १०६
पर्मेसुर् १०६
पर्सिकै ११०
पल्लँग २४२
पस्सिकै ११०
पहलो २५१
पहलौ २५१
पहाड् १०८
पहिली २५१
पहिलै २५१
पहिलो २५१
पाऊँ २११
पाँच २५१
पाँचओं २५१
पाँचओ २५१
पाँचमो २५१
पाँचयो २५१
पाँचवओं २५१
पाँचवी २५१
पाँचौ २५१
पाँच्मों २५१
पाउनो २३८
पाक ११६

पाचयौ २५१
पाछे २४१
पाछे २४१
पामेंगे १०२
पार्टी १३९
पालकी ८६
पाल्तू १४२
पावेंगे १०२
पास् १३५
पिअन २२०
पिछार २४१
पिटउआ ८६
पिढियाँ १४८
पिढिया १४८
पिबाउनो २०८
पी २२१
पीछे २४२
पीछे २४१
पीनस ८६
पीनो २०८
पुअर् १३६
पुनि २४१, २४८
पुर् १०७
पुल्टिस् १३६
पूर्तहि १५४
पूस् ११४
पै २०१
पै २०१
पै १९९, २०१, २०५, २४८
पैट्मैन् १३६
पैलबान् १२९
पैलो २५१
पैहलो २५१
पोन २५१
पोस्काट् १३६, १३८
पौण २५१
पौन २५१
प्रति २०५
प्रयत २०५

फ़जर ७९

फट २०८
फते १४१
फरिया (लहँगा) ११५
फाड़ २०८
फिर २०८, २४८
फिरनो २३८
फिरि २४१
फिलास्फर् १३५
फ़ुटबाल १३५, १३७
फूस् (पूस) ११४
फेर २०८, २४१
फेरि २४८
फेल् १३७
फोटोग्राफ् १३५
फोर् १३६
फौज् १२९

बंक १३८
बंडी ११६
बदूक १३३
बइ १७०
बउ १६९
बक्सीस् १३१
बखानो २१९
बटर् १३५
बड़ी १०८
बड़ो १०८
बढावत २०८
बत्ती (बस्ती) १११
बद्जात् ११९
बद्ध ११९
बनाये २१९
बम् १३५
बर २४३
बर्हमो २५१
बस् १०३
बस्ती १११
बस्स १०३
बहण १०५
बहुअन् १५०
बहुएं १४८
बहुऔ १५४

बहुत् ११४
बहू १४८, १५०
बहून् १५०
बाँ २४२
बाँकी ९५
बाँध २०८
बा १६८, १६९, १७१
बाए १७३
बाकी ९५
बाग्मान् १०२
बाग्वान् १०२
बाच्छा (बादशाह) १०२
बाद्सा १०२
बापिस १०२
बाम्हनौ १५४
बारै २५१
बार्निस् १३७
बार्ह्ओ २५१
बास्कट् १३७, १३९
बास्सा (बादशाह) १०२, ११५
बास्साय (बादशाह) ११५
बास्स्या (बादशाह) ११५
बाहिर २४२
बिच १३५
बिअर् १३६
बिक २०८
बितेक १९८
बित्तरा (बिस्तरा) १११
बिदून २४४
बिन १७२, २०५, २४४
बिना २०५
बिनै १७३
बिन् १७२
बियो २५१
बिरकुल्ल २४३
बिराँडी १३६
बिल्टी ११९
बिसेस् १११
बिस्तरा १११
बीच २०१, २०५
बीथिन्ह १५०
बीर्बर् १०९
बीर्बल् १०९
बु १६८, १६९
बुर्का ११९
बुलद १२९
बुलबुल १३३
बूट् १३५
बेंचन २२०
बे १०२, १६८, १७०
बेई २५१
बेच २०८
बेटौ १५४
बेते १९८
बेला ८६
बै १६८, १७०
बैअरबानी (स्त्री) ८६
बैरङ् १३८
बैरा १३६
बैसे २४३
बैसो १९८
बो १६८, १६९
बोउन २२०
बोट् १३६, १३७
बोतल् १३७
बोर्ड् १३५
बौ ७५, १६८, १६९
ब्याड् (बयार) १०७
ब्यार्‌ड़ ९१
ब्यारू ८६

भगियै २५१
भइओ १५४
भई २३१
भई २३१
भये २३१
भयो २३१
भयौ २३१
भर २०५
भाँई २०५
भा २३१
भारी १४२
भीतर २४२
भुँको ९५
भूको ९५
भो २३१
भौ ६२, २३१
भौत् (बहुत्) ११४

मँझारन २०१
मँझिआरा २०१
म १५८
मइ १५७
मकाण ९०
मकौण ९०, १०५
मछरी १४२
मज् १५८
मझ् १५८, १६०
मझे १६०
मत २४६
मधि २०१
मध्य २०१
मनहि १५६
मनीजर् १३८
मनु २४३
मनो २४३
मनौ २४३
मम १५८, १६१
मरिबो २२०
महँ २०१
महाँ २४२
महि १५७
माँ २०१, २४२
माँझ २०१
माँह २०१
माँहि २०१
मा २०१
माट १४०
माड् (मार) १०७
मानै ११५
मानौ २४३
मार २०८
मारो १६१
मालिन् १४२
माली १४२

मास्टर् १३८
माह २०१
मांहि २०१
माहि २०१
माही २०१
मित २४४
मिरजई ८६
मिले २११
मुज् १५८
मुझे १६०
मुझ् १५८, १६०
मुर्चा ११९
मुतके (बहुत) २४६
मुहि १६१
मुह् ११४
मुह्र ११४
मूँ (मुहँ) ११४, १५८
मूमो १४२
मैं ४६, १५६, १५७, १९९, २०२, २०५ २६१
मे २०१
मेत्तर् (मेहतर) १२९
मेरा १६१
मेरी १६१
मेरे ४८, १६१
मेरो ४३, १६१, २६०
मेरौ १६१
मेवा १३२
मैं ४६, ७८, १५६, १५७, १९९, २०१, २०५, २६१
मै १५७, २०१
मों १५८, १६१, २०१
मोंहि १५६, १५८, १६०
मो १५६, १६१
मोएँ १६०
मोच्या (मोर्चा) ११०
मोटर् १३९
मोय् १६०
मोर ४३, १६१
मोरू १६१
मोरे ४८, १६१
मोरो १६१
मोर् १६१
मोर्चा ११०
मोंहि १६०
मोंही १६०
मौ १५८
म्याने ११५
म्योर् १३६
म्वंहि १६०
म्ह १५८
म्हाँ २४२
म्हाँको १६१
म्हाँरो १६१
म्हाणो १६१
म्हारा १६१
म्हारो १६१
म्हेतर १०६
म्होर् ११४

यउ १७५
यक १९४
यह १७४, १७५
यही १७५
यहु ७५, १७५
याँ २४२
या १७४, १७५, १७७
याए १७९
याते ९५
याद् ११५, १३३
यार्ड १३८
याहि १७९
यि १७४
यु १७४, १७५
यूँ १७८
यें १७५
ये १७४, १७६
यों २४३
यो १७४, १७५

रउरा १९६
रउवाँ १९६
रपट् १३६, १३७, १३८
रह २०८, २३२
रहइँ २३०
रहइ २३०
रहउ २३०
रहनो २३८
रहिम् (रहम) १३०
रहिवौ २२०
रहे २३०
रहें २११, २३०
रहों ७५
रहौ २३०
राइल् १३६
राउरे १९६
राख २०८
राजा १४३
रावरी १९६
रावरे ५४, ५५, १९६
रावरो ४८, ६०, १९६
रिजर्ब् १३७
रिपिया १००
रिसालो १२९
रिस् १०७
रुपिया १००
रेजु (रस्सी) १०९
रेलवे १३७
रेल् १३६, १४१
रेट् १३६
रोटिन् १५०
रोटी १४८
रोटी १४८, १५०
र्हैनो १०७

लकलाट् १३७
लप् ११९, १३५, १३८
लबड़्दार १०७
लबर १०६
लबर् १३९
लएँ २०५
लए २०५
लओ ७५
लकडी १०९
लगनो २३८
लगाम् १३३

लगि २०५
लड़का ८६
लड् (लडाई) १०८
लत्ता ८६
लम्लेट् १३९
लरिका ७५, १४२
लरिकी १४२
ला १३५, २००
लाइ २००
लाइल् १३६
लाट् १३९
लाने २००
लान् १३५
लाल १२९
लालौ २५०
लास् १३३
लिगी २१३
लिगे २१३
लिकरो १०६
लिकस्यो १०६
लिबाउनो २०८
लुगी २१३
लुगो २१३
लगाई ८६
लूँ २००
लेओ २१५
लेकिन २४८
लेजु (रस्सी) १०९
लेट् १३६
लेनो २०८, २३८
लेहु २१५
लै २२१
लों २०५
लौ २०५
लौडा ८६
लौंरा (लड़का) १०७
लौ २०५
ल्हेड़ो (भीड़) १०७

वउ १६९
वह १६८, १६९
वहि १७१
वहु ७५, १६९
वाँ २४२
वा १६८, १६९, १७१
वाए १७३
वाको ५५
वापिस १०२
वाहि १७३
विच २०१
वित २४२
विन १६८
विन् १६८, १७२
विस्राम् ११९
वे १०२, १६८, १७०
वै ५६
वैं १६८, १७०
वैसो १९८
वो १६८, १६९
वौ १६८, १६९

सँग २०५
सग १०४
सँतओं २५१
सँतओ २५१
सकनो २३८
सकहि २११
सखा १४२
सखियान् १५०
सखी १४२
सगर १९४
सगरिन १९४
सगरी १९४
सगरे १९४
सच्चो १११
सजा १३३
सदाँ २४१
सदा २४१
सन २०३
सनि २००
सपनै १५४
सबन १९४
सबनि १९४
सबर १३३, १९४ १९७
सबरिन १९४
सबरी १९४
सबरे १९४, २४६
सबहिन १९४
सबाओ २५१
सबाब १३३
सबायौ २५१
सबेरे ७९
सबै १९४
सम २०५
समझनो १२०
समरत्थ ११६
समुझाऊँ २०८
समेत २०५
सम्झाउनो १२०
सल्ह (सलाह) १०
सवा २५१
सवायो २५१
सहित २०५
सही १३०
साँप् १४७
साई ९९
साउकार् १०९
साऊकाल (साहूकार)
साडे २५१
साढे २५१
सात २५१
सातओं २५१
सात्मो २५१
साथी ११६
साधुनी १४२
साधू १४२
साबल १०६
साम ११५
सामने २४२
सामल् १०६
सामुहे २४२
साहिब् १२९
साहू ११३
सिअन २२०
सिआई ९८
सिखाई २०८

सिगरिन १९४
सिगरी १९४
सिगरे १९४
सिनी १००
सिरदार १२९
सिसन् १३७
सी २०५
सुं २०३
सु १८२
सुक्कुर (शुक्रवार) ७९
सुनी १००
सुनै २११
सुराक् १३१
सूं १९९, २००, २०३
सू २०३
सूज्ज्उ ९१
सें २०३
से १८०, १८२, १९९, २०३, २०५
सेती २०३
सेनी २०३
सेर्नी (सेर्नी) ११०
सेर (शेर) १२९, १३२
सेर्नी ११०
सेवत २१७
सैं १९९
सैं १९९, २०३, २०५
सैनक १२९
सो १९९, २०३
सो १८०, १८१, १८२, २०३
सोउन २२०
सौ ५६, १९९, २०३
सौ १८०, १८१, २०३
सौगुनी २५१
स्यांम ७०
स्याम् (शाम) ११५

हूँ (भी) १५७
हउँ १५७
हउआ ११७
हउ़वा ११७
हठौती २०८
हती २३०
हती २३०, २३१, २६०
हतुएँ २२३
हतुऐं २२३
हतुऐ २२३
हते २३०, २३१
हतें २२३
हतैं २२३, २३०
हतों २२३
हतो ७५, ७८, २३०, २३१, २३२, २६०
हतौ २२३, २३२
हतौं २२३
हथिनी १४२
हमन् १५९
हमरो ४४, १६१
हमरो १६१
हमहि १६०
हमारी १६१
हमारे १६१
हमारो ४४, १६१
हमारौ १६१
हम् १५९
हमें १६०
हमैं १६०
हमैं १६०
हम् १५६, १५९
हर्दी ११३
हवा १५०
हाँत ९५
हाँती (हाथी) ११४
हाँथी ११४
हात् ११४
हाथ ९५
हाथी १४२
हाथ् ११४
हाप्सैड् १३६
हामरो १६१
हामी १३०
हाल २४१
हिँयन २४२
हि २५१
हित २०५
हियाँ २४२
हिये १५४
हि २३०, २३१, २५१
ही १६३, २३०, २३१, २५१, २६०
हुँ १५७, २५०,
हु २५०
हुअन २४२
हुआँ २४२
हुइ २२१
हुइअइँ २२६
हुइअइ २२६
हुइअउँ २२६
हुइअउ २२६
हुइहैं २२६
हुइहै २२६
हुइहौं २२६
हुइहौ २२६
हुकुम् १२०
हुती २३१
हुती २३१
हुते २३१
हुतो ५४, २३१
हुतौ २३१
हूँ ४६, १५६, १५७, २२३, २२५, २३२, २५०
हू २५०
हैं (है) ९३
हैंयगो २२४
हे २२१, २३०, २३१
हे २२३, २२५
हैंगे २२३
है ४४, ४८, ५०, ११४, २२१, २२३, २२५
हैगो २२३
हैट् १३८
हो १५६, १५७, २२५
होंगे २२४
होंगो २२४
हो ५४, ६१, ७८, २२७,

२३०, २३१ २३२, २६०
होइ २११, २२१
होइहै २२६
होई ४४, २२५
होउँ २२३, २२४
होउँगो २२४
होउ २२७
होउगे २२४
होगे २२४
होगो २२४
होती २२९
होती २२९
होते २२९
होतों २३२
होतो २२९
होतौ २२९
होन २२०
होनी २२०
होनो २२०, २२२, २२३,
२३०, २३३, २३८
होयँ २२३
होय २२३, २२५
होयगी ४४
होयगो २२४
होहर २४१
होहिं २२५
होहुँ २२५
होहु २२५, २२७
हौ ४६, ७८, १५६, १५७
२२३, २२५, २३२
हौउँ २२५
हौंगो २२३, २३२
हौ २२१, २२३, २२५,
२३०, २३१
हौगे २२३
हाँ २४२
ह्वै २२१
ह्वैहें २२६
ह्वैहैं ४४, २२६
ह्वैहौ २२६
ह्वैहो २२६